'अनर्घराघवम्' एवं 'प्रसन्नराघवम्' नाटकों का तुलनात्मक नाट्य-शास्त्रीय अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

की

पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध-पर्यवेक्षक :
डॉ० रामावतार त्रिपाठी
एम.ए., पी-एच०डी०, व्याकरणाचार्य,
पूर्व संस्कृत-विभागाध्यक्ष,
पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय,
बाँदा (उ०प्र०)

प्रस्तुतकर्त्री :
श्रीमती साधना तिवारी
शोध-छात्रा
संस्कृत-विभाग,
पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय,
बाँदा (उ०प्र०)

संस्कृत-विभाग

कला-संकाय

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ०प्र०)

जून, 2004

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि –

(1) यह शोध–प्रबन्ध शोध–छात्रा श्रीमती साधना तिवारी का निजी एवं मौलिक प्रयास है ।

(2) इन्होंने मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अवधि तक कार्य किया है ।

(3) इन्होंने विभाग में वांछित उपस्थिति भी दी है ।

संस्कृत–विभाग

दिनांक– 7.7.04

शोध–निर्देशक

R. A. Tripathi

(डॉ0 रामावतार त्रिपाठी)
एम0ए0, पी–एच0डी0, व्याकरणाचार्य,
पूर्व संस्कृत–विभागाध्यक्ष,
पं0 जवाहरलाल नेहरू
महाविद्यालय
बाँदा, (उ0प्र0)

आमुख

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के आरम्भ में अपने विनम्र हृदयोद्‌गार व्यक्त करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है । मुझे विद्याध्ययन काल के प्रारम्भ से ही संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रति विशेष रूचि रही है । प्रत्येक परीक्षा में संस्कृत मेरा एक रूचिपूर्ण विषय रहा है । अपनी इसी स्वाभाविक रूचि के कारण मैने संस्कृत विषय लेकर स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण की थी । संस्कृत भाषा और साहित्य के निरन्तर अध्ययन से मेरे मन में इस विषय को और आगे पढ़ने की रूचि जागृत हुई । संस्कृत साहित्य की अन्य अनेक विधाओं के होते हुए भी संस्कृत के नाटकों का अध्ययन मुझे अति रूचिकर प्रतीत हुआ और रामकथा के अध्ययन के प्रति मेरी रूचि बहुत पूर्व से ही रही है इसलिए मैं चाहती थी कि मुझे रामकथा प्रधान नाटकों पर शोध कार्य करने का अवसर प्राप्त हो । मेरे शोध–निर्देशक ने मेरी रूचि को ध्यान में रखते हुए रामकथा–प्रधान अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन की प्रेरणा दी जिससे मैं प्रस्तुत अध्ययन में अग्रसर हुई ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध डॉ0 रामावतार त्रिपाठी, संस्कृत–विभागाध्यक्ष, पं0 जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा के विद्वत्तापूर्ण एवं गवेषणात्मक निर्देशन में सम्पन्न हुआ है । वे संस्कृत की प्राच्य–पाश्चात्य उभयविध शैली के उद्‌भट विद्वान् हैं । उनका निर्देशन मेरे लिए गौरव की बात है । उन्होंने समय–समय पर कृपापूर्वक शोधकार्य सम्बन्धी अपना दिशा–निर्देश देकर मुझे उपकृत और अनुगृहीत किया है । उनके आशीर्वाद से इस शोध–प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत करने का शुभ अवसर मुझे अब हस्तगत हुआ है ।

प्राचीन काल से ही विद्वानों ने संस्कृत नाटकों के अध्ययन के प्रति रूचि

दिखाई है । महान प्राच्य विद्याविशारद डॉ0 ए0बी0कीथ, प्रो0 सिल्वाँ लेवी, प्रो0 वानश्रेडर, लूडर्स, पीशेल और कोनो प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन किया है । सौभाग्य से डॉ0 ए0बी0कीथ ने अपना बहुमूल्य ग्रन्थ 'संस्कृत ड्रामा' लिखकर पाश्चात्य विद्वानों के नाटक सम्बन्धी मतमतान्तरों का समाहार प्रस्तुत करते हुए नाटकों के अध्येतागण छात्र–छात्राओं के लिए नवद्वार ही उद्घाटित कर दिया है । संस्कृत नाटकों के सम्बन्ध में डॉ0 ए0बी0कीथ के विचारों का बहुत मूल्य है ।

संस्कृत नाटकों के अध्येत्ता भारतीय विद्वान् डॉ0 भण्डारकर, डॉ देवधर, डॉ0 हीरानन्द शास्त्री, डॉ0 पी0वी0काणे, डॉ0 कुन्हनराजा, डॉ0ए0डी0पुशालकर, आचार्य बलदेव उपाध्याय, डॉ0 प्रभाकर शास्त्री, प्रो0 सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी और कृष्णकान्त त्रिपाठी आदि प्राच्य विद्याविशारद हैं । इन सभी विद्वज्जनों ने भिन्न–भिन्न नाटकों की भिन्न–भिन्न समस्याओं और विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है जो सम्प्रति नाटकों के अध्येता और अनुसन्धित्सु छात्र–छात्राओं के लिए 'कृतवाग्द्वार' की तरह प्रतीत होते हैं ।

रामकथा ने व्यापकता के साथ लोक जीवन को प्रभावित किया है । रामकथा को आधार मानकर अनेक कवियों ने अपनी कृतियों का गुम्फन किया है । वाल्मीकि रामायण रामकथा का अजस्र स्रोत है । इसी रामकथा को आधार बनाकर कविवर मुरारि ने अपने प्रसिद्ध नाटक अनर्घराघवम् में और कविवर जयदेव ने अपने प्रसिद्ध नाटक प्रसन्नराघवम् में नाटकीय रूप देने का प्रयास किया है । यद्यपि दोनों नाटकों में रामकथा तो वही है परन्तु उनके कथा–संयोजन और प्रतिपादन में भिन्नता पायी जाती है ।

इन दोनों नाटकों की नाटकीय और साहित्यिक विशेषताओं का तुलनात्क

अध्ययन प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की मुख्य विषयवस्तु है । अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् नाटकों में न केवल कथावस्तु की दृष्टि से प्रत्युत अनेक नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की दृष्टि से साम्य और वैषम्य विद्यमान है। इन दोनों नाट्यकृतियों का अद्या–वधि तुलनात्मक नाटयशास्त्रीय विवेचन नहीं हो सका था क्योंकि ये दोनों ही नाटक महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में शिक्षक–शिक्षार्थियों के मध्य पाठ्यग्रन्थ के रूप में अध्ययनार्थ चर्चित नहीं रहे हैं। उभयनाटकों के तुलनात्मक अध्ययन से अनेक नाट्यशास्त्रीय विशेषताओं के प्रस्फुटित होने की संभावना है । दशरूपककार धनिकधनंजय द्वारा प्रस्थापित नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों का परिपालन इन उभय कवियों ने कहाँ तक किया है यह विषय भी विचारणीय है । इसके अतिरिक्त इन दोनों नाटकों की काव्यात्मक और साहित्यिक गरिमा का भी तुलनात्मक अध्ययन वांछनीय है । मेरा यह संकल्प है कि उपर्युक्त उभयनाटकों के तुलनात्मक अध्ययन से इस विषय में विस्तृत शोधात्मक सामग्री प्रस्तुत की जाये, जिससे रामकथा प्रधान अन्य नाट्यग्रन्थों के नवीन अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हो सके और इसलिए नाटकों का अध्ययन करने वाले शोधार्थीगण छात्रों के लिए इसकी उपादेयता सम्भव हो सकती है । यही इस शोध–प्रबन्ध का प्रयोजन है ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध नव अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय की विषयवस्तु परिचयात्मक और भूमिका के रूप में है । इसके अन्तर्गत संस्कृत की अनेक विधाओं में नाटकों की श्रेष्ठता, नाटकों की उत्पत्ति, नाटकों का प्रयोजन, रूपकों की मुख्य विशेषताएँ, वस्तु, नेता, रस का प्रतिपादन आदि वर्णित है । रामकथा की प्राचीनता का भी इसमें उल्लेख किया गया है जिसके अन्तर्गत वैदिक साहित्य में भी रामकथा के संकेत तथा वाल्मीकि रामायण, महाभारत, बौद्ध साहित्य में 'दशरथजातक' में वर्णित रामकथा, जैन साहित्य में वर्णित रामकथा,

रघुवंश महाकाव्य, पुराण और संस्कृत महाकाव्यों में तथा संस्कृत के विभिन्न नाटकों में रामकथा का पल्लवन और परिवृंहण प्राप्त होता है । रामकथा की इस अजस्र अमरधारा को लेकर कतिपय परिवर्तनों के साथ अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् का सुन्दर गुम्फन किया गया है । इसी अध्याय में संक्षिप्त कथावस्तु का दिग्दर्शन कराया गया है जिससे उभयनाटकों में कविकृत परिवर्तन कथासंयोजन की विविधता प्रस्फुटित होती है ।

द्वितीय अध्याय में उभयनाटकों के प्रणेता मुरारि और जयदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गई है । यत्र–तत्र उनके काव्यत्व का दिग्दर्शन कराया गया है और रचनाकाल के प्रतिपादन से उनके पौर्वापर्य विषय पर प्रकाशडाला गया है तथा दोनों नाटकों की कथावस्तु की भी तुलनात्मक समीक्षा की गई है । इससे दोनों नाटकों के मध्य विद्यमान साम्य और वैषम्य भी प्रकट होता है ।

तृतीय अध्याय में कथावस्तु का नाट्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है और इस दृष्टि से दोनों ही नाटकों की तुलना की गई है । कथावस्तु की परस्पर समानता और उसमें कविकृत परिवर्तन के औचित्य पर भी विचार किया गया है । दोनों ही नाटकों में कथावस्तु सात अंकों में वर्णित है । दोनों के प्रतिपादन, वर्णन और शैलीगत विशेषताएँ तुलनात्मक रूप से चित्रित की गई हैं । यथाविधि बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नाट्यशास्त्र की पंच अर्थप्रकृतियों और पंच नाट्यशास्त्रीय अवस्थाओं के अनुसार कथा संयोजन पर विचार किया गया है । इस अध्याय में पंच नाट्यसन्धियों मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहृति आदि की दृष्टि से भी कथावस्तु का अनुशीलन किया गया है तथा नाट्यशास्त्र की अन्य विशेषताओं पर भी विचार प्रस्तुत किये गये हैं ।

चतुर्थ अध्याय में अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् नाटकों में नाटक के पात्रों का तुलनात्मक चरित्र–चित्रण प्रस्तुत किया गया है । नायक राम और उसके सहायक पात्रों तथा प्रतिनायक रावण एवं उसके सहायक पात्रों का तुलनात्मक चरित्र–चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । इसी प्रकार नायिका सीता और उसकी सहायिकाओं का भी तुलनात्मक चरित्रांकन प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम अध्याय में उभयनाटकों की संवाद–योजना का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इसमें संवाद–योजना के संदर्भ में भरतमुनि के विचार और उसके लिए अपेक्षित भाषा ज्ञान, उच्चारण के गुण और दोष, संवादों की भाषा संस्कृत और प्राकृत, संवादों की अभिनयन्यूनता और उपयुक्तता आदि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में रस–निष्पत्ति पर विचार प्रस्तुत किया गया है । तदनुसार विभाव, अनुभाव, व्यभिचारि भाव और स्थायी भावों की तुलनात्मक समीक्षा की गई है । रसनिष्पत्ति की दृष्टि से उभयनाटकों का विधिवत् तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और इस दृष्टि से उभय कवियों के कवित्व पर विचार प्रस्तुत किया गया है ।

सप्तम अध्याय में कलापक्ष और भावपक्ष की दृष्टि से उभयनाटकों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । तदनुसार उभयनाटकों में अलंकार योजना, शब्दसौष्ठव और अर्थसौष्ठव तथा शैलीगत विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

अष्टम अध्याय के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र में वर्णित संस्कृत नाटकों के प्रेक्षागृह और रंगमंच पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं और इस सम्बन्ध में आचार्य भरतमुनि के विचार प्रस्तुत किये गये हैं । इसमें अभिनयकला पर भरतमुनि के

विचार तथा अभिनय के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया गया है । तदनुसार आंगिक अभिनय, वाचिक अभिनय, आहार्य अभिनय और सात्विक अभिनय आदि की दृष्टि से अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् नाटकों की तुलना की गई है तथा इनकी मंचनयोग्यता पर विचार प्रस्तुत किया गया है ।

नवम अध्याय उपसंहारात्मक है । इसमें प्रथम से अष्टम अध्याय तक वर्णित शोध–सामग्री का समाहार प्रस्तुत करते हुए यह बताया गया है कि दोनो ही नाटक अपनी–अपनी दृष्टियों से महान् और कौतूहलवर्धक हैं किन्तु स्वप्नवासवदत्तम् और अभिज्ञानशाकुन्तलम् की भाँति अपने यथारूप में इनमें मंचन योग्यता नहीं है । फिर भी इन दोनों नाटकों में उच्चकोटि का कवित्व विद्यमान है । इसलिए ये दोनों ही नाटक सुरभारती के अमर शृंगार हैं ।

अन्त में, यह भी बताया गया है कि वस्तुतः ये दोनों नाटक चतुर्वर्ग फलप्राप्ति के हेतु होने के साथ–साथ आनन्द निष्यन्दी हैं । सौभाग्य से रंगकर्मियों और कलाकारों की ये प्राचीन सांस्कृतिक और साहित्यिक नाट्यकृतियाँ हमारी अमर धरोहर है जो काल के गर्भ में विलुप्त होने से आज भी सुरक्षित रूप में उपलब्ध है । इन दोनों नाट्यकृतियों का तुलनात्मक अनुशीलन सचमुच सद्यः परमानन्द की प्राप्ति कराने वाला है ।

*****

पं0 जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ0 नन्दलाल शुक्ल का मैं हृदय से आभार स्वीकार करती हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य के लिये महाविद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध दुर्लभ ग्रन्थों, शोधपत्र–पत्रिकाओं को पढ़ने का शुभ अवसर प्रदान किया है । मैं अपने आदरणीय पिता श्री पं0 रामखेलावन दीक्षित एवं माता श्रीमती हेमवती एवं पति श्री अरूण कुमार तिवारी, अपने स्नेही बन्धुओं आदि सभी के प्रति अपनी विनम्रता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मुझे शोध–प्रबन्ध को पूरा करने के लिये अपनी प्रेरणा प्रदान की है एवं शुभाशीर्वाद तथा शुभकामनायें दी हैं ।

मैं अतर्रा महाविद्यालय के संस्कृत–विभागाध्यक्ष श्री राजाराम दीक्षित, वामदेव संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री अशोक अवस्थी एवं श्री रामेश्वर प्रसाद त्रिपाठी, राजकीय महिला विद्यालय की प्राध्यापिकाद्वय श्रीमती मंजु सिंह तथा श्रीमती आशा शुक्ला का भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने भी मुझे प्रस्तुत शोध के लिये अपनी सत्प्रेरणा एवं शुभकामनाएँ दी हैं ।

सचमुच शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने में मुझे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा है और उनसे जो मैं पार लग सकी हूँ इसे मैं स्वजनों, गुरूजनों और शुभचिन्तकों तथा विद्वज्जनों के आशीर्वाद और शुभकामना का ही सुपरिणाम समझती हूँ ।

इस प्रबन्ध को पूर्ण करने में पूर्व के अनेक विद्वानों के ग्रन्थों, लेखकों, चिन्तनों और शोधपत्र–पत्रिकाओं की सहायता ली गई है, उन सभी विद्वानों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का टंकण कम्प्यूटर से किया गया है । टंकणकर्ता

संस्कृत के ज्ञाता नहीं हैं इसलिए संस्कृत के कतिपय शब्दों में अशुद्धियाँ सम्भावित हैं । संयुक्ताक्षर और पंचम व्यंजन तथा संस्कृत की सन्धियों के टंकण में कुछ त्रुटियाँ हैं जिनके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ ।

अन्त में, विद्या की परम देवता सरस्वती जी का स्मरण कर मैं आत्मिक सुख का अनुभव करती हूँ--

कस्यचिदेव कदाचिद् दयया, विषयं सरस्वती विदुषः ।
घटयति कमपि तमन्यो, व्रजति जनो येन वैदग्धीम् ।।

संस्कृत-विभाग
पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय,
बाँदा (उ०प्र०)

विदुषां वशंवदा
साधना तिवारी
श्रीमती साधना तिवारी
पुत्री श्री रामखेलावन दीक्षित
बाँदा (उ०प्र०)

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विवरण		पृष्ठ सं0

✡✡✡✡✡

प्रथम अध्याय

भूमिका एवं विषय प्रवेश

प्रथम अध्याय

भूमिका एवं विषय प्रवेश

काव्य भेदों में नाट्य :

संस्कृत काव्यों की अनेक विधायें उपलब्ध होती हैं, उन सभी में नाटकों का महत्व सर्वोपरि माना जाता है। नाट्य--विधा के मर्मज्ञों का कथन है कि काव्य के अन्य भेदों और प्रभेदों में रूपक या नाटक अत्यन्त रमणीय होते हैं।[1] वैसे प्रायः सभी विद्वानों के अनुसार यह बात सर्वमान्य और सर्वस्वीकार्य है कि काव्याकाश में नाटक सदैव से चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डित रहे हैं। इसका सर्वोपरि कारण यह प्रतीत होता है कि नाटक आनन्द निष्यन्दी होते हैं[2] और काव्यानन्द से अपरिचित सुकोमल बुद्धि वाले सर्व–साधारण जनगण भी नाटकों में अनेक प्रकार के सुन्दरतर अभिनय, संवाद–योजना, रस--निष्पत्ति आदि देख–सुन और अनुभव कर असीम और अलौकिक आनन्द का साक्षात्कार कर लेते हैं।

नाटक दृश्य और श्रव्य होते हैं, इसलिये इनमें रस–निष्पत्ति द्रुततर गति से होती है। जहाँ एक ओर काव्य के अन्य भेद और प्रभेद केवल श्रवण मार्ग से सहृदयों के हृदयों को आवर्जित करते हैं वहीं दूसरी ओर दृश्य काव्य या नाटक नेत्र और श्रवण उभय मार्गों से साधारण जनों के भी मनोरंजन के तीव्रतर हेतु होते हैं। यह सर्वविदित है कि किसी वस्तु के देखने का आनन्द उसके सुनने की अपेक्षा कहीं अधिक आशुतर होता है और दूसरा कारण यह भी है कि काव्य का रसास्वादन सहृदय ही कर सकते हैं, किन्तु नाटकों में प्रस्तुत होने वाले अभिनयादि

में रसोपभोग की सम्पूर्ण सामग्री, नेपथ्य विधान, वेशरचना और नाना प्रकार के संविधानकों के द्वारा मंच पर ही उपस्थित कर दी जाती है। इस प्रकार नाटकों में रसानुभूति के लिये वातावरण स्वयं उपस्थित हो जाता है और इसी हेतु के कारण साधारण जनमन के लिये काव्य के अन्य भेद–प्रभेदों की अपेक्षा नाटक के प्रति आकर्षण और सम्मोहन विशेष रूप से होता है। इसी चमत्कार के कारण संभवतः नाटक को कवित्व की चरम सीमा माना जाता है।[3]

नाटकों में अनुकृति की प्रधानता :

अवस्था की अनुकृति नाट्य और रूपक तत्व पात्रों की अवस्थाओं का आरोप है।[4] अनुकरण एक स्वाभाविक प्रक्रिया है और इसी अनुकरण की प्रवृत्ति से नाटकों का जन्म होता है। अनुकरण वृत्ति का एक मात्र लक्ष्य आनन्द प्राप्त करना या मनोरंजन करना माना जा सकता है। छोटे–छोटे बच्चे अनुकरण करके अपने मन को सन्तुष्ट और प्रसन्न करते हुये देखे जाते हैं। इसलिये अनुकरण वृत्ति को नाटकों के शुभारम्भ का कारण माना जा सकता है।

नाटकों की उत्पत्ति के अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं; पुत्तलिका नृत्यवाद, मेपोलवाद, श्रीरामोपासना और कृष्णोपासनावाद इत्यादि किन्तु वस्तुतः नाटकों की उत्पत्ति के बीज वेदों में खोजे जा सकते हैं।[5]

वेदों से नाटकों की उत्पत्ति :

नाट्य–शास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत मुनि के अनुसार नाटक की उत्पत्ति त्रेता युग में ब्रह्मा के द्वारा की गयी थी। सतयुग में मनोरंजन की

आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ किन्तु त्रेता युग में मनोरंजन की आवश्यकता का अनुभव किया गया। यह कहा जाता है कि त्रेता युग में देवता लोग ब्रह्मा जी के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि वे एक ऐसे वेद की रचना करें जो शूद्रो के द्वारा अनुशीलित हो सके क्योंकि उस समय ज्ञान का कोई साधन न था। वेदाध्ययन उनके लिये निषिद्ध था।[6] इस पर ब्रह्मा जी ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के आधार पर ही पंचम वेद 'नाट्यवेद' की रचना की। इस पंचम वेद में चार अंग प्राप्त होते हैं–

1– पाठ्य 2– गीत 3– अभिनय और 4– रस।[7] इसके बाद यह कहा जाता है कि ब्रह्मा जी ने विश्वकर्मा को एक नाट्य–गृह बनाने का आदेश दिया तथा भरत मुनि को इस कला को सम्पादित करने तथा उसकी शिक्षा देने के लिये कहा। इस कार्य के लिये ब्रह्मा ने भरत मुनि को सौ शिष्य और सौ अप्सरायें भी दीं ताकि भरत मुनि नाट्य–कला की व्यावहारिक शिक्षा दे सकें।[8]

यह किंवदन्ती भी सर्वविदित है कि भरतमुनि द्वारा प्रणीत और सम्पादित इस नाट्य कला में नटराज शिव ने ताण्डव नृत्य और पार्वती ने लास्य–नृत्य किया था। ताण्डव नृत्य उद्धत होता है जबकि लास्य नृत्य सुकुमार नृत्य होता है।[9]

नाटकों के तत्व :

नाटकों के अनेक तत्व होते हैं किन्तु दो तत्वों की प्रमुखता मानी जाती है– (1) संवाद और (2) अभिनय। नाटक का संवाद तत्व हमें ऋग्वेद में दिखायी देता है। ऋग्वेद में लगभग पन्द्रह (15) सूक्त ऐसे हैंजिनमें संवाद–तत्व पाया जाता

है। उदाहरण के लिये–इन्द्र–मरूत् संवाद (ऋग्वेद सं0 1/165, 1/170) विश्वामित्र–नदी–संवाद (ऋ0वे0सं0 3/33) पुरूरवस्–उर्वशी–संवाद (ऋ0वे0सं010/95) यम–यमी–संवाद (ऋ0वे0सं0 10/10) अगत्स्य–लोपामुद्रा संवाद (1/179) आदि। पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर और प्रोफेसर सिलवाँलेवी इत्यादि यह भी कहते हैं कि ऋग्वेद–काल में देवताओं के रूप में, यज्ञादि के समय नाट्याभिनय अवश्य होता होगा।[10]

उक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के संवादों में नाटक के बीज सन्निहित हैं। दूसरी ओर यजुर्वेद यज्ञ और कर्मकाण्ड प्रधान है। उसमें अभिनय के तत्व मिल जाते हैं। नाटक रसाश्रय होते हैं इसलिये रस का तत्व अथर्ववेद से लिया गया प्रतीत होता है । अतः स्पष्ट है कि नाटकों की उत्पत्ति के बीज वेदों में ढूँढे जा सकते हैं। इस प्रकार पंचम वेद नाट्य वेद की उत्पत्ति भी दैवी–सिद्धान्त पर आधारित है।

वेदों के बाद रामायण तथा महाभारत में नाटकों का संकेत ढूँढा जा सकता है। महाभारत और रामायण में नट और नाटक शब्दों का प्रयोग हुआ है। अयोध्या के वर्णन के प्रसंग में महर्षि वाल्मीकि का कथन है कि–अयोध्या में नाटक मण्डलियाँ तथा वेश्यायें थी।[11] श्रीराम जी के राज्याभिषेक के समय भी रामायण में नट, नर्तक तथा गायक आदि उपस्थित होकर अपनी कला का प्रदर्शन करके लोगों को प्रसन्न करते हैं।[12] महाभारत में नट और शैलूस आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है और उसके हरिवंश पर्व के 91 से 97 अध्याय तक नाटक खेले जाने का संकेत मिलता है किन्तु डॉ0ए0बी0 कीथ हरिवंश के इन उल्लेखों पर विश्वास नहीं करते

और इस सम्बन्ध में वे कहते है कि–हरिवंश की रचना तिथि अनिश्चित है।[13]

वात्स्यायन के काम सूत्र में भी नाटक और नटों का संकेत मिलता है[14] जिसमें यह कहा गया है कि बाहर से आये हुये नट प्रथम दिन नागरिकों को नाटक दिखा कर उसका पारिश्रमिक दूसरे दिन ग्रहण कर लें। इसके अतिरिक्त लगभग ई0पू0 सप्तम शताब्दी के आचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी में नटसूत्रकार शिलाली और कृशाश्व का उल्लेख मिलता है जिससे यह प्रतीत होता है कि पाणिनि के समय में उक्त नट–सूत्र प्राप्त थे[15] जिससे यह सम्भावना की जा सकती है कि पाणिनि के काल में नाटक विद्यमान थे जो अब लुप्त हो गये हैं।

ई0पू0 द्वितीय शताब्दी के महाभाष्यकार, महावैयाकरण पतंजलि ने 'कंसवधम्' और 'बलिबन्धनम्' जैसे नाटकों का उल्लेख किया है जिससे भी यह प्रतीत होता है कि पतंजलि के पूर्व नाटक विद्यमान थे। वे कहते हैं कि– कंस बहुत पहले मर चुका है और बलि का वामन के द्वारा बन्धन चिरकाल पूर्व में हो चुका है लेकिन ये नट अतीत काल की घटनाओं को वर्तमान काल में ही हमारे नेत्रों के सामने दिखा रहे हैं। आज भी कंस को मारते हैं और असुरराज बलि को बाँधते हैं।[16] इससे स्पष्ट विदित होता है कि हमारे देश में संस्कृत नाटकों की परम्परा अति प्राचीन काल से ही प्राप्त होती है और नाटकों के बीज वेदों में सन्निहित हैं।[17]

मनोरंजन का हेतु और प्रयोजन :

नाटक यदि एक ओर सार्वजनिक मनोरंजन का हेतु है तो दूसरी ओर

उसकी विषय वस्तु त्रैलोक्य के उदात्त भावों का सविस्तर निरूपण करने वाली है। काव्यों के जो प्रयोजन काव्य—शास्त्रियों ने बतलायें हैं, प्रायः वही प्रयोजन नाटकों के भी माने जा सकते हैं। आचार्य मम्मट ने कहा है कि यश के लिये, अर्थ प्राप्ति के लिये, व्यवहार ज्ञान के लिये, अमंगल की शान्ति के लिये, कान्ता—सम्मित उपदेश के लिये और सर्वोपरि सद्यः परमानन्द की प्राप्ति के लिये काव्यों की या नाटकों की रचना की जाती है।[18]

साहित्य दर्पणकार कविराज विश्वनाथ के अनुसार काव्य और नाटकों का प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चतुर्वर्ग फल प्राप्ति का साधन है।[19] इतना ही नहीं वह शक्तिमानों के हृदय में शक्ति का संचार करता है, अज्ञानियों को ज्ञानी बनाता है और जन—मनोरंजन के साथ—साथ बुध—विश्राम का जनक है। सर्वोपरि रूपक आनन्द की वर्षा करने वाले हैं, केवल व्युत्पत्ति मात्र ही इनका प्रयोजन नहीं है।[20]

नाटक एक प्रकार से लोक वृत्त का अथवा उसकी भिन्न्न—भिन्न अवस्थाओं का अनुकरण ही है। दृश्य होने के कारण इसे 'रूप' भी कहा जाता है तथा नट आदि में रामादि अवस्था का आरोप होने के कारण यह रूपक के नाम से भी विश्व—विख्यात है। दशरूपककार धनिक—धनंजय ने रूपकों का सविस्तर वर्णन किया है।[21]

इस विशाल विश्व—पटल में सुख—दुःख की जो प्रवृत्तियाँ अपना खेल दिखाया करती हैं और मानव—जीवन को दुःखमय या सुखमय बनाया करती है।

धर्म और अधर्म के उत्थान–पतन की जो कथा लोकवृत्त में देखी और सुनी जाती है, प्रकृति के जो विविध रूप देखे और सुने जाते हैं, अनन्त नर–नारियों की जो प्रवृत्तियाँ लोक–जीवन में परिलक्षित होती हैं, सज्जन और खलों के जो विविध रूप हैं, संक्षेप में, उन सबका चित्रण नाटक में किया जाता है। इन्हीं सब बातों को अन्तःस्थ कर नाट्यशास्त्रकार मुनिवर भरत ने कहा है कि–कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है जो नाटकों में न दिखायी देता हो।[22]

नाटक के सम्बन्ध में महाकवि एवम् महान् नाटककार कालिदास का कथन है कि भिन्न–भिन्न रुचि वाले व्यक्तियों के लिये नाटक सर्वसाधारण और सर्वमान्य मनोरंजन का साधन है।[23] इसके अतिरिक्त आनन्द के साथ चरित्र को उदार बनाना, जीवन के स्तर का उदात्तीकरण और आदर्श विधान नाटक के कतिपय अन्य महत्वपूर्ण प्रयोजन हैं।

रूपकों का विभाजन :

दशरूपककार घनिक धनंजय ने रसाश्रित रूपकों का विभाजन दश प्रकार से किया है[24] जो निम्नवत् हैं–

1– नाटक 2–प्रकरण 3– भाण 4– प्रहसन 5– डिम 6– व्यायोग 7– समवकार 8– वीथी 9– ईहामृग तथा 10– अंक।[25]

यद्यपि इन सभी रूपकों में अनुकरण की प्रधानता है किन्तु कथावस्तु, रस, नेता अर्थात् नायक के भेद से इसके दस भेद स्वीकार किये गये हैं।[26]

कथावस्तु :

नाटक की कथावस्तु दो प्रकार की होती है– 1–अधिकारिक कथावस्तु

2– प्रासंगिक कथावस्तु। आधिकारिक कथावस्तु को मुख्य कथावस्तु कहते हैं। इसके फल के स्वामित्व का अधिकार नायक को प्राप्त होता है। प्रासंगिक कथावस्तु दो प्रकार की होती है– 1– पताका 2– प्रकरी। राम–कथा में सुग्रीव की कथा पताका है तथा शबरी वृत्तान्त प्रकरी है। नाट्य शास्त्र में रूपकों के इतिवृत्त अर्थात् कथावस्तु को पाँच अर्थ प्रकृतियों, पाँच अवस्थाओं और पाँच सन्धियों में विभाजित किया गया है। रूपकों की पंच अर्थ प्रकृतियाँ, पंच अवस्थायें और पंच सन्धियाँ संक्षेप में निम्नवत् हैं–[27]

अर्थप्रकृतियाँ		अवस्थायें		सन्धियाँ
1– बीज	+	आरम्भ	=	मुखसन्धि
2– बिन्दु	+	यत्न	=	प्रतिमुखसन्धि
3– पताका	+	प्राप्त्याशा	=	गर्भ सन्धि
4– प्रकरी	+	नियताप्ति	=	विमर्श सन्धि
5– कार्य	+	फलागम	=	उपसंहृति सन्धि

यह इतिवृत्त मुख्य रूप से मूलतः तीन प्रकार का होता है– (1) प्रख्यात (2) उत्पाद्य (3) मिश्र। प्रख्यात इतिवृत्त में रामायण, महाभारत, पुराण और वृहत्कथा इत्यादि ऐतिहासिक ग्रन्थों का आधार ग्रहण किया जाता है और इस प्रकार का इतिवृत्त प्रसिद्ध कथा से सम्बद्ध होता है।[28] उदाहरणार्थ–अध्ययन विषयीभूत नाटक–द्वय अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् की मुख्य कथावस्तु रामायण से संग्रहीत है। रामायण उक्त नाटकों का उपजीव्य काव्यजातीय ग्रन्थ है। इसी प्रकार कालिदास

के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का कथा स्रोत महाभारत और पद्म–पुराण है। ऐसे ही भासकृत् स्वप्नवासवदत्तम् और प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् नाटकों का इतिवृत्त गुणाढ्यकृत वृहत्कथा से लिया गया है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि नाटकों का इतिवृत्त प्रख्यात होना चाहिये।[29]

उत्पाद्य इतिवृत्त कविकल्पित होता है।[30] प्रकरण भाण और प्रहसन आदि का इतिवृत्त उत्पाद्य होता है। मृच्छकटिक प्रकरण की कथा उत्पाद्य है। मिश्र इतिवृत्त में कुछ अंश प्रख्यात और कुछ अंश कवि–कल्पित अर्थात् उत्पाद्य होता है।[31] रूपक की उक्त पाँच सन्धियों का विभाजन 64 सन्ध्यंगों में किया गया है।[32] उक्त सन्ध्यंगों के विशाल विभाजन को कुछ विद्वान् जटिल और अनावश्यक मानते हैं।[33] डॉ० ए०बी० कीथ के अनुसार नाटकीय इतिवृत्त का यह विभाजन कोई वास्तविक मूल्य नहीं रखता है।[34]

इसी प्रकार नाटकों में कुछ कथा सूत्र होते हैं जिन्हें अर्थोपक्षेपक कहा जाता है। इनका विहंगावलोकन निम्नवत् है– (1) विष्कम्भक (2) प्रवेशक (3) चूलिका (4) अंकास्य (5) अंकावतार। भावी कथावस्तु या घटना की सूचना देने के लिये नाटककार 'पताका स्थानक' का भी प्रयोग करता है। पताका स्थानक दो प्रकार का होता है– (1) अन्योक्ति रूप (2) समासोक्ति रूप किन्तु सभी नाटकों के लिये यह आवश्यक तत्व नहीं है।

नायक –

रूपकों का दूसरा भेदक तत्व नेता अर्थात् नायक होता है। नायक के साथ–साथ नायक का सम्पूर्ण परिवार आ जाता है। नायिका, नायक के साथी,

नायिका की सखियाँ, प्रति नायक और उनके सभी साथी नेता के चरित्र से सम्बद्ध होते हैं। नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोक प्रिय और युवावस्था वाला होता है। वह प्रज्ञावान और मानी होता है। वह शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ और धार्मिक होता है।[35]

ये नायक नाटकों में चार प्रकार के होते हैं जो निम्नवत् हैं– (1) धीरललित (2) धीरशान्त (3) धीरोदात्त और (4) धीरोद्धत। धीर ललित नायक सर्वथा निश्चिन्त रहता है। वह कोमल स्वभाव का सुखी तथा ललित कलाओं से प्रेम करने वाला होता है।[36] धीरोदात्त नायक महासत्व, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, अविकत्थन, स्थिर, निगूढ, अहंकार वाला और दृढ़व्रती होता है।[37] धीरोद्धत नायक दर्प मात्सर्य से युक्त, कपटी और मायावी, अभिमानी, चंचल, क्रोधी और आत्मश्लाघी होता है।[38] दूसरी ओर धीर प्रशान्त नायक सामान्य गुणों से युक्त होता है। विदूषक, पीठमर्द आदि नायक के सहायक होते हैं। नायक का साथी पताका–नायक 'पीठमर्द' कहलाता है यथा–रामायण का सुग्रीव और मालतीमाधवम् का मकरन्द पीठमर्द है। नायक का शत्रु प्रतिनायक होता है। वह धीरोद्धत प्रकृति का होता है जैसे–रामायण में रावण प्रतिनायक है।

नायिका -

संस्कृत नाटकों में नायिका भी नायक के समान गुणों से युक्त होती है। वह निम्नांकित रूप से तीन प्रकार की होती है–[39] (1) स्वकीया (2) परकीया और (3) साधारण स्त्री। नायिका की परिचारिकाएं और सखियाँ भी होती हैं जो नायिका की सहायिकायें होती हैं।

रस :

नाटक का महत्वपूर्ण भेदक तीसरा तत्व़ रस होता है इसीलिये नाटक को रसाश्रय कहा जाता है।[40] यद्यपि रसों की संख्या नौ मानी जाती है किन्तु संस्कृत नाट्कों शृंगार रस या वीर रस में से कोई एक रस ही प्रधान होता है। अन्य रस मुख्य रस के सहायक या गौण होते हैं। यद्यपि उत्तररामचरितम् नाटक के प्रणेता काव्य–शास्त्र की उक्त अवधारणा की आलोचना करते हुये करूण–रस की स्थापना करते हैं।[41]

आचार्य भरतमुनि के अनुसार दृश्य–श्रव्य रूप नाटक कोमल कान्त पदावली वाला, गूढ़ शब्दार्थ से रहित, सर्वजन सुख बोध्य, युक्ति–युक्त, नृत्यादि ललित कलाओं से युक्त, बहुतर रस–मार्ग वाला नाट्य सन्धियों के सन्धान से संवलित और प्रेक्षकों के लिये शुभ–काव्य होता है जो सहृदयों के चित्त को विश्राम देता है।[42] मुनिवर भरत के अनुसार नाटक अधर्म में प्रवृत्त लोगों के लिये धर्म क़ा उपदेश देता है, काव्योपजीवी लोगों के लिये काम का, दुर्विनीतों के लिये विनय का दुष्टों के लिये घृष्टता का, शूर और मानियों के लिये उत्साह का, मूर्खों को ज्ञान का और विद्वानों के लिये वैदुष्य का उपदेश देता है। यही नाटक थके–हारे, शोकाकुल और तापस लोगों के लिये यथा समय विश्रान्ति का जनक है।[43]

इसके अतिरिक्त नाट्य सार्ववर्णिक वेद है, जहाँ एक ओर अन्य वेद केवल द्विजवर्ग के लिये उपयोगी और उपादेय होते हैं, वहीं नाट्यवेद का उपयोग सभी वर्णो के लिये है।[44] प्रत्येक व्यक्ति नाटकीय आनन्द का अधिकारी और पात्र है। नाटक के विषय में कविकुलगुरू कालिदास के विचार इस प्रसंग में अवलोकनीय

हैं। यह नाटक देवताओं के लिये शान्त चाक्षुषयज्ञ है। इसमें शिव और पार्वती का संयुक्त ताण्डव और लास्य इसकी दिव्यता का प्रतिपादक है। इस प्रकार नाटक में अनेक गुणों के कारण नाना रसात्मक लोक चरित का दर्शन होता है।

यद्यपि जगत् के प्राणी भिन्न–भिन्न रूचि वाले होते हैं परन्तु नाटक उन सभी के लिये एक अद्वितीय और मनोरंजन का केन्द्र है। नाटक की कथा–वस्तु और विषय वस्तु असीमित तथा अनन्त प्रकार की होती है। इसमें तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन और वर्णन होता है। इससे बढ़कर मनोरंजन का कोई दूसरा साधन नहीं है, इसलिये काव्यों में नाटक की सर्वश्रेष्ठता प्रमाणित होती है।[45] नाटकों में लोक वृत्त का अनुकरण होता है इसलिये साधारणीकरण व्यापार के द्वारा सामाजिकों के हृदय–पटल में रस–निष्पत्ति भी तीव्रतर होती है। रस नाटकों का प्राण है। रसानन्द ब्रह्मानन्द का सहोदर है। पानक–रस की तरह रस का चर्वण होता है। सामाजिकों को ऐसा प्रतीत होता है मानो वह रस उसके सामने मूर्त होकर खड़ा हो गया हो, वह अलौकिक चमत्कारकारी है।[46]

इन सभी नाटकीय तत्वों का विवेचन अध्ययन–विषयीभूत नाटकद्वय 'अनर्घराघवम्' और 'प्रसन्नराघवम्' के सन्दर्भ में प्रतिपादनीय है जिनका यथा सन्दर्भ और यथा–प्रसंग उल्लेख किया जायेगा।

रामकथा की प्राचीनता :

रामकथा अति प्राचीन है क्योंकि रामकथा के कुछ पात्रों का उल्लेख वैदिक–साहित्य में उपलब्ध होता है। वैदिक साहित्य में रामकथा के कतिपय पात्रों

के उल्लेख से कतिपय विद्वान् वैदिक काल में रामकथा के वर्णित होने की बात करते हैं। रामकथा की आधिकारिक कथावस्तु के कुछ प्रमुख पात्र इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, सीता, विश्वामित्र, अगत्स्य, वशिष्ठ और भरद्वाज आदि वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं किन्तु उक्त नामों के संयोजन से विद्वानों को रामकथा के सूत्र जुड़ते हुये प्रतीत नहीं होते हैं।[47] इसलिये उनके अनुसार वैदिक साहित्य में रामकथा का अभाव दिखायी देता है। इनके अनुसार, वैदिक काल में रामायण की रचना हुई थी, अथवा रामकथा सम्बन्धी गाथायें प्रसिद्ध हो चुकी थी, इसका निर्देश समस्त विस्तृत वैदिक साहित्य में कहीं भी नहीं पाया जाता है। अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम रामायण के पात्रों से मिलते हैं। इससे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये नाम प्राचीन काल में भी प्रचलित थे।[48]

वैदिक साहित्य में रामकथा के कतिपय पात्रों का उल्लेख :

यह सच है कि वैदिक साहित्य में रामकथा के कतिपय पात्रों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिये–ऋग्वेद संहिता के 10.60.4 सूक्त में इक्ष्वाकु राजा का उल्लेख हुआ है।[49] इसी प्रकार ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में राजा दशरथ की प्रशंसा की गयी है।[50] ऋग्वेद के दशम मण्डल में राम का राजा के रूप में वर्णन किया गया है।[51] शतपथ ब्राह्मण 11,3,1,2–4 में जनक वैदेह का अनेक बार उल्लेख मिलता है। कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में सीता का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के दृष्टा ऋषि वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगत्स्य आदि के नाम भी यथा–प्रसंग मिलते हैं। ये सब यही संकेत करते हैं कि किसी न किसी रूप में

रामकथा वेदों में संकेतित रही है। इसीलिये रामचरितमानस महाकाव्य के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास ने 'रघुनाथ–गाथा' को भाषा में निबद्ध करते समय निगमागम सम्मत कहा है।[52] निगम का अर्थ यहाँ वेद ही है।

तुलसी की रामकथा श्रुति सम्मत ही नहीं, 'श्रुतिसार'[53] भी है जिसे वेद 'नेति–नेति' कहते हैं। इसलिये रामकथा का स्रोत वेद को न मानना उचित नहीं है। यदि साक्षात् यथावत् सांगोपांग रूप में वेद में रामकथा दिखायी नहीं देती है तो इसका कारण दूसरे प्रकार से खोजा जा सकता है। हमारा यह देश आक्रमणों का देश कहा जाता है। विदेशियों के भारत भूमि पर निरन्तर आक्रमण होते रहते हैं। यहाँ पुस्तकालय जला दिये गये, विश्वविद्यालय और शिक्षा के केन्द्र नष्ट–भ्रष्ट कर दिये गये। अनेक हस्त–लिखित ग्रन्थ और पाण्डुलिपियाँ अग्नि को समर्पित कर दी गयीं। इसलिये यहाँ का बहुत सा प्राचीन साहित्य लुप्त हो गया।[54] इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि महाभाष्यकार पतंजलि ने ई0पू0 द्वितीय शताब्दी में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ महाभाष्य में उल्लिखित किया है कि ऋग्वेद की 21 शाखायें हैं और सामवेद की एक हजार शाखायें हैं। सम्प्रति ऋग्वेद की केवल एक बाष्कल शाखा ही प्राप्त होती है, अन्य 20 (बीस) शाखायें लुप्त हो गयी हैं।

इसी प्रकार सामवेद की अन्य अनेक शाखायें प्राप्त नहीं होती है।[55] इसलिये यह बात अनुमानतः कही जा सकती है कि– संभवतः लुप्त वैदिक साहित्य में 'रामकथा' विद्यमान रही होगी। वह किस रूप में विद्यमान रही होगी इसका सहज और सत्य अनुमान शायद नहीं लगाया जा सकता है। अतएव तुलसीदास जी

ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य रामचरितमानस में कहा है कि रामायण संभवतः शतकोटि रही है और अन्त में, उन्होंने रामायण को 'अपार' कह दिया है। इससे रामकथा की व्यापकता और सार्वभौमिकता प्रमाणित होती है। न्यूनातिन्यून गोस्वामी तुलसीदास तो इस राम-कथा को वेदमूलक ही मानते हैं।[56]

दूसरी बात यह भी कही जा सकती है कि राम विष्णु के अवतार माने जाते हैं और अवतारवाद के बीज वैदिक साहित्य में प्रचुरता के साथ उपलब्ध होते हैं। वैदिक साहित्य में अवतारी और अवतार शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। तदनुसार ऋग्वेद–संहिता 6.25.2 सूक्त के दूसरे मन्त्र में 'अवतारी' शब्द का उल्लेख मिलता है।[57] प्रस्तुतमन्त्र में इन्द्र से यज्ञादि पूजन कर्मादि में होने वाले अन्तराय अर्थात् विघ्नों से रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है। विष्णु का अवतार भी धर्म की रक्षा और संकटों से मुक्त करने के लिये होता रहा है, बाद में विष्णु के मानव रूप को अवतार कहा जाने लगा था।

पाणिनिं ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में अवतार शब्द की व्युत्पत्ति बतायी है। तदनुसार अव+तृ+घञ् प्रत्यय को जोड़कर अवतार शब्द निष्पन्न होता है।[58] इसका उदाहरण 'अवतारः कूपादेः' कूपादि में उतरना बतलाया गया है; परन्तु हिन्दी विश्वकोशकार नागेन्द्र नाथ बसु ने अवतार शब्द के अनेक अर्थ बताये हैं।[59] इसके अनुसार अवतार शब्द का अर्थ है–ऊपर से नीचे आना, उतरना, पार होना, शरीर धारण करना, जन्म ग्रहण करना, प्रतिकृति, प्रादुर्भाव, अवतरण–अंशोद्भव आदि होता है।

अवतारवाद के प्रमुख प्रयोजनों में रक्षा या असुरों से युद्ध के निमित्त जिस बल या पराक्रम की आवश्यकता मानी गयी है, वह वैदिक विष्णु में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। विष्णु ने तीन पग से इस जगत् की परिक्रमा की है जिससे सम्पूर्ण जगत उनके पैरों की धूल से छिप जाता है। विष्णु के कार्यों के बल पर ही यजमान अपने व्रतों का अनुष्ठान करते हैं।[60] इससे यह विदित होता है कि जब अवतारवाद के बीज़ वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं और रामकथा के प्रसिद्ध प्रमुख पात्रों के नाम भी वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं तो लुप्त वैदिक साहित्य में सम्भवतः रामकथा किसी रूप में विद्यमान रही होगी। यद्यपि रामकथा के भिन्न रूप हो सकते हैं।[61]

बौद्ध साहित्य में रामकथा :

बौद्ध साहित्य में भी रामकथा उपलब्ध होती है। जातक–साहित्य, बौद्ध साहित्य का एक प्रमुख अंग है। जातक कथाओं में महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाओं का संकलन है। इनमें रामकथा से सम्बन्धित 'दशरथ जातक' सर्वाधिक प्रसिद्ध है।[62] दशरथ जातक 'जातकट्ठ वण्णना' नामक जातक संग्रह में उपलब्ध है। यद्यपि वाल्मीकि विचरित रामायण की कथा में और दशरथ–जातक की कथा में मौलिक भेद है। दशरथ–जातक की रामकथा वाल्मीकीय रामकथा का विकृत रूप प्रतीत होता है। यह भी हो सकता है कि धार्मिक आन्दोलन के सन्दर्भ में बौद्धों ने सनातन ब्राह्मण धर्म में प्रचलित रामकथा को ईर्ष्यावश विकृत कर दिया हो क्योंकि धार्मिक आन्दोलनों के सन्दर्भ में इस प्रकार के विकृत–विचार देखे और

सुने जाते रहे हैं।

आर्यों की एक टोली जो ईरान की ओर प्रस्थान कर गयी थी और जरथुस्त्र सम्पादित अवेस्तन धर्म की अनुयायी बन गयी थी, जिन का प्रमुख देवता 'अहुरामज्दा' था, ऋग्वेद के सवितृ सूक्त में सूर्य के विशेषण के लिये 'असुरः सुनीथः' पदों का प्रयोग किया गया है। इस मन्त्र में सवितृ देवता के लिये प्रयुक्त विशेषण पद 'असुरः' पद का अर्थ सायण ने 'असन् प्राणान् राति, ददाति, इति असुरः किया है अर्थात् सवितृ देवता प्राणों की रक्षा करने वाला है या देने वाला है किन्तु परवर्ती वैदिक काल में असुर शब्द का अर्थ राक्षस और दैत्य हो गया है जिससे परवर्ती वैदिक काल में यह परिवर्तन आर्यों की दोनों शाखाओं का परस्पर वैमनस्य और मतभिन्नता प्रकट होकर अहुर देवता असुर, दैत्य या राक्षस के रूप में परिवर्तित हो गया।[63] यही कुछ बात दशरथ जातक और वाल्मीकि रामकथा की भिन्नता के सम्बन्ध में कही जा सकती है। धार्मिक विद्वेष वश दशरथ जातक में रामकथा को विकृत कर दिया गया है।

इसी प्रकार 'दशरथ कथानम्' और 'अनामकम् जातकम्' में भी रामकथा का भिन्न–भिन्न रूप प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि किसी न किसी रूप में बौद्ध–साहित्य में भी रामकथा उपलब्ध है।

जैन परम्परा में भी रामकथा प्राप्त होती है जिसके भिन्न–भिन्न स्वरूप और कथा भेद हैं। जैन रामकथा का स्रोत जिन सेनकृत 'आदि–पुराण' और गुणभद्रकृत उत्तर–पुराण है। इसके अतिरिक्त विमलसूरि विरचित 'पउमचरियम्' में

लोक प्रिय रामकथा प्राप्त होती है।[64]

वाल्मीकीय रामायण में रामकथा :

रामायण आदि महाकाव्य है और महर्षि वाल्मीकि आदि महाकवि हैं। रामकथा का जो आदर्श रूप, सुसम्बद्ध घटनाक्रम, साहित्यिक कोमल कान्त पदावली, कलापक्ष और भावपक्ष का मनोहारी रूप, प्रकृति–चित्रण, चारित्रिक विशेषता, उदात्तभाव–प्रकाशन, वर्णन चातुरी, अलंकार संयोजन, ध्वन्यात्मकता और काव्यात्मकता आदि गुण वाल्मीकि विरचित रामायण में ही प्रथम दृष्टि पथ में अवतरित होते हैं, जिससे यह रामायण महाकाव्य परवर्ती समस्त रामकथा प्रधान काव्यों और नाटकों के लिये उपजीव्य हो गया है।[65] इसलिये यह मूल रूप से संस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य न केवल परवर्ती महाकाव्यों, काव्यों और नाटकों आदि का प्रेरणा स्रोत है वरन् यह भारतीय परिवारों की धर्म–पोथी, भारतीय आचार–विचार, संस्कार–सम्बन्धों का आदर्श ग्रन्थ और भारत की चिरन्तन भक्ति–भावना, ज्ञान–भावना, में भी भावना का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।[66]

वाल्मीकि आदि कवि, महाकवि, धर्माचार्य और सामाजिक जीवन के सूक्ष्म ज्ञाता सभी कुछ एक साथ थे। वे गम्भीर अन्तश्चेता भी थे। इसीलिये ध्वन्यालोक कार आनन्द वर्धनाचार्य ने न केवल उन्हें आदि कवि कहा है प्रत्युत क्रौञ्च युगल के शोक को वाणी देने वाला आदि कवि बतलाया है।[67]

रामकथा के सन्दर्भ में वाल्मीकि का यह कथन सर्वथा सत्य है कि इस पृथ्वीतल में पर्वतों और नदियों का अस्तित्व जब तक रहेगा तब तक रामायण की

यह कथा संसार में बनी रहेगी।[68] आज हजारों वर्षों के बाद भी यह राम–कथा झोपड़ी से लेकर राजमहलों तक गायी जा रही है। यह रामायण कथा सचमुच धन्या और रम्या है जो 'दूषण' युक्त होती हुई भी निर्दोष है। 'खर' युक्त होती हुई भी सुकोमल है।[69]

रघुवंशम् महाकाव्य के प्रणेता कवि कुलगुरू कालिदास ने वाल्मीकीय–रामायण–कथा का आधार लेकर अपने उक्त काव्य में रामकथा का गुम्फन किया है, वाल्मीकि को रघुवंश वर्णन के सन्दर्भ में कृत्त वाग्द्वार तथा आदि कवि के रूप में स्मरण किया है। उनका कथन है कि इस रघुवंश का वाग्द्वार पूर्वसूरि वाल्मीकि प्रभृति कवियों ने उद्घाटित कर दिया है। वज्र से समुत्कीर्ण मणि में धागे की भाँति रघुवंश–वर्णन में मेरी अबाध गति होगी।[70] इसीलिये वे वाल्मीकि को आदि कवि भी कहते हैं।[71]

कालिदास के कथनानुसार रामायण में इतनी मधुरता थी कि वाल्मीकि से प्रेरित लव और कुश जब रामायण का गान करते थे तो उसके सुनने वाले लोगों का मन बलात् अनुरक्त और आकर्षित हो जाता था।[72] यही नहीं कालिदास के समय में रामकथा की प्रसिद्धि और पवित्रता इतनी उच्चता को प्राप्त हो गयी थी कि जब यक्ष रामगिरि पर्वत पर स्थित मेघ से अपना सन्देश अल्कापुरी अपनी प्रियतमा के पास प्रेषित करने के लिये निवेदन करता है तो सबसे पहले उसे मध्य में पुरूषों के द्वारा वन्दनीय रघुपति के पदों से अंकित रामगिरि पर्वत से आज्ञा लेने की बात करता है। इससे रामकथा की पवित्रता और प्रसिद्धि ध्वनित होती है।[73]

महाभारत में रामकथा :

वाल्मीकि रामायण की भाँति वेदव्यास प्रणीत महाभारत भी संस्कृत–काव्यों, महाकाव्यों और नाटकों का उपजीव्य तथा आकर ग्रन्थ है। महाभारत की महत्ता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जो इसमें नहीं है वह अन्यत्र नहीं है[74] तथा जो महाभारत में नहीं है वह भारत देश में नहीं है।[75] यह एक ऐसा महासागर है जिसमें असंख्य ज्ञान–सरितायें एक प्राण होकर प्रवाहित होती है और लोक का कल्मष धो रही हैं। इस महाग्रन्थ में गगन तल स्पर्शी ज्ञानराशि विद्यमान है। महाभारत रामायण के बाद की रचना है। इसलिये महाभारत में रामकथा का प्राप्त होना कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं।

महाभारत के आरण्यक पर्व, स्वर्गारोहण पर्व और द्रोण पर्व आदि में रामकथा का उल्लेख भूयोभूयः प्राप्त होता है। आरण्यक पर्व में प्राप्त 'रामोपाख्यान' में प्रायः सम्पूर्ण रामकथा भीम–हनुमान संवाद के माध्यम से उल्लिखित है।[76] वायु पुत्र भीम महाभारत के आरण्यक पर्व में अपने भ्राता हनुमान जी के विषय में कहते हैं कि मेरे भ्राता हनुमान् गुणों में वन्दनीय, बुद्धिबल से युक्त, शूर, वानर श्रेष्ठ के रूप में रामायण में अति विख्यात हैं।[77] महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व में भी रामायण का स्पष्ट उल्लेख है कि हे भरत वंशी राजन्! वेद, रामायण और महाभारत के आदि–अन्त में सर्वत्र हरि का गान किया गया है।[78]

भीम–हनुमान संवाद में हनुमान् का कथन है कि दशरथ पुत्र वीर महाबली राम साक्षात् विष्णु हैं जो इस वसुधातल में भ्रमण कर रहे हैं।[79] आरण्यक

पर्व के अन्तिम अध्याय में यह उल्लेख है कि विष्णु ने दशरथ के गृह में रहकर रावण का वध किया था।[80] महाभारत के शान्ति पर्व में श्रीकृष्ण अपने अवतारों का वर्णन करते हुये कहते हैं कि मैने त्रेता युग में दशरथ पुत्र राम के रूप में जगत्–पति होकर विश्व का शासन किया था।[81]

इस प्रकार यह सुस्पष्ट है कि महाभारत के प्रणेता वेदव्यास रामकथा से भली भाँति सुपरिचित थे। इसीलिये महाभारत में यत्र–तत्र राम कथा का उल्लेख प्राप्त होता है।

पुराणों में रामकथा :

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस में अपनी सांकेतिक भाषा में कहा है कि रामायणें शतकोटि हैं। इसके आगे बढ़कर एक बात वे और कहते हैं कि रामायणें अपार हैं।[82] उनके इस कथन में वास्तव में सच्चाई निहित है। यद्यपि सौ करोड़ रामायणें आज भी नहीं मिलेंगी तब तुलसीदास जी शतकोटि के बाद जो अपार शब्द लिखते हैं, उसका कारण ऐतिहासिक और भाव–दृष्टि का अन्तर प्रतीत होता है।[83] भाव दृष्टि से रामायणें अपार हैं। तुलसीदास की रामायण नानापुराण सम्मत है।[84] इससे प्रतीत होता है कि पुराणों में अपने–अपने भावानुसार अनेक रूपों में रामकथा प्राप्त होती है। सभी पुराणों में प्राप्त राम-कथाओं में एक रूपता नहीं है प्रत्युत घटनाओं में भिन्न रूपता है। पुराणों में प्राप्त रामचरित के उल्लेख क्रमशः संक्षिप्त रूप में निम्नवत् हैं–

हरिवंश पुराण :

इस पुराण में संक्षिप्त रामकथा प्राप्त होती है, जिसमें रामावतार के

उल्लेख के बाद वनवास से लेकर रावण–वध तक रामकथा की मुख्य घटनाओं का वर्णन किया गया है और राम–राज्य की प्रशंसा की गयी है। इस पुराण का रचना काल 400 ई0 के लगभग माना जाता है।[85] हरिवंश पुराण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि रामकथा का गान महर्षि वाल्मीकि ने किया है।[86] राम एक अवतार के रूप में चित्रित किये गये हैं तथा हरिवंश के अनेक स्थलों में राम और रामकथा का उल्लेख किया गया है।[87]

इसके अतिरिक्त मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, मत्स्य पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, कूर्म पुराण आदि में रामकथा का प्रसंगानुसार यथास्थान उल्लेख प्राप्त होता है। इन पुराणों का रचनाकाल चतुर्थ शताब्दी से लेकर सप्तम शताब्दी तक माना जाता है।[88]

उक्त पुराणों से अर्वाचीन पुराणों यथा वाराह पुराण (अष्टम्शताब्दी), लिंग पुराण (दशम् शताब्दी), वामन पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्म पुराण, गरूड़ पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, नृसिंह पुराण, देवीभागवत पुराण, बृहद्धर्म पुराण, कालिका पुराण और कल्कि पुराण आदि में कतिपय भिन्नताओं के साथ रामकथा का उल्लेख प्राप्त होता है।[89]

अवतारवाद के सम्बन्ध में पुराणों में अनायास ही रामकथा प्राप्त हो जाती है। अवतारवाद पुराणों का प्राण है; इसीलिये तुलसीदास अपने काव्य में वर्णित रामकथा को 'नानापुराणनिगमागमसम्मतम्' कहते हैं।[90] नृसिंह पुराण (400–500 ई0) में रामकथा के 6 काण्डों का सार संक्षेप वाल्मीकि रामायण के अनुसार यथावत्

वर्णित है। इस पुराण में राम को नारायण का पूर्णावतार प्रतिपादित किया गया है।[91]

विष्णु पुराण (चतुर्थ शताब्दी) में रामकथा के सन्दर्भ में सीता को अयोनिजा कहा गया है और रामकथा इसमें लगभग कुछ विस्तार से प्राप्त होती है।[92]

वायु पुराण (पंचम शताब्दी) में विष्णु पुराण की भाँति रामकथा प्राप्त होती है। इसमें भी सीता को अयोनिजा कहा गया है।[93]

भागवत–पुराण में (षष्ठ या सप्तम् शताब्दी) रामचरित के साथ–साथ उत्तररामचरित भी प्राप्त होता है।[94]

कूर्म पुराण (7वीं शताब्दी) में राम–रावण युद्ध, सीता–स्वयंवर और समुद्र के द्वारा श्रीराम को मार्ग देने आदि के वर्णन तथा शिवलिंग की स्थापना आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्य पुराणों के परिशीलन से विदित होता है कि प्रायः पुराणों में रामकथा और रामचरित किसी न किसी रूप में प्राप्त है।

नाना पुराणों के अतिरिक्त अन्य अनेक रामायणें प्राप्त होती हैं जो रामकथा के अजस्र स्रोत के प्रति प्रमाण हैं कि रामकथा भिन्न–भिन्न रूपों में वैदिक काल से लेकर आज तक लोक–विश्रुत है और लोक–सन्ताप का हरण कर रही है। अन्य रामायणों में योग वशिष्ठ रामायण, अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण, तत्व संग्रह रामायण, कालनिर्णय रामायण, अब्दरामायण, रामायण तात्पर्य दीपिका,

रामायण संग्रह, भुशुण्डिरामायण, मूलरामायण, महारामायण, मन्त्र रामायण और वेदान्त रामायण आदि ग्रन्थों में अति मधुरता के साथ रामकथा गुम्फित है।[95]

संस्कृत महाकाव्यों में रामकथा :

रामकथा इतनी लोकानुरंजक और लोकसन्तापहारी है कि प्रायः अनेक कविजनों, चाहे वे संस्कृत के हों या अन्य भाषाओं के, सभी को राम के गुण वर्णन अभीष्ट हैं। 'प्रसन्नराघवम्' नाटक की प्रस्तावना में नट सूत्रधार से प्रश्न करता है कि ये सभी कविजन राम को ही अपनी कविता का वर्णन विषय क्यों बनाते हैं?[96] इस पर सूत्रधार कहता है कि यह कवियों का दोष नहीं हैं क्योंकि अपने सुभाषितों का पात्र एक मात्र रामचन्द्र जी को बनाने वाले कवि–जनों का क्या दोष है, जिन से आकर्षित होकर कवि जन रामचन्द्र को ही अपनी कविता की विषय वस्तु बना रहे हैं।[97] इसी के सन्दर्भ में सूत्रधार का कथन है कि चन्द्र में, रामचन्द्र में, नारियों के चंचल नयनों में किस का मन हर्षित नहीं होता है ?[98] इससे प्रतीत होता है कि कवित्व रूपी वृक्ष रामप्रशंसा रूपी फल के बिना किसी महत्व का नहीं होता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त का यह कथन सर्वथा मौलिक और सत्य है–

राम! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई भी कवि बन जाये सहज संभाव्य है।।

साकेत

रामचरित में कुछ ऐसी अनूठी विशेषता है कि कविजन उसे अपने

कवित्व का श्रेष्ठतम विषय बनाते हैं।

रघुवंश महाकाव्य :

रघुवंश महाकाव्य का शुभारम्भ तो दिलीप और सुदक्षिणा–चरित से होता है किन्तु रघुवंश के दशम सर्ग से रामकथा प्रारम्भ होती है। गुरूवशिष्ठ जगत् के प्रथम मंगल को अभिराम राम नाम से अलंकृत करते हैं।[99] यह रामकथा पन्द्रहवें सर्ग तक चलती है, जिसमें राम के स्वर्गारोहण का वर्णन किया गया है।[100] रघुवंश महाकाव्य के प्रणेता कविचक्रचूड़ामणि कालिदास का रचनाकाल गुप्तकाल का स्वर्णयुग ई0 की चतुर्थ शताब्दी माना जाता है।[101]

भट्टिकाव्य अथवा रावणवधम् :

इस काव्य का रचना काल षष्ठ अथवा सप्तम शताब्दी है। इसमें 22 सर्ग हैं। इसमें व्याकरण के नियमों के निर्देशानुसार रामकथा का ललित मोहन रूप प्राप्त होता है। इस महाकाव्य में उल्लिखित रामकथा का स्रोत वाल्मीकि रामायण ही है।

जानकीहरणम् :

जानकीहरणम् महाकाव्य के प्रणेता कुमारदास माने जाते हैं।[102] इस महाकाव्य में उल्लिखित रामकथा का भी स्रोत वाल्मीकि–रामायण में वर्णित रामकथा ही है। कुमार दास सिंहलद्वीप के वासी थे।

अभिनन्दकृत रामचरित :

इस महाकाव्य की रचना कविवर अभिनन्द ने नवम् शताब्दी में की थी।

इस महाकाव्य में 36 सर्ग हैं। इसमें कतिपय परिवर्तनों के साथ रामकथा का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य की कथा का मूल स्रोत भी वाल्मीकि–प्रणीत रामायण ही है।

रामायण मंजरी :

इस काव्य के प्रणेता काश्मीरी कवि आचार्य क्षेमेन्द्र हैं। इन्होंने अपने इस काव्य में वाल्मीकीय रामायण की रामकथा का संक्षेपीकरण किया है। इसमें कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने कवित्व का भी प्रदर्शन किया है और सुन्दर सूक्तियों का प्रदर्शन किया है।[103]

रामकथा प्रधान नाटक :

रामकथा को उपजीव्य तथा आधिकारिक कथावस्तु बनाकर अनेक संस्कृत–नाटकों का प्रणयन किया गया है, जिससे रामकथा की लोक–प्रसिद्धि स्वतः प्रमाणित हो जाती है। प्राचीन काल से ही रामकथा को लेकर नाटकों के अभिनय की प्रथा एवं परम्परा प्रचलित रही है। राम सम्बन्धी नाटकों की रचना का प्रवाह सतत दिखायी देता है जिसमें कतिपय प्रमुख रामकथा–प्रधान नाटकों का संक्षिप्त उल्लेख निम्नवत् है–

प्रतिमानाटकम् :

यह नाटक रामकथा प्रधान है और कविवर भास की रचना माना जाता है। इसमें सात अंकों में अयोध्याकाण्ड से लेकर सीताहरण और रामराज्याभिषेक तक का कथानक वर्णित है। इस नाटक में अभिनेयता और कौतूहल विद्यमान है।

अभिषेक नाटकम् :

यह नाटक किसी दक्षिण भारतीय कवि की संक्षिप्त रचना है। इसमें बालिवध से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा का गुम्फन किया गया है।[104]

महावीरचरितम् एवं उत्तररामचरितम् :

ये दोनों रचनायें नाटककार भवभूति के प्रशस्त और प्रख्यात नाटक हैं। 'महावीर चरितम्' नाटक में सात अंकों के अन्तर्गत राम-सीता-विवाह से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन किया गया है।

उत्तररामचरितम् :

कविवर भवभूति का यह सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसी नाटक पर भवभूति की कीर्ति पताका फहरा रही है। इसमें राम के उत्तर चरित का साहित्यिक और मनोहारी रूप प्रस्फुटित हुआ है। इस नाटक के माध्यम से भवभूति ने करूण-रस की स्थापना की है। एकरसवाद के वे संस्थापक परमाचार्य हैं। उनका कथन है कि केवल एक ही रस करूण रस है। वही निमित्त भेद से श्रृंगारादि अनेक रसों में परिणत हो जाता है।[105] आलोचकों ने इसी नाटक को भवभूति का कीर्ति स्तम्भ माना है। उनके अनुसार उत्तर-रामचरितम् में भवभूति का विशेष स्थान है।[106]

उदात्तराघवम् :

इसके प्रणेता अनंग हर्ष मातृराज माने जाते हैं। इसमें 6 अंकों में रामवनगमन से लेकर राम के अयोध्या प्रत्यागमन तक की कथा का वर्णन किया गया है।

कुन्दमाला :

कुन्दमाला में भी रामकथा को नाटक की कथावस्तु बनाया गया है। इसके प्रणेता धीर नाग या वीर नाग माने जाते हैं। इसकी कथावस्तु उत्तररामचरितम् नाटक से मिलती है।

बालरामायणम् :

रामकथा से सम्बन्धित यह सबसे विस्तृत नाटक है। यह 10 अंकों में विभाजित है। सीता–स्वयंवर से लेकर राम राज्याभिषेक तक की कथा का इसमें वर्णन किया गया है। कवि शेखर राजशेखर की यह प्रख्यात रचना है।

महानाटकम् :

इसे 'हनुमन्नाटक' भी कहते हैं। इसमें सर्वाधिक 14 अंक मिलते हैं। इसके रचनाकार दामोदर मिश्र अथवा मधुसूदन हैं। इस नाटक में प्रक्षेप की अधिकता है। इस नाटक का कथानक सीता-स्वयंवर से लेकर राम विजय तक है।

आश्चर्यचूडामणि :

इस नाटक के प्रणेता प्रसिद्ध दार्शनिक शंकराचार्य के शिष्य शक्ति–भद हैं। इनका रचनाकाल 788 से 820 ई0 के लगभग है या नवम शताब्दी है। दक्षिण के विद्वान् कुप्पूस्वामी शास्त्री उत्तररामचरितम् नाटक के पश्चात् रामकथा प्रधान नाटकों में श्रेष्ठतम नाटक मानते हैं। भास के नाटकों की भाँति मंगलाचरण के श्लोक के पहले ही इसमें भी 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' वाक्य का प्रयोग मिलता है।

आश्चर्य चूड़ामणि नाटक में शूर्पणखा प्रसंग, रावण विजय और सीता की अग्नि–परीक्षा तक का वर्णन है। सीताहरण की घटना में पहले मारीच राम और लक्ष्मण से सीता को पर्णकुटी में अकेले छोड़ने का आग्रह करता है, फिर राम का रूप धारण कर रावण पर्णकुटी में आता है। उसका सारथि लक्ष्मण के रूप में आकर कहता है कि मैने तपस्वियों से अयोध्या में भरत के शत्रुओं के कुचक्र में फँस जाने की बात सुनी है, अतः आपको सीता सहित वहाँ जाना चाहिये। उधर शूर्पणखा सीता का रूप रखकर पर्णकुटी में बैठ जाती है। उसका कपट खुल जाने पर राम उसे क्षमा करके उसके द्वारा रावण के पास सन्देश भेजते हैं कि शीघ्र गमन करने वाले तुमने सीता को धोखा नहीं दिया है प्रत्युत विधवापन के लिये नियत अपनी नारियों को ही तुमने धोखा दिया है।[107]

आश्चर्य–चूडामणि नाटक अद्भुत रस प्रधान है। अंकावतार और विष्कम्भक के यथेष्ट प्रयोगों द्वारा इसमें क्रियाशीलता का संचार किया गया है। इसकी भाषा प्रसाद–पूर्ण, आडम्बर–शून्य और अर्थगर्भित है। इस नाटक के पद्यों में प्रसाद और माधुर्य का मनोहर मिश्रण हुआ है। इसमें प्रयुक्त वैदर्भी रीति महाकवि कालिदास का स्मरण करा देती है।

घोर वन में शूर्पणखा को सुन्दरी वेष में देख कर लक्ष्मण कहते हैं– कहाँ तो वनचरों के लिये भी दुर्गम गहन वन और कहाँ कमलों की शोभा चुराने वाले नेत्रों से युक्त यह रमणी! भला कौन विश्वास करेगा कि स्वर्ण कमलों का रसपान करने वाली कलहंसी कभी खारे सागर में वास करेगी ?[108]

कुन्दमाला :

इस कृति के प्रणेता बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग माने जाते हैं। इनका रचनाकाल 1000 ई0 के लगभग माना जाता है। कुछ लोग इसके रचयिता धीरनाग या वीरनाग को मानते हैं क्योंकि एक बौद्ध कवि या दार्शनिक राम कथा प्रधान कृति की रचना नहीं कर सकता है।

कुन्दमाला के प्रथम अंक में, ही राम के आदेश पर लक्ष्मण गर्भवती सीता को गंगातट पर छोड़ आते हैं और सीता को महर्षि वाल्मीकि अपने आश्रम में स्थान देते हैं। दूसरे अंक में, लवकुश के जन्म से लेकर वाल्मीकि द्वारा उन्हें रामायण की शिक्षा और नैमिषारण्य में राम के अश्वमेध यज्ञ में आश्रम वासियों के साथ निमन्त्रित होकर सीता के साथ वहाँ जाने को तत्पर होने तक की कथा वर्णित है। तीसरे अंक में, अपने पुत्रों सहित सीता नैमिषारण्य में आती है। गोमती के तट पर भ्रमण करते हुये राम–लक्ष्मण जलधारा में बहती हुई कुन्दपुष्पों की एक माला देखते हैं। उसे सीता द्वारा निर्मित समझकर राम विलाप करने लगते हैं। समीपवर्ती कुंज के पास खड़ी सीता यह करूण दृश्य देखती है।

चतुर्थ अंक में, राम के सम्मुख तिलोत्तमा नाम की अप्सरा सीता का रूप धारण कर उन्हे और भी व्यथित करती है। पंचम अंक में, राम के सम्मुख लव और कुश रामायण का गान करते हैं। छठें अंक में, पृथ्वी देवी सबके सम्मुख प्रकट होकर सीता के पातिव्रत्य को प्रमाणित करती है और अन्त में राम, सीता, लव और कुश का आनन्द प्रद पुनर्मिलन होता है।

कुन्दमाला और उत्तररामचरितम् में कथावस्तु की दृष्टि से बहुत समानता है। दोनों में ही वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा विविध रूपों में वर्णित है। दोनों ही नाटक सुखान्त हैं और दोनों ही में अदृश्य सीता की कल्पना मर्मस्पर्शी ढंग से की गयी है किन्तु कविवर भवभूति दिङ्नाग से कहीं अधिक सफल नाटककार हैं। कुन्दमाला पर उत्तररामचरितम् का न केवल प्रभाव वरन् अनुकरण भी दिखायी देता है। भावुकता, सरसता तथा सूझ-बूझ की मौलिकता में कविवर भवभूति दिङ्नाग से श्रेष्ठतर प्रतीत होते हैं, फिर भी यह कह सकते हैं कि यदि रसात्मक दृष्टि से उत्तररामचरितम् श्रेष्ठ है तो क्रियाशीलता की दृष्टि से कुन्दमाला अधिक प्रभावोत्पादक है; यद्यपि दोनों ही नाटक राम-कथा–प्रधान है।

इसके अतिरिक्त रामकथा से सम्बन्धित अनेक प्राप्य एवम् अप्राप्य नाटक श्रवण गोचर होते हैं जो संक्षेप में निम्नलिखित हैं; इनका यहाँ केवल नामोल्लेख मात्र पर्याप्त होगा यथा–

कनक जानकी, अभिनवराघव, रस–विलास, राघवाभ्युदय, रामाभ्युदय, स्वप्नदशानन, रामानन्द, छलितराम, जानकी–राघव, राम–विक्रम, मारीच वंचित, राघवानन्द, अभिजात जानकी इत्यादि। इसके अतिरिक्त मैथिली कल्याण, अंजना पवनंजय, दूतांगद, उन्मत्तराघव, जानकी–परिणय, राघव पाण्डवीयम्, रामगीत गोविन्द, गीताराघव, राघव विलास, राघवगीतम् आदि विशिष्ट नाट्य रचनायें रामकथा से सम्बन्धित हैं जो रामकथा की व्यापकता के प्रमाण हैं।[109]

प्रस्तुत अध्ययन विषयीभूत निम्नांकित नाटक द्वय हैं– 1– 'अनर्घराघवम्'

और 2– 'प्रसन्नराघवम्'। ये दोनों ही नाटक रामकथा को आधिकारिक कथावस्तु बनाकर विरचित हैं। इन दोनों नाटकों का तुलनात्मक नाट्यशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का अपेक्षित विषय है। इन दोनों ही नाटकों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है–

अनर्घराघवम् :

'अनर्घराघवम्' रामकथा पर आधारित सात अंकों का एक सुप्रसिद्ध नाटक है। इस नाटक के प्रणेता कविवर मुरारि हैं। मुरारि को काव्य–जगत् में 'बाल–वाल्मीकि' के नाम से जाना जाता है।[110]

इस नाटक का प्रथम अंक महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ से प्रारम्भ होता है। विश्वामित्र राजा दशरथ के पास जाते हैं और उनसे यज्ञ–रक्षा के लिये राम–लक्ष्मण को आश्रम ले जाने की इच्छा प्रकट करते हैं। वशिष्ठ विश्वामित्र के अनुरोध का समर्थन करते हैं। दशरथ दुखी होकर विश्वामित्र का अनुरोध स्वीकार करते हैं और उनके साथ रामलक्ष्मण मुनि के आश्रम जाते हैं।

द्वितीय अंक में राम आश्रम में यज्ञ की रक्षा करते हैं। विश्वामित्र की आज्ञा से राम ताड़का तथा अन्य राक्षसों का वध करते हैं। विश्वामित्र रघुकुल की कीर्ति का गान करते हैं।

तृतीय अंक मिथिला पुरी से प्रारम्भ होता है। विश्वामित्र और राम–लक्ष्मण मिथिला आते हैं। उन सबका राजा जनक से परिचय होता है। राम लक्ष्मण को देखकर जनक सीता–विवाह हेतु की गई अपनी धनुर्भंग की प्रतिज्ञा पर खेद व्यक्त करते हैं। इस पर विश्वामित्र हरचाप दिखाने का आग्रह करते हैं और आश्वासन

देते हैं कि राम शिव-धनुष भंग कर देंगे। इसी समय रावण का पुरोहित शौष्कल वहाँ आता है। वह सीता के विवाह के लिये बड़ी कलात्मकता के साथ रावण का प्रस्ताव जनक के समक्ष रखता है। उसकी बात के समाप्त होने के पूर्व ही राम हर–चाप को भंग कर देते हैं। पुरोहित अपना सा मुख लेकर वापस चला जाता है।

चतुर्थ अंक का प्रारम्भ माल्यवान्–शूर्पणखा–संवाद से होता है। इधर हरचाप–भंग सुनकर परशुराम आ जाते हैं। राम–परशुराम संवाद के बाद राम वैष्णव धनुष को चढ़ाते हैं, परशुराम का सन्देह दूर हो जाता है, वे आशीर्वाद देकर तपस्या हेतु वन चले जाते हैं। सीता विवाहोत्सव के साथ परशुराम विजयोत्सव भी मनाया जाता है। उधर कैकेयी पत्र द्वारा राम वनगमन और भरत के राज्याभिषेक का वरदान माँगती है। सभी मर्माहत होते हैं। पितृ–भक्त राम, सीता और लक्ष्मण के साथ वन चले जाते हैं और इस प्रकार चतुर्थ अंक की समाप्ति होती है।

पंचम अंक में, रावण एक भिक्षु का वेश बनाकर श्रीराम के आश्रम में प्रवेश करता है। आश्रम में सीता एकाकिनी है। राम कनक–मृग के पीछे सघन वन की ओर चले गये थे, उनके पीछे लक्ष्मण भी चले गये थे। इधर जाम्बवान् और जटायु के संवाद से विदित होता है कि भिक्षुवेष धारी व्यक्ति और कोई नहीं बल्कि वह स्वयं रावण ही है। रावण सीता को रथ पर बैठाकर उसका अपहरण करता है। सीता रो रही है। रावण और जटायु का युद्ध होता है। जटायु मारा जाता है। इधर राम और लक्ष्मण को सभी समाचार विदित होते हैं, जिससे राम बहुत दुखी होते हैं। श्रीराम सीता की खोज में आगे बढ़ते हैं, सुग्रीव से मैत्री होती है और

बालि का वध होता है। वहीं गुह और हनुमान् मिलते हैं। सुग्रीव का राज्याभिषेक होता है और बालि-पुत्र अंगद युवराज पद अलंकृत करते हैं। किष्किन्धा में महोत्सव की धूम है।

इस नाटक के षष्ठ अंक का शुभारम्भ रावण के मातामह–भ्राता माल्यवान् और दूत सारण एवम् शुक के संवाद से होता है। बाद में विद्याधर रत्नचूड और हेमांगद के संवादों से विदित होता है कि सुग्रीव के नेतृत्व में सम्पूर्ण वानर सेना ने समुद्र बाँधकर लंका पर आक्रमण कर दिया है। युद्ध में इन्द्रजित् और कुम्भकर्ण के मारे जाने के बाद रावण स्वयं युद्ध करने आता है और अन्त में राम के द्वारा मारा जाता है।

सप्तम और अन्तिम अंक का शुभारम्भ सीता की अग्नि–परीक्षा से होता है। बाद में सीता के साथ लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषणादि के सहित श्रीराम पुष्पक विमान से अयोध्या-पुरी की ओर प्रस्थान करते हैं। मार्ग में अनेक नदियों, पर्वतों और सुरम्य स्थानों को देखते हुये, वे सब अयोध्यापुरी पहुँचते हैं जहाँ गुरूवर वशिष्ठ के नेतृत्व में अयोध्यापुरी की सम्पूर्ण जनता श्रीराम की अगवानी करती है। इस प्रकार यह नाटक सुखान्त होकर समाप्त हो जाता है।

कविकृत परिवर्तन :

कविवर मुरारि–प्रणीत अनर्घराघवम् नाटक की रामकथा यद्यपि वाल्मीकीय रामायण की कथा से संगृहीत है किन्तु कवि ने अपने नाटक की नाटकीयता को ध्यान में रखकर उसमें अनेक परिवर्तन किये हैं। आश्रम में यज्ञ की रक्षा हेतु

विश्वामित्र दशरथ से श्रीराम की याचना करते हैं। रामायण में मुनिवर वशिष्ठ दशरथ को समझाते हैं कि आप श्रीराम को यज्ञ की रक्षा के लिये विश्वामित्र के साथ जाने दीजिए[111] किन्तु इस नाटक में वशिष्ठ के स्थान पर उनके सन्देश के साथ वामदेव आते हैं। नाटक विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा से प्रारम्भ होता है।

द्वितीय अंक में विश्वामित्र के दो शिष्यों की कल्पना की गयी है– शुनःशेप और पशुमेढ्र। पशुमेढ्र शुनःशेप को श्रीराम के बल, पराक्रम और तेज का परिचय देता है कि श्रीराम के आश्रम में प्रवेश करते ही गौतम नारी अहल्या प्रस्तर भावत्व को छोड़कर महिला बन गयी है।

तृतीय अंक के प्रारम्भ में कंचुकी और कलहंसिका के संवाद से विदित होता है कि मुनिवर विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण मिथिलापुरी आये हुये हैं जहाँ सीता स्वयंवर आयोजित है। वहीं रावण का पुरोहित शौष्कल रावण को सीता के वर के रूप में प्रस्तुत करता है।

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में माल्यवान्–शूर्पणखा–संवाद अयोध्या में परशुराम–श्रीराम संवाद के द्वारा कवि ने नाटकीयता लाने का प्रयत्न किया है किन्तु कवि ने अयोध्या में ही कैकेयी से दासी द्वारा पत्र प्रेषित करा कर अपने वरदानों में रामवनगमन और भरत के राज्याभिषेक की बातें उठा दी है जिससे उभय पक्ष के लोग अत्यन्त दुखी हो जाते हैं।

कविकृत परिवर्तन यह है कि मिथिला में ही कैकेयी द्वारा रामवनगमन का प्रसंग उठा देना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। विवाहोत्सव के अवसर पर दशरथ

के साथ मिथिला में भरत भी थे। इस अवसर पर भरत की कोई प्रतिक्रिया का प्रकटीकरण न करना नैसर्गिक प्रतीत नहीं होता है। अभी मिथिलापुरी से सीता की विदाई भी नहीं हुई हैं। सीता के पितृगृह मिथिला में रामवनगमन के प्रकरण का उठाया जाना अनौचित्यजनक है। परशुराम का विस्तृत भाषण कथा सौष्ठव को बढ़ाने वाला नहीं है। इससे नाटकीय कथोपकथन बाधित होता है। संक्षिप्त, सारवान् होते हुये इसमें पैनापन नाटकीय गुणों से संवलित होना चाहिये। सप्तम अंक में वर्णन की अधिकता है, जिससे भी नाटकीयता में बाधा उपस्थित होती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कविवर मुरारि ने नाटकोचित संवाद–योजना का ध्यान न देते हुये 'अनर्घराघवम्' नाटक को अपने पाण्डित्य–प्रदर्शन का एक कविता–संग्रह बना दिया है। वे सप्तम अंक के 146 वें श्लोक में स्वयं कहते हैं कि–प्रक्रिया गौरव के द्वारा प्रस्तुत यह 'रावण–विजय' की कविता संसार को संतोष प्रदान करने के लिये होगी।[112] 'अनर्घराघवम्' नाटक का यह नाम सार्थक है। यहाँ पर अनर्घ शब्द का अर्थ पूज्य है। **'अनर्घः पूज्यः राघवो रामो यत्र तादृशम्'** इति 'अनर्घराघवम्' नामनाटकम्। 'अनर्घ' शब्द पूज्य के अर्थ में, कोष में, प्राप्त होता है।[113] नामकरण की यह शैली संस्कृत साहित्य में सुप्रचलित है। इस नाटक में परम पूज्य रघुनाथ राम की कथावस्तु ही आधिकारिक कथावस्तु है और सुग्रीव वृत्तान्त पताका कथावस्तु के अन्तर्गत है।

'अनर्घराघवम्' नाटक में भवभूति के 'महावीर–चरितम्' नाटक का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। सात अंकों के इस नाटक में ताड़का–वध से राम

राज्याभिषेक तक की घटनायें वर्णित हैं। वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु में कविकृत परिवर्तन अति रोचक हैं। तदनुसार कबन्ध राक्षस ने जब केवट गुह पर आक्रमण किया तो लक्ष्मण ने कबन्ध का वध कर दिया, किन्तु अपने इस कार्य में उन्होंने वह वृक्ष गिरा दिया जिस पर दुन्दभि का कंकाल लटका हुआ था।[114] इससे उत्तेजित होकर बालि ने राम को युद्ध के लिये ललकारा। फलस्वरूप श्रीराम विवश होकर बालि का वध कर देते हैं।[115]

सातवे अंक में वर्णित विमान-यात्रा भी अद्‌भुत और बहुत रूचिकर है। सुमेरू पर्वत, चन्द्रलोक आदि में घूमकर राम मलय और प्रस्रवण पर्वतों के ऊपर होते हुये कांची, कुण्डिनपुर, उज्जयिनी, माहिष्मती, यमुना, गंगा, वाराणसी, मिथिला, चम्पा, प्रयागादि तीर्थों के दर्शन करते हुये अयोध्या पहुँचते हैं।

'अनर्घराघवम्' नाटक की प्रस्तावना में कविवर मुरारि कहते हैं कि उन्होंने भयानक रस और वीभत्स रसों से ऊबे हुये प्रेक्षकों के लिये अद्‌भुत एवं वीररस से पूर्ण एक उदात्त रचना की है। उनका कथन है कि श्रीराम के प्रसिद्ध कथानक का उपयोग न करना एक बड़ी भूल है क्योंकि राम के चरित्र–चित्रण से कवि की कृति में उदात्तता और सौष्ठव का संचार स्वतः हो जाता है। यही बात हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मैथिली शरण गुप्त ने अपने महाकाव्य साकेत में शब्दान्तर में कहा है कि हे राम! तुम्हारा चरित अपने आप में एक काव्य है और आपके चरित के गान से सहज ही कोई कवि बन सकता है।[116]

अनर्घराघवम् नाटक के अध्ययन से यह विदित होता है कि कविवर

मुरारि ने इस नाटक में कथावस्तु का अनावश्यक विस्तार किया है। इसके अतिरिक्त नाटक की सीमा से बाहर जाते हुये भावों के प्रदर्शन में अत्युक्तियों का प्रयोग अधिक किया है। कविवर मुरारि ने अपने शास्त्रीय और पौराणिक ज्ञान को प्रचुरता के साथ प्रकट किया है तथा पात्रों का प्राचीन स्वरूप लगभग स्थिर रखा है। उनकी शब्द–राशि और विशाल पद–शय्या तथा उपमायें प्रौढ़ और मौलिक हैं। उनकी अपूर्व मौलिकता को देखकर ही किसी आलोचक ने ठीक ही कहा है कि–'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः'। मुरारि के पद्यों का नाद सौन्दर्य उदात्त है तथा भाव प्रकाशन की शक्ति अतिप्रचुर है। उनका व्याकरण शास्त्रीय ज्ञान गुरू गम्भीर और प्रौढ़ है। 'अनर्घराघवम्' नाटक में नाट्यकला की अपेक्षा वैदुष्य और पाण्डित्य की प्रधानता है। सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजिदीक्षित ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिद्धान्त–कौमुदी' में इस नाटक से अनेक उदाहरण लिये हैं। मुरारि की अत्युक्तियाँ बड़ी चटक और धार–दार हैं।

नाटक के सप्तम अंक में श्रीराम सीता से कहते हैं कि जब तुम्हारे मुख और चन्द्रमा दोनों को तुला में रखा गया तो तुम्हारा मुख, सौन्दर्य में अधिक दिखायी दिया। भार की कमी को पूरा करने के लिये ही मानो चन्द्रमा के साथ चमकते हुये तारों को ही तुला में रखना आवश्यक हो गया है।[117]

'अनर्घराघवम्' नाटक के अध्येता और आलोचक मुरारि के कविकर्म और काव्य–कौशल को देखकर उन्हें नाटककार भवभूति की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ कवि मानते हैं।[118]

प्रसन्नराघवम् :

'प्रसन्नराघवम्' नाटक रामकथा पर आधारित कविवर जयदेव की प्रशस्त रचना है। इस नाटक में राम-कथा के व्याज से जयदेव का कविकर्म और कवि-कौशल बड़ी सुन्दरता के साथ प्रस्फुटित हुआ है।

'प्रसन्नराघवम्' नाटक में कवि द्वारा कतिपय परिवर्तनों के साथ वर्णित रामकथा संक्षेप में निम्नवत् है–

प्रथम अंक के प्रारम्भ में, नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार अपने सहयोगी रंग-तरंग के साथ बातचीत करता हुआ 'प्रसन्नराघवम्' नाटक की प्रशंसा करता है। इसी प्रसंग में सूत्रधार आदि कवि वाल्मीकि का स्मरण करता है। तदनुसार तीनों लोकों की परिपूर्णता में भी सूर्यकुल के भूषण भूत श्रीराम चन्द्र जी की कीर्ति नटी के नृत्य के अवरार में शब्द करने वाले वाद्य के प्रथम शब्द के समान वाल्मीकि मुनि अतिशय उत्कर्ष को प्राप्त करते हैं, जिनके मुखरूप चन्द्र मण्डल से गिरते हुये काव्यामृत समुद्र की कुछ बिन्दुओं को पीकर भी कवि रूप नवीन मेघों की पंक्ति प्रलयकाल तक वृष्टि करती रहती है।[119]

श्रीरामचन्द्र की कथा में किस कवि का मन प्रमुदित नहीं होता। यह कथा कवियों के सारस्वत सागर को निरन्तर समुंल्लसित करती रहती है। कवि जयदेव का मन श्री रामकथा में अतिशय अनुरक्त है। उनके अनुसार चन्द्र में, रामचन्द्र में और नारियों के दृगंचलों में किस का मन आमोदित नहीं होता है। श्रीराम का चरित तो स्वयं काव्य है। इस कथा का आश्रय लेने वाला कोई भी

व्यक्ति कवि सहज रूप से बन जाता है। इसलिये श्रीराम की कथा में किस का मन रमण नहीं करता है।[120] नाटककार जयदेव का कथन है कि अपने कवित्व का एकमात्र पात्र रामचन्द्र को बनाने वाले कवियों का क्या दोष है ? वह तो श्री राम के गुण-गणों का दोष है जो इन गुणों के लोभी कवि जन श्रीराम को निरन्तर अपनी वाणी का सहवासी बना रहे हैं। कवि के अनुसार किसी भी कवि का काव्य-वृक्ष श्रीराम जी की प्रशंसा रूपी फल के बिना निष्फल है।

प्रथम अंक के प्रारम्भ में, महर्षि याज्ञवल्क्य के शिष्य दाल्भ्यायन का प्रवेश होता है और बड़ी नाटकीयता के साथ वह जनक द्वारा आयोजित सीता–स्वयंवर की सूचना देकर वहाँ रावण और बाणासुर के आगमन की सम्भावना बतलाता है, तथा अनिष्ट की आशंका कर यह समाचार अपने गुरू को बतलाने चला जाता है। इसके पश्चात् मंजीरक और नूपुरक नाम के दो स्तुति पाठक सीता-स्वयंवर में अनेक देशों से आये हुये राजाओं के वेश–भूषा और आचरण आदि का वर्णन करते हुये शिव–धनुष के आरोपण में उनके असामर्थ्य का वर्णन करते हैं। तभी मनुष्य का वेष धारण कर लंकाधिपति रावण वहाँ प्रवेश करता है। रावण दूर से सीता को देखकर उसके सौन्दर्य की भूरि–भूरि प्रशंसा करता है, किन्तु वह भी जब धनुष उठाने में असमर्थ होता है तो वह सीता को बलात् ले जाने की बात कहता है। इसी समय बाणासुर प्रवेश करता है और रावण बाणासुर का वाद–प्रतिवाद देखने को मिलता है। दोनों ही शिव–धनुष उठाने में असफल रहते हैं। दोनों अपनी दिशाओं की ओर चल देते हैं। इस प्रकार प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण यज्ञ--रक्षा हेतु कौशिक मुनि शिवामित्र के साथ उनके आश्रम जाते हैं। इधर विश्वामित्र वीरमाता के कर्ण भूषण ताटंकयुग्म कौशिल्या को दे देते हैं। उधर रावण का मन्त्री माल्यवान् एक भिक्षु रूप राक्षस को उसे लाने के लिये ताटका के पास भेजते हैं। उधर ताटका का समाचार जानने के लिये तापस–वेष में दूसरा राक्षस भेजा जाता है। दोनों को यह विदित होता है कि ताटका श्रीराम के द्वारा मारी जा चुकी है। उसका एक पुत्र सुबाहु भी मारा जा चुका है और दूसरा पुत्र मारीच श्रीराम के बाण से दूर फेंक दिया जाता है। श्रीराम को देखकर दोनों राक्षस दूर चले जाते हैं।

श्रीराम और लक्ष्मण एक सुन्दर उपवन में प्रवेश करते हैं और उस उपवन की प्रशंसा करते हैं, वहाँ मधुमास की छवि दर्शनीय है। श्रीराम उस उपवन में स्थित चण्डिका मन्दिर को देखकर, वहाँ पास जाकर चण्डिका को प्रणाम करते हैं। इधर अपनी सखियों के साथ सीता जी का प्रवेश होता है। वे सखियों सहित दुर्गा पूजन करती हैं। नायक श्रीराम नायिका सीता के अलौकिक सौन्दर्य की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं।[121] उधर नाटक की नायिका सीता भी राम के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर आसक्त हो जाती है।[122] सीता की सखी राम के प्रति उनकी आसक्ति को जान लेती है। एक चेटी की सूचना पर सीता अलंकरण धारण करने हेतु माता के पास चली जाती हैं और इधर श्रीराम भी भाई लक्ष्मण के साथ गुरू विश्वामित्र के समीप चले जाते हैं।

तृतीय अंक में, वामनक और कुब्जक की हास्य–रसोत्पादक बातें होती

हैं जिससे विदित होता है कि विश्वामित्र के साथ श्रीराम और लक्ष्मण सीता–स्वयंवर में पधार रहे हैं। तदनु विश्वामित्र श्रीराम और लक्ष्मण के साथ मिथिला में प्रवेश करते हैं। इसके पश्चात् जनक–शतानन्द का विश्वामित्र, श्रीराम और लक्ष्मण से परिचय, प्रणाम और प्रत्यभिवादन आदि होता है। विश्वामित्र जनक से श्रीराम को धनुष उठाने के लिये आदेशित करने को कहते हैं। इसी समय परशुराम के परशु के तेज को सुनाते हुये एक मुनि का प्रवेश होता है। जनक अपने जामाता के प्रति परशु को अपनी धारा शीतल करने की प्रार्थना करते हैं। हजारों राजा शिव–धनुष उठाने में विफल मनोरथ रहते हैं। अन्त में श्रीराम अनायास शिवधनुष भंजन कर देते हैं। श्रीराम का सीता के साथ, माण्डवी, उर्मिला और श्रुतकीर्ति का क्रमशः भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से विवाह होता है।

चतुर्थ अंक में भार्गव परशुराम को शिवधनुष के भंजन का समाचार मिलता है। वे मिथिला में जनक, शतानन्द और विश्वामित्र को क्रोध युक्त वचन कहते हैं। यह विदित होने पर कि श्रीराम ने शिवधनुष का भंजन किया है, आपस में दोनों भाइयों से परशुराम का वाद–प्रतिवाद होता है। अन्त में परशुराम द्वारा प्रदत्त विष्णु के धनुष के सन्धान के प्रस्ताव में श्रीराम विष्णु के धनुष का अनायास ही सन्धान कर देते है, तब श्रीराम में ईश्वरत्व को समझकर भार्गव उन्हें अनेक आशीर्वादों से अभिसिंचित कर चले जाते हैं।[123] इधर श्रीराम भी अपने बन्धुजनों से मिलने के लिये वहाँ से चल देते हैं। इस प्रकार चतुर्थ अंक की समाप्ति होती है।

पंचम अंक में गंगा, यमुना, सरयू और समुद्र का मानवीकरण देखने को

मिलता है और इन्हीं नदी पात्रों के द्वारा अग्रेतर घटित घटनाओं का बोध दर्शकों को कराया जाता है। तदनुसार यमुना, गंगा को सूचित करती है कि उसके भाई सुग्रीव अपने बड़े भाई बालि के दौर्जन्य से पीड़ित हो रहे हैं; और दूसरी ओर राम, लक्ष्मण और सीता उसे पारकर दक्षिण दिशा की ओर चले गये हैं। पार होते समय सीता ने अपने कुटुम्ब के पुनः दर्शनार्थ मुझसे अनुग्रह हेतु प्रार्थना की थी, ये दोनों बाते उसे खिन्न कर रही है। इसके अनन्तर सरयू गंगा और यमुना को अयोध्या वासियों के शोक का समाचार बतलाती है। कैकेयी द्वारा राजा दशरथ से दो वरदानों का माँगा जाना, जिसके अनुसार भरत का राज्याभिषेक और राम का वनगमन। राम, लक्ष्मण और सीता के साथ चौदह वर्षो के लिये वन गमन करते हैं। इधर ननिहाल से राजकुमार भरत लौटते हैं। दशरथ का मरण, भ्राता राम–सीता–लक्ष्मण के वन–गमन से अत्यन्त दुखी होकर वे सुखोपभोग का त्याग कर देते हैं और नन्दिग्राम में रहकर प्रजा का पालन करते हुये श्री राम के लौटने की प्रतीक्षा करते हैं।

इसके बाद की कथा कलहंस के द्वारा कही जाती है। सीता और लक्ष्मण के द्वारा श्री राम का अनुसरण, गोदावरी के पास जाना, लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा का नासाकर्तन, श्री राम द्वारा राक्षसों का वध, तदनु स्वर्णिम मृग का आगमन, राम के द्वारा उसका अनुगमन, लक्ष्मण का राम के पास जाना, भिक्षुकवेषधारी रावण का सीता के पास आना आदि। गोदावरी समुद्र–वार्ता–प्रसंग में श्रीराम द्वारा स्वर्णिम मृग का वध और उसके राक्षस मारीच के रूप में प्रकट होकर यम–लोक जाना,

भिक्षुक वेषधारी रावण द्वारा सीता का अपहरण, मार्ग में जटायु-रावण युद्ध, खड्ग द्वारा जटायु का आहत होना इत्यादि घटना चक्र विदित होता है। तदनु तुंगभद्रा नदी द्वारा श्रीराम के बाणों से बालिवध, सुग्रीव को राज्य प्राप्ति, सुग्रीव द्वारा सीता की खोज में हनुमान् के नेतृत्व में वानर सेना को भेजना इत्यादि घटनाक्रम सूचित किया जाता है।[124] इस प्रकार यह पंचम अंक समाप्त होता है।

षष्ठ अंक में, रावण के द्वारा हरी गयी सीता के वियोग में राम विलाप करते हैं और अत्यधिक सन्ताप का अनुभव करते हैं तब लक्ष्मण उन्हें अनेक प्रकार से सान्त्वना देते हैं। इधर चम्पकापीड और रत्नशेखर नाम के दो नये पात्र पथिकों के रूप में प्रवेश करते हैं। वे आपस में बात करते हैं। रत्नशेखर ऐन्द्रजालिक निपुणता से चम्पकापीड के अनुरोध पर लंका में घटित नूतन सरस चरित्र दिखाने का उपक्रम रचता है। राम और लक्ष्मण भी उसे देखते हैं। ऐन्द्रजालिक अपने कौशल से लंका की अशोक वाटिका में अशोक शाखा का सहारा लेकर प्रसुप्त सीता को दिखाता है। वे स्वप्न में श्रीराम को देखती हैं और जागने पर श्रीराम का स्मरण कर विरह ताप संतप्ता होकर मूर्च्छित हो जाती हैं। इसी बीच त्रिजटा नाम की राक्षसी उन्हें प्रबोध देती है और सीता के द्वारा देखे गये स्वप्न को शुभसूचक बतलाती है।

इसी समय नेपथ्य में वीर वानर हनुमान् के आगमन और रावण पुत्र अक्ष कुमार के प्रवेश की सूचना प्राप्त होती है। इधर रावण सीता को मनाने के लिये प्रार्थना करता है परन्तु सीता उसे फटकारती और धिक्कारती है। इस पर

क्रुद्ध रावण सीता के वधार्थ तलवार निकाल देता है। इसे देखकर श्रीराम मूर्च्छित हो जाते हैं; तब लक्ष्मण श्रीराम को यह कहकर कि यह ऐन्द्रजालिक का कौशल है; सान्त्वना देते हैं। इसके बाद वह सीता का रूधिर ग्रहण करने के लिये एक कपाल पात्र निकालता है। उसी समय उस पात्र में हनुमान् से निक्षिप्त उसके पुत्र अक्षकुमार का मस्तक आ गिरता है जिससे कुछ समय के लिये वह मूर्च्छित हो जाता है और फिर सँभल कर हनुमान् को मारने के लिये निकल पड़ता है। यह देखकर राम, लक्ष्मण और त्रिजटा अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसके पश्चात् राम विरह से व्याकुल सीता अग्नि में प्रवेश करने के लिये त्रिजटा से अग्नि लाने के लिये कहती है। त्रिजटा अग्नि के न मिलने की बात कहती है।

इसके पश्चात् दुस्तर शोक–सागर को पार करने में असमर्थ सीता अशोक वृक्ष से एक अग्निकण की याचना करती है। तदनन्तर अशोक के अग्रभाग से अग्निकण के समान एक रामनामांकित रत्नजटित मनोहर मुद्रिका गिरती है। उसे देखकर सीता आश्चर्य में पड़ जाती है। तब हनुमान् प्रकट होकर सीता से भाई लक्ष्मण के साथ श्रीराम की कुशलता, सुग्रीव के साथ मैत्री, बालिवध, सीता विरह से राम की कृशता और उनकी वियोग व्यथा बतलाते हैं। इसके बाद त्रिजटा के अनुरोध पर सीता भी श्रीराम के लिये प्रति सन्देश और प्रत्यभिज्ञान–स्वरूप चूड़ारत्न हनुमान् को देती है। हनुमान् सीता से जाने के लिये अनुमति लेते हैं और उनसे धैर्य धारण करने के लिये प्रार्थना करते हैं। अनन्तर इन्द्रजित् मेघनाद् द्वारा हनुमान् का बाँधा जाना, पूँछ में अग्नि प्रज्वलित करना, हनुमान् द्वारा लंका दहन

पश्चात् समुद्र-सन्तरण, मधुवन में हनुमान्, नल, नील और वानरों का प्रवेश और मधुपान करना तथा राम के द्वारा हनुमान् की अगवानी के लिये जाना इत्यादि घटनायें प्रदर्शित की गयी हैं।[125]

नाटक का षष्ठ अंक उपसंहारात्मक हैं जिसमें श्रीराम के द्वारा रावण का वध होने के पश्चात् नाटक की नायिका सीता और नायक राम के पुनर्मिलन से सुखान्त पर्यवसान का वर्णन प्राप्त होता है। तदनुसार पुलत्स्य शिष्य गुरू का सन्देश लेकर विभीषण से मिलने के लिये लंका आता है। वहाँ रावण का मन्त्री माल्यवान् और परिचारक करालक के मध्य उसकी बातचीत होती है। करालक के वक्तव्य से विदित होता है कि एक बार विभीषण ने समझाने का प्रयत्न किया है कि—परिणाम में कल्याण चाहने वाले लोग परनारी का मस्तक नहीं देखते हैं; किन्तु रावण विभीषण के कथन पर ध्यान न देते हुये उसके वक्षस्थल पर चरण प्रहार करता है। तत्पश्चात् विभीषण श्रीराम की शरण में चला जाता है। इधर माल्यवान् की आज्ञा से करालक सीता के विरह से व्याकुल रावण के मनोरंजनार्थ किसी चित्रकार से विरचित चित्र रावण को भेजा जाता है । इसी समय रावण के मदन ज्वर को शान्त करने के लिये शीतोपचार प्रेषित किये जाते हैं।

करालक राजद्वार में विद्यमान प्रहस्त को चित्र देता है। प्रहस्त रावण को चित्र दिखाता है, उस चित्र में प्रथम, विविध जन्तुओं से भरे समुद्र का दर्शन है। उसके उत्तर में वानर सेना के साथ धनुर्धर श्रीराम और लक्ष्मण विद्यमान हैं। चित्र में इसके आगे समुद्र का श्रीराम के आधीन होना, विभीषण द्वारा राम का आश्रय,

समुद्र में वानरों द्वारा निर्मित सेतु बन्ध को रावण देखता है किन्तु रावण अपने बल, विक्रम की उत्कृष्टता के आगे श्रीराम के बल–विक्रम की कोई चिन्ता नहीं करता है वह वानरसेना के कोलाहल को मन्दोदरी के भूषणों की ध्वनि के समान चित्त में हर्ष उत्पन्न करने वाला बताता है। उसी समय चिन्तित मन्दोदरी का प्रवेश होता है। उसकी चिन्ता का कारण समुद्र तट में विद्यमान वानर सेना ही है; किन्तु रावण वानर सेना को काम का उद्दीपन करने वाली युवती के समान बतलाता है। मन्दोदरी भय के अन्य कारण भी बतलाती है।

इसी बीच नेपथ्य में राक्षस सेना और वानर सेना के आमने–सामने खड़े होने की बात सुनाई पड़ती है। तब रावण कुम्भकर्ण को जगाकर राम से, मेघनाद को लक्ष्मण से लड़ने की आज्ञा देता है। तदनन्तर कुछ समय बाद कुम्भकर्ण वध और मेघनाद वध की बात सुनाई देती है। दोनों के वध वृत्तान्त को सुनकर रावण और मन्दोदरी मूर्च्छित हो जाते हैं। इसके बाद रावण और राम का युद्ध होता है। इसी बीच रावण के शक्तिबाण से लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं; राम विलाप करते हैं; हनुमान् गन्धमादन पर्वत से औषधि लाते हैं। औषधि के सूँघने मात्र से लक्ष्मण को चेतना प्राप्त हो जाती है। इसी बीच रामलक्ष्मण और रावण के मध्य उक्ति–प्रत्युक्ति होती है।

नेपथ्य में, सूचित किया जाता है कि श्रीराम के बाणों से रावण मारा गया है। सभी देवगण आनन्दित होते हैं। इधर सीता, राम और लक्ष्मण की परस्पर बात होती है। सुग्रीव और विभीषण भी राम–यश का वर्णन करते हैं। हनुमान्

श्रीराम के विजयी होने और सीता के साथ लौटने की सूचना देने के लिये अयोध्या जाते हैं। इधर सभी लोग पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। सभी लोग मार्ग में स्थित यमुना, भरद्वाज आश्रम, उदित सूर्यमण्डल का दर्शन करते हुये अयोध्या पहुँचते हैं। तब राम सपरिवार एवं साथियों के साथ पुष्पक विमान से उतरकर गुरूजन, बन्धुजन और नगरवासियों को आनन्दित करते हैं। इस प्रकार नाटक का सुखान्त पर्यवसान होता है।

रामकथा का स्रोत एवं कविकृत परिवर्तन :

दोनों ही नाटकों की आधिकारिक कथा–वस्तु का स्रोत वाल्मीकि रामायण है किन्तु दोनों ही नाटकों में कविवर मुरारि और जयदेव ने अपने नाटकों के वर्णन प्रसंगों, पात्रों, अभिनय और संवाद–योजना में नाट्य–गुणोचित कतिपय परिवर्तन और संवर्धन किया है।

'अनर्घराघवम्' नाटक के प्रथम अंक में विश्वामित्र रामलक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा हेतु सम्राट दशरथ के यहाँ से अपने आश्रम लाते हैं किन्तु 'प्रसन्नराघवम्' के प्रथम अंक का शुभारम्भ दालभ्यायन की सूचनानुसार सीता के विवाह के लिये व्याकुल जनक की शिथिल मनोव्यथा से होता है। तदनुसार सीता–स्वयंवर आयोजित होता है, उधर शिवधनुष उठाने हेतु रावण–बाणासुर आते हैं और वाद–प्रतिवाद करते हैं किन्तु दोनों ही निराश होकर चले जाते हैं।

इस प्रकार दोनों ही नाटकों के प्रथम अंक का शुभारम्भ भिन्न–भिन्न प्रकार से होता है। 'प्रसन्नराघवम्' नाटक के प्रथम अंक में दालभ्यायन, मंजीरक

और नूपुरक नामक नव्य पात्रों की सृष्टि हुई है किन्तु 'अनर्घराघवम्' नाटक के प्रथम अंक के पात्र परम्परा–प्राप्त हैं। दोनों ही नाटकों के प्रारम्भ में सूत्रधार द्वारा कवि और कथावस्तु की प्रशंसा की गई है। जहाँ एक ओर मुरारि ने अपने वैदुष्य और पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है वहीं दूसरी ओर जयदेव ने कोमलकान्त पदावली और रससिद्ध कविता का प्रमाण दिया है। यह दोनों ही विशेषतायें उभयनाटकों के प्रथम अंक में ही देखने को मिल जाती हैं।

'अनर्घराघवम्' नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार कहता है कि उस अवर्णनीय काकुत्स्थ कुल की प्रशंसा से सुरभित, गम्भीर तथा मनोहर मुरारि की कवितायें वाल्मीकि के वचनरूप अमृत के लिये कूप निपान की शोभा धारण करती हैं।[126] दूसरी ओर कविवर जयदेव की कविता में प्रसाद गुण, शब्दसौष्ठव, अर्थ की उदारता, कोमल काव्य का कौशल, घनीभूत मकरन्द से परिपूर्ण रसाल के समान रसवान् काव्य का चारुतर सौन्दर्य चमत्कारकारी है। 'प्रसन्नराघवम्' में सूत्रधार कहता है कि जिन कवियों की वाणी कोमल काव्य में नैपुण्य कला से विलासवती है उन लोगों के कर्कश न्याय–शास्त्र से कुटिल वचनों के प्रकाशन में भी क्या हानि है ? जिन पुरुषों ने प्रिया के पयोधर मण्डल में नाखूनों से आनन्द के साथ क्षत किया है, वे लोग क्या मतवाले हाथी के मस्तक पिण्ड में बाण नहीं छोड़ते ?[127] सूत्रधार आगे भी जयदेव की कविता के सम्बन्ध में कहता है कि अपनी वाणी की लीलाओं से हर्ष को पाते हुये भी कतिपय जन दूसरे कवियों की उक्तियों में सन्तोष का अनुभव करते हैं। अपने गाढपुष्परस के प्रस्रवण से परिपूर्ण आलवाल वाला

आम्रवृक्ष क्या कलश–जल से सेचन नहीं चाहता।[128]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही दोनों कवियों की शैलीगत विशेषताएँ प्रस्फुटित हो जाती हैं।

'अनर्घराघवम्' के द्वितीय अंक में यजमान शिष्य पशुमेढ्र और शुनः शेप का प्रवेश होता है। श्रीराम अहिल्या का उद्धार करते हैं। बाद में विश्वामित्र के आश्रम की प्रशंसा करते हैं और यज्ञरक्षा के समय विघ्न करने वाले ताड़का, मारीच और सुबाहु आदि का वध करते हैं तथा जनक द्वारा आयोजित धनुष यज्ञ में मिथिलापुरी जाते हैं। इसके पश्चात् सीता स्वयंवर में मंजीरक और नूपुरक से अनेक राजाओं के आने तथा विशेष रूप से रावण–बाणासुर के आगमन और उनकी उक्ति–प्रत्युक्ति की सूचना प्राप्त होती है, किन्तु 'प्रसन्नराघवम्' के द्वितीय अंक में अधिक नाटकीयता है जिसके अन्तर्गत विष्कम्भक के द्वारा ही यह सूचित किया जाता है कि ताटका, सुबाहु का वध हो गया है। मारीच राम के बाण से दूर फेंक दिया गया है। जनक के निमन्त्रण पर विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण मिथिला जाते हैं। पुष्प वाटिका में राम और सीता का चण्डिका मन्दिर के पास मिलन होता है और नायक नायिका में परस्पर प्रीति का उदय होता है। यह प्रसंग इतना मनोहारी है कि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास के रामचरितमानस का पुष्पवाटिका प्रसंग इससे बहुत प्रभावित प्रतीत होता है।

'अनर्घराघवम्' के तृतीय अंक में विश्वामित्र रामलक्ष्मण के साथ सीता–स्वयंवर में मिथिला पहुँचते हैं। इसी समय रावण का पुरोहित शौष्कल रावण

के लिये सीता की मंगनी करता है। इसकी बात समाप्त होने के पूर्व ही राम धनुष का भंजन कर देते हैं। पुरोहित अपना मुँह लेकर चला जाता है। इस अंक में विशेष नाटकीयता दिखायी नहीं देती है।

प्रसन्नराघवम् नाटक का तृतीय अंक नाट्यकला की अनेक विशेषताओं से भरा हुआ है। इसमें वामनक और कुब्जक दोनों पात्र हास्यरसोत्पादक बातें करते हैं। यह बात प्रवेशक से विदित होती है। राम, लक्ष्मण-विश्वामित्र के साथ मिथिला में जनक और शतानन्द से मिलते हैं। अनेक राजा उपस्थित हैं; राम शिवधनुष का भंजन करना चाहते हैं। एक शिवपरिचारक परशु के प्रताप का परिचय देकर शिवधनुष के भंजन के पाप से विरत होने का परामर्श देता है। जनक अपने जामाता राम के प्रति परशु को शीतल धार वाला होने की प्रार्थना करते हैं। अन्ततः श्रीराम शिवधनुष का भंजन कर देते हैं । श्रीराम का सीता से, भरत का माण्डवी से, लक्ष्मण का उर्मिला से और शत्रुघ्न का श्रुतकीर्ति से विवाह सम्पन्न होता है।[129] इस कथावस्तु के गुम्फन में कविवर जयदेव ने नाटकीयता का परिचय दिया है। अभिनय और संवाद–योजना की दृष्टि से 'प्रसन्नराघवम्' नाटक का यह अंक चारूतर है।

इसी प्रकार 'अनर्घराघवम्' नाटक के चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम अंक की संवाद–योजना कठिन और क्लिष्ट श्लोकों से दुरूह है, नाटकीय तत्वों का अभाव दिखायी देता है। वर्णन–विस्तार, समास–बहुला–क्लिष्ट–पदावली, कवि का पाण्डित्य प्रदर्शन और भाषा की दुर्बोधता इत्यादि इस नाटक को मंचन योग्य बनाने

में बाधक हैं।[130] इस प्रकार अनर्घराघवम् नाटक में नाटकीयता का अभाव दिखायी देता है।

रामायण की कथा में जो परिवर्तन कवि ने किये हैं वे रोचक हैं। तदनुसार कबन्ध राक्षस केवट गुह पर आक्रमण करता है। लक्ष्मण उसे रोकते हैं और उसका वध कर देते हैं किन्तु इस कार्य में वह वृक्ष गिर जाता है जिसमें दुन्दुभि का कंकाल लटका हुआ था। इससे उत्तेजित होकर बालि राम को युद्ध के लिये ललकारता है; तब राम विवश होकर उसका वध कर देते हैं।

सातवें अंक की विमान–यात्रा भी अद्‌भुत और रूचिकर हैं। सुमेरूपर्वत, चन्द्रलोक आदि में घूमकर श्रीराम मलय और प्रस्रवण पर्वतों के ऊपर होते हुये कांची, कुण्डिनीपुर, उज्जयिनी, माहिष्मती, यमुना, गंगा, वाराणसी, मिथिला, चम्पा और प्रयागादि तीर्थों के दर्शन करते हुये अयोध्या पहुँचते हैं।

दूसरी ओर 'प्रसन्नराघवम्' नाटक के चतुर्थ अंक, पंचम अंक, षष्ठ अंक और सप्तम अंक लघु विस्तार और कतिपय नाटकीय तत्वों से संवलित होने के कारण अभिराम प्रतीत होते हैं। यद्यपि यह नाटक भी भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' 'प्रतिमानाटकम्' नाटकों की भाँति, मंचन के योग्य नहीं है।

यद्यपि दोनों नाटकों का कथा स्रोत वाल्मीकि रामायण की रामकथा है किन्तु दोनों ही नाटककारों ने अपनी सुविधानुसार अपने नाटकों के लिये अपेक्षित अंकानुसार परिवर्तन किया है और नये पात्रों की सृष्टि की है जैसा कि उपर्युक्त पर्यालोचन से स्पष्ट है।

राम कथा का प्रभुत्व :

वैदिक काल के पश्चात् लगभग द्विसहस्त्राब्दी से भारतीय वाङ्मय में रामकथा का प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय वाङ्मय में नायकों के इतिहास में राम जैसा नायक और नायिकाओं में सीता जैसी नायिका लोकोत्तर और दुर्लभ है। रामकथा में नैतिकता का जो आदर्श और प्रतिमान है; जो रस और मधुरता है, जो चारित्रिक दृढ़ता और उत्कर्ष है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसीलिये रामकथा को उपजीव्य बनाकर संस्कृत साहित्य और हिन्दी साहित्य में अनेक काव्यजातीय ग्रन्थ लिखे गये हैं। रामकथा को आश्रय बनाकर अनेक रामायणें, अनेक महाकाव्य और अनेक नाटक विरचित किये गये हैं। इसलिये कविवर मुरारि का यह कथन अत्यन्त सार्थक है कि—यदि प्राचीन कवियों द्वारा वर्णित होने के कारण रामचन्द्र के चरित को अपनी काव्यकला का आधार नहीं बनाते हैं तो दूसरा रामचन्द्र के समान चरित नायक इस संसार में कहाँ पाया जायेगा और तब तत्तद् गुणों की गरिमा तथा गम्भीरता से पूर्ण वाणी वाले कविगण अपने को महाचरित प्रदर्शन द्वारा कैसे उपकृत कर सकेंगे।[131]

रामकथा की यह मन्दाकिनी आदि कवि वाल्मीकि को पावन करती हुई संस्कृत के अनेकानेक कविवरों भास और कालिदास को धन्य बनाती हुई हिन्दी साहित्य को भी समृद्ध बनाती है। न केवल भारत देश प्रत्युत विश्व के अनेक देशों में रामकथा जीवन का अंग बनी हुई है, इसीलिये तुलसीदास ने रामकथा पर आश्रित रामायणों को शतकोटि कहा है और इसके बाद भी उन्होनें अन्त में अपार

शब्द भी जोड़ दिया है।[132] हिन्दी के कवि मैथिलीशरण गुप्त तो रामकथा को साक्षात् काव्य ही मानते हैं। वे कहते हैं कि रामकथा को अपनाने वाला कोई भी व्यक्ति कवि बन सकता है।[133] रामायण के प्रणेता आदि कवि वाल्मीकि का तो यह कथन है कि जब तक इस पृथ्वीतल में पर्वत खड़े हैं और नदियाँ प्रवाहित हो रही हैं; तब तक रामायण की कथा देश–देशान्तर में गायी जाती रहेगी।[134] इसलिये यह बात स्पष्ट है कि रामकथा का प्रभाव लोकव्यापी रहा है।

रामकथा जीवन रस-संचारिणी :

इस प्रकार उपर्युक्त साहित्य के अवगाहन और विगाहन से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि रामकथा अनेक शताब्दियों से कृष्णकथा की भाँति भारतीय जनमानस को आनन्दित कर रही है। इसीलिये इस पावन और विमल रामकथा को आधार बनाकर अनेक स्वनाम धन्य कवियों ने न केवल संस्कृत में प्रत्युत अनेक भाषाओं के कवियों ने विपुल साहित्य की रचना की है। इस मधुरतम आदर्श प्रधान कथा ने आबाल वृद्ध नारी जनों के हृदयों में जैसी आनन्द की वर्षा की है, जैसी मर्यादित चरित की मधुरतम सृष्टि की है, उसकी अनुगूँज नाना–पुराण–निगमागम अतिरिक्त महाकाव्यों, खण्डकाव्यों और अनेक नाटकों में दिखायी देती है।

रामभक्ति शाखा के साधकों ने साहित्य–साधना के क्षेत्र में मर्यादोपासना तथा माधुर्योपासना के द्वारा अपने हृदय के स्वच्छ बलिदान और पवित्र आनन्द के पक्षों का अनुपम श्रृंगार किया है। वास्तव में, ये दोनों पक्ष एक ही सत्य के दो पार्श्व हैं। पवित्र प्रेम का अकलुष आनन्द ही व्यक्ति के भीतर अनन्त प्रिय के लिये

विश्वरूप, विश्वरूप भगवान् के लिये, पवित्र बलिदान की महासाधना का आनन्दात्मक भाव प्रस्तुत करता है। मर्यादा–पुरूषोत्तम का जीवन इन दोनों पार्श्वो से समृद्ध है। इन्होंने अवतीर्ण होकर विश्व को जितना ही प्रेम किया है, उतना ही उसके लिये उत्सर्ग भी किया है। विश्वमंगल विधान के लिये उन्होंने अपने जीवन को बलिदान-मय बना दिया था। इसी बलिदान से मुग्ध होकर मधुरोपासकों ने उनके जीवन के आनन्दोपभोग को अपनी आँखों में बसा लिया था। उनके बलिदान की स्मृति पीड़ा को वे नहीं सह सकते थे; इसीलिये उन्होंने विश्वमंगलविधायक के जीवन के माधुर्य की उपासना में ही अपने को खो दिया।

इसीलिये बाल वाल्मीकि अनर्घराघवकार कविवर मुरारि कहते हैं कि श्रीराम की कथावस्तु वीर तथा अद्भुत रस से परिपूर्ण है और संसार को आनन्द प्रदान करने वाली है। यह सन्दर्भ अभिनीत करने योग्य है।[135] दूसरी ओर प्रसन्नराघवकार कोमलकाव्य पदावली के प्रणेता नाटककार जयदेव का इस सम्बन्ध में कथन है कि सूर्य से प्रकाश पाने वाले चन्द्र में, नीलकमल के समान कान्ति से सम्पन्न रामचन्द्र जी में और नारियों के कटाक्षपात में, किसका चित्त आनन्दित नहीं होता है।[136]

किम्बहुना, कविवर जयदेव का आगे भी कथन है कि अपने सुभाषितों का एक-मात्र पात्र श्री रामचन्द्र जी को करने वाले कवियों का क्या दोष है ? वह दोष तो उनके गुणगणों का है जो कि जगत् में समस्त इन गुणों ने अन्य गुण–लुब्धों के सदृश होकर इन्हीं रामचन्द्र जी को निरन्तर और आन्नदपूर्वक

सहवास का आधार बनाया है। बहुकाल से उपार्जित सुन्दर चरित्र जिसका बीज है, प्रतिभा जिसका नवांकुर है, पण्डितमण्डली का परिचय जिसका काण्ड है, काव्य जिसका नवपल्लव है और कीर्ति जिसकी पुष्प–परम्परा है; ऐसा काव्यवृक्ष रामचन्द्र जी की प्रशंसा रूप फल के बिना क्या निष्फल किया जाता है ?[137] किंच, कविवर जयदेव का मन श्रीराम के चरण–कमलों में भ्रमण करता हुआ भ्रमर की तरह आचरण करता है।[138]

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि सहस्त्राब्दियों से रामकथा ग्रामों से नगरों तक, झोपड़ी से लेकर राजमहलों तक, रंकजनों से लेकर राज–समूहों तक, सभी नर नारियों एवम् मूर्खों से लेकर प्रबुद्ध कविजनों तक सभी को आनन्दित करने वाली, सन्ताप को दूर करने वाली और जीवन रस का संचार करने वाली एक दिव्य–कथा है।

पाद टिप्पणी

काव्येषु नाटकं रम्यम्।
दशरूपक–भूमिका पृ0 2
डॉ0 भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा प्रकाशन, संस्करण 1962।
आनन्द निष्यान्दिषु रूपकेषु
दशरूपक, पृष्ठ 03, चौखम्बा प्रकाशन 1962
नाटकान्तं कवित्वम्
संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय पृ0 478
अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् रूपकं तत्समारोपात्
दशरूपक पृ001, चौखम्बा प्रकाशन वर्ष 1962
संस्कृत साहित्य का इतिहास
स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा, मनुस्मृति।
जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि।। भरत नाट्यशास्त्र–01
दशरूपक–भूमिका, डॉ0 भोला शंकर व्यास
चौखम्बा प्रकाशन, संस्करण 1962 पृ0–03।
उद्धृत्योद्धृत्यसारं यमखिल निगमान्नाट्यवेदं विरंचिः ।
चक्रे यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नील कण्ठः।
शर्वाणी लास्यमस्य प्रतिपदमपरं लक्ष्य कः कर्तुमीष्टे।।
दशरूपक–पृष्ठ–02, 1962 संस्करण
संस्कृत–ड्रामा, ए0बी0कीथ, पृष्ठ 15–16।
वधूनाटकसंघैश्च संयुक्ताम्, वाल्मीकि रामायण।
नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम्।
यतः कर्णसुखावाचः सुश्राव जनता ततः।। वाल्मीकि रामायण
संस्कृत ड्रामा–डॉ0ए0बी0कीथ, परिच्छेद 2 पृष्ठ 28।
कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः।
व्यसनोत्सवेषु चैषां परस्परस्यैककार्यता।। कामसूत्र 1,4,28–31
पाराशर्य शिलालिभ्यो भिक्षुनट सूत्रयोः, पा0 4.3.118
रह तु कथं वर्तमानकालता कंसं घातयन्ति, बलिं बन्धयन्तीति।
चिरहते कंसे चिरबद्धे च बलौ। अत्रापि युक्ता। कथम् ?
ये तावदेते शोभनिका (सौभिका) नामैते प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति।
महाभाष्य 3.1.26 ।

17. दशरूपक–भूमिका पृष्ठ, 03
    डॉ0 भोला शंकर व्यास–चौखम्बा संस्करण, 1962।
18. काव्यं यशसेऽर्थकृतेव्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
    सद्यः पर निर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।
    काव्यप्रकाश–कारिका–02, चौखम्बा, संस्करण 1987 ।
19. चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
    काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निगद्यते।।
    साहित्यदर्पण–पृ0–02, चौखम्बा संस्करण, 1988 ।
20. आनन्द निष्यन्दिषु रूपकेषु, व्युत्पत्तिमात्रफलमल्पबुद्धिः।
    दशरूपक, चौखम्बा, 1962 पृष्ठ–03 ।
21. अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
    रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्।।
    दशरूपक–चौखम्बा, संस्करण 1962 पृष्ठ–04 ।
22. न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
    न संयोगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते।। नाट्यशास्त्र 1.117 ।
23. नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्। मालविकाग्निमित्रम् 1.4 ।
    चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1962 पृष्ठ–14
24. दशधैव रसाश्रयम्–दशरूपक पृ0–4 ।
25. नाटकमथप्रकरणंभाणंव्यायोगसमवकार डिमाः।
    ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।।
    दशरूपक–संस्करण 1962, पृ0–5 ।
26. वस्तुनेता रसस्तेषां भेदकः। दशरूपक, 1962 पृ0–07 ।
27. अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्था समन्विताः।
    यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पंचसन्धयः।।
    दशरूपक–1962, पृ0 16 ।
28. प्रख्यातोत्पाद्य मिश्रत्वात् भेदात् त्रेधापि तत्त्रिधा।
    दशरूपक– 1.15 पृ0–11, चौखम्बा संस्करण, 1962 ।
29. इत्याद्यशेषमिहवस्तुविभेदजातम्,
    रामायणादि च विभाव्य वृहत्कथांच।
    आसूत्रयेत् तदनु नेतृ रसानुगुण्यात्,
    चित्रां कथामुचित चारूवचः प्रपंचैः।। दशरूपक–1.68 ।
30. उत्पाद्यं कविकल्पितम्– दशरूपक।
31. मिश्रं च संकरात् ताम्याम्–दशरूपक–1.15 ।

32. उक्तांगानां चतुः षष्टिः षोढा चैषां प्रयोजनम्।
    दशरूपक– 1.54 पृष्ठ–66 ।।
33. डॉ0 भोलाशंकर व्यास–दशरूपक–भूमिका पृष्ठ–41
    चौखम्बा संस्करण, 1962 ।
34. डॉ0ए0बी0कीथ–संस्कृत ड्रामा–पृष्ठ–211 ।
35. नेताविनीतो मधुरः त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
    रक्तालोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशी स्थिरोयुवा।।
    बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञा कलामानसमन्वितः।
    शूरोदृढ़श्चतेजस्वी शास्त्रज्ञश्च धार्मिकः।।
    दशरूपक, 2–1,2 संस्करण, 1962 पृष्ठ–75 ।
36. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः। वही 2.3 पृष्ठ–79 ।
37. महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
    स्थिरो निगूढाहंकारो, धीरोदात्तो दृढ़वृतः।।
    दशरूपक 2.4 पृष्ठ–81 ।
38. दशरूपक 2.5 पृष्ठ–85 ।
39. स्वान्यासाधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा। दशरूपक 2–15 पृ0–98 ।
40. दशधैव रसाश्रयम्। दशरूपक, पृ0–04 ।
41. एको रसः करूण एव। उत्तररामचरितम् 3.47 ।
42. भरत–नाट्यशास्त्र 1.109 ।
43. दुखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
    विश्रान्ति जननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।। नाट्यशास्त्र, 1.115 ।
44. वेदोपवेदात्मा सार्ववर्णिकः पंचमो नाट्यवेदः ।
    काव्य–मीमाँसा, चौखम्बा प्रकाशन, 1934 पृ0–15 ।
45. काव्येषु नाटकं श्रेष्ठम्
    दशरूपक–भूमिका, भोलाशंकरव्यास, 1962 संस्करण, पृ0–09 ।
46. पानक रसन्यायेन चर्व्यमाणः पुरइवपरिस्फुरन् हृदयमिव प्रविशन् ब्रह्मास्वादम्।
    इयत्यनुभावयन् अलौकिक चमत्कारकारी श्रृंगारादिको रसः।
    काव्य प्रकाश, चौखम्बा प्रकाशन, संस्करण 1987 पृ0–76 ।
47. रामकथा–कामिल बुल्के
    हिन्दी विभाग, प्रयागविश्वविद्यालय, संस्करण 1997 पृ0–19 ।
48. रामकथा–वैदिक साहित्य और रामकथा
    कामिल बुल्के–1997 पृ0 1–19 ।
49. यस्येक्ष्वाकुरूप व्रते रेवान्। ऋग्वेद–10.60.4 ।

50. चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः । ऋग्वेद–1.126.4 ।
51. रामे वोचमसुरे मघवस्तु। ऋग्वेद सं0 10.93.14 ।
52. नानापुराण निगमागम सम्मतं यद्,
      रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
   स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा,
      भाषा निबद्धमति मंजुल मातनोति।। रामचरितमानस–बालकाण्ड
53. एहिमहँ रघुपति नाम उदारा।
   अति पावन पुरान श्रुति सारा।। रामचरित मानस–1.10
54. प्राचीन भारतीय इतिहास, आर0एस0त्रिपाठी, पृ0–105
55. एक विंशति धा बाह्यवृच्यम्, सहस्त्रवर्त्मा सामवेदः।
   महाभाष्य पस्पशाह्निक ।
56. रामायण सतकोटि अपारा। रामचरित मानस–1.33
57. अभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरायार्थविशोऽवतारीर्दासीः।
   ऋग्वेद–संहिता 6.25.2 ।
58. अवेतृस्त्रोर्घञ्, अष्टाध्यायी 3.3.320 ।
59. हिन्दी विश्वकोश, पृष्ठ–179 ।
60. ऋग्वेद 1.22.16
   1.22.18
   1.28.19
61. संस्कृत–साहित्य का इतिहास–पृष्ठ 101
   वाचस्पति गैरोला–चौखम्बा प्रकाशन, 1978 ।
62. पाली जातकट्ठवण्णना, टी0डब्ल्यू0 बुद्धिस्ट इण्डिया पृष्ठ–183
   इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली भाग–04 पृष्ठ 11,12 ।
63. वैदिक साहित्य का इतिहास
64. जैन राम–कथा पृष्ठ 49–51
   रामकथा–कामिल बुल्के, 1997 ।
65. संस्कृत साहित्य का इतिहास–बलदेव उपाध्याय ।
66. संस्कृत साहित्य का इतिहास–वाचस्पति गैरोला– 1978 पृष्ठ–100 ।
67. काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।
   क्रौंचद्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वम् आगतः।। ध्वन्यालोक–।
68. यावत्तिष्ठन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
   तावद् रामायण कथा भारते प्रचरिष्यति।। वा0 रामायण ।
69. सदूषणापि निर्दोषा, सखरापि सुकोमला।
   नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा।। त्रिविक्रम भट्ट–नलचम्पू ।

70. अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः ।
    मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।। रघुवंशम्–1.4 ।
71. कवेराद्यस्य शासनात्– रघुवंश, 15.41 ।
72. वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नर स्वनौ ।
    किं तद्येन मनोहर्तुमलंस्यातां न शृण्वताम्।। रघुवंशम्, 15.64 ।
73. आपृच्छस्व प्रिय सखममुं तुंगमालिंगय शैलम् ।
    वन्द्यैः पुंसां रघुपति पदैरंकितं मेखलासु ।। मेघदूत, 1.12 ।।
    कालिदास ग्रन्थावली–पृष्ठ–394, सीताराम चतुर्वेदी संस्करण–2019 ।
74. यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।
    संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला– 1978 पृष्ठ–119 ।
75. यन्न भारते तन्न भारते ।
    संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय ।
76. भ्राता मम गुण श्लाघ्यो, बुद्धि सत्व बलान्वितः ।
    रामायणेऽतिविख्यातः शूरो वानर पुंगवः ।।
    महाभारत–आरण्यक पर्व–147.11 ।
77. भ्राता मम गुण श्लाघ्यो, बुद्धि सत्व बलान्वितः ।
    महाभारत–आरण्यक पर्व 147.11 ।
78. वेदे रामायणे पुण्ये, भारते भारतर्षभ।
    आदौ अन्ते च मध्ये च, हरिः सर्वत्र गीयते।।
    महाभारत–स्वर्गारोहण पर्व–6.13 ।
79. अथ दाशरथिर्वीरो रामो नाम महाबलः ।
    विष्णुर्मानुष्य रूपेण चचार वसुधामिमाम् ।। आरण्यक पर्व–3.147 ।।
80. विष्णुना वसता चापि गृहे दशरथस्य वै ।
    दशग्रीवो हतश्छिन्नं संयुगे भीम कर्मणा ।। आरण्यक पर्व–3.299 ।।
81. संधौ तु समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च ।
    रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः ।। शान्ति पर्व–12.326 ।।
82. रामायण शत कोटि अपारा ।
83. मानस–मन्थन, सं0–2040 पृष्ठ–07, पं0 राम किंकर उपाध्याय ।
84. नाना पुराण निगमागमसम्मतं यद् ।
    रामचरितमानस, गीता प्रेस ।
85. आर0सी0 हाजरा, इण्डियन कल्चर भाग–2 पृष्ठ–237 ।
    न्यू इण्डियन एन्टिक्वेरी भाग 1 पृष्ठ–522 ।
86. गीतं च वाल्मीकि महर्षिणा। हरिवंश पुराण–1–6 ।
87. हरिवंश पुराण–1.15, 1.26, 1.54, 2.60, 3.76 ।

88. आर0सी0हाजरा, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग 12 पृष्ठ–683 ।
89. पुराणिक रिकार्ड्स, पृष्ठ–166, आर0सी0 हाजरा ।
स्टडीज़ इन द उपपुराणाज, भाग–2 पृष्ठ–396
आर0सी0हाजरा, न्यू इण्डियन एन्टिक्वेरी–भाग 6 पृष्ठ–1120 ।
90. रामचरितमानस–बालकाण्ड ।
91. शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावं हरेः शुभम् ।
निहतो रावणो येन सगणो देव कण्टकः ।।
राजन् मया ते कथितं रामारातो ।
रामस्य भूम्यां चरितम् महात्मनः ।।
नृसिंह पुराण 47.152, गीता प्रेस संस्करण जनवरी 1971, पृ0–154,212 ।।
92. विष्णु–पुराण 1.12, 4.4 ।
93. वायु पुराण 88.191–200
89.22
94. भागवत पुराण 9.10.11, 2.7.23–24 ।
95. रामकथा : धार्मिक साहित्य में रामकथा ।
पृष्ठ 131–140, कामिल बुल्के संस्करण 1997 ।
96. कथं पुनरमी कवयः सर्वे रामचन्द्रमेव वर्णयन्ति ?
प्रसन्नराघवम् 1956 पृष्ठ–20 ।
97. नायं कवीनां दोषः। यतः–
स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयताम्,
कवीनां को दोषः, स तु गुणगणानामवगुणः ।
यदेतैर्निश्शेषैरपरगुणलुब्धैरिव जग–,
त्यसावेकश्चक्रे सतत सुखसंवास वसतिः ।।
प्रसन्नराघवम् चौखम्बा 1956 पृष्ठ–20–21 ।
98. चन्द्रे च, रामचन्द्रे च, नारीणां च दृगंचले ।
नीलोत्पल सुहृत्कान्तौ कस्य नामोदते मनः ।। प्रसन्नराघवम् 1.10 ।
99. राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः ।
नामधेयं गुरूश्चक्रे जगत् प्रथममंगलम् ।। रघुवंश 10. 67 ।।
100. निर्वर्त्यैनं दशमुख शिरश्छेदकार्यं सुराणाम् । रघुवंश 15.103 ।
101. संस्कृत साहित्य का इतिहास ।
102. मित्र प्रकाशन, 1967, इलाहाबाद ।
103. प्रायः पर्यायगामिन्यः सम्पदो विपदस्तथा। रामायण मंजरी, 1.5
104. संस्कृत साहित्य का इतिहास ।

105. एको रसः करूण एव निमित्त भेदाद् ।
भिन्नः पृथकपृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।। उत्तररामचरितम् ।।
106. उत्तरे रामचरिते तु भवभूतिर्विशिष्यते ।
संस्कृत साहित्य का इतिहास ।।
107. त्वरित गतिना सद्यः सीता त्वया न तु वंचिता ।
नियत विधवाचारा दाराश्चिरं तव वंचिताः ।। आश्चर्य चूड़ामणि, 3.40 ।।
108. क्वेदं वनं वनचरैरपि दुर्विगाहम्, क्वेयं वधूः कुवलच्छविचोरनेत्रा ।
हेमारविन्दमकरन्दरसोपयोगां, कः श्रद्दधीत जलधौकलहंसकन्याम् ।।
आश्चर्य चूड़ामणि 1.11 ।
109. रामकथा–कामिल बुल्के, पृष्ठ 158–172 ।
110. अनर्घराघवम्– 1960 पृष्ठ–03, चौखम्बा प्रकाशन ।
111. त्रस्तरूपं तु विज्ञाय, जगत् सर्वमहान् ऋषिः ।
नृपतिं सुव्रतो वीरो, वशिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ।। रामायण–1.21.5 ।।
112. जेतारं दशकन्धरस्य जितवानेवार्जुनं भार्गव–
स्तं रामो यदि काकपक्षकधरस्तत्पूरितेयं कथा ।
ऊर्ध्वं कल्पयतस्तु बालचरितात्तत्प्रक्रिया गौरवा–
दन्येयं कविता तथापि जगतस्तोषाय वर्तिष्यते ।। अनर्घराघवम्, 7.146 ।।
113. अमूल्ये दृश्यतेऽनर्घः तथा पूज्ये सुदुर्लभे ।
इति अमरकोषः पृष्ठ–30 ।

114. अनर्घराघवम् ।
115. अनर्घराघवम् ।
116. राम! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।
कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है ।। मैथिलीशरण गुप्त–साकेत ।
117. अनेन रम्भोरूभवन्मुखेन तुषार मानोस्तुलया घृतस्य ।
ऊनस्य नूनं प्रतिपूरणाय ताराः स्फुटन्ति प्रतिमान खण्डाः ।। अनर्घराघवम्, 7.81 ।
118. मुरारि पद चिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा ।
भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररी कुरू ।। साहित्यभण्डार ।
संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–200 मेरठ, 1966 ।
119. भास्वद्वंशवतंस–कीर्तिरमणी–रंगप्रसंग स्वनद–
वादित्रप्रथमध्वनिर्विजयते वल्मीकि जन्मामुनिः ।
पीत्वा यद्वदनेन्दुमण्डलगलत्काव्यामृताब्धेः किम–
प्याकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षति ।। प्रसन्नराघवम् 1.9 ।।
120. चन्द्रे च रामचन्द्रे च नारीणां च दृगंचले ।
नीलोत्पल सुहृत्कान्तौ कस्य नाऽऽमोदते मनः ।। प्रसन्नराघवम्, 1.10 ।

121. मेणीदृशस्तनुलता तनुते मुदं नः ।
प्रसन्नराघवम् 2.19 ।

122. श्यामतामरसदामकोमले ।
रामनामनि मनो मनोभवे ।। प्रसन्नराघवम् 2.23 ।

123. यशः पूरं दूरं तनु, सुतनु नेत्रोत्पलवनी,
तमस्तन्द्राचण्डातप, तपसंहस्त्राणि शरदाम् ।
इयं चास्तां युष्मच्छरशागितलंकेश्वरशिरः,
श्रितोत्संगा नन्दत्सुरनरभुजंगा त्रिजगती ।। प्रसन्नराघवम् 4.48 ।

124. परिम्लानां मालामिव ललित सौरभ्यरहिता,
मपि स्थाने स्थाने विचिनुत बधूटीं दिनमणेः ।
इति स्वेनैवोक्ताः कुमुदनलनीलांगदमुखा,
हनूमत्संयुक्ता दिशि दिशि नियुक्ताः कपिभटाः ।। प्रसन्नराघवम्, 5.51 ।

125. दर्पोद्धतं दधिमुखं तरसा निपीड्य,
पीत्वा चिरम् मधुवने स्वरसं मधूनि ।
द्रष्टुं समेति भवतः पदपद्मलीलाम्,
नीलांगदप्रभृतिभिः सहितो हनूमान् ।। प्रसन्नराघवम्, 6.51 ।

126. तत्तादृगुज्ज्वलककुत्स्थकुलप्रशस्ति–
सौरभ्यनिर्भरगभीरमनोहराणि ।
वाल्मीकिवागमृतकूपनिपानलक्ष्मी–
मेतानि बिभ्रति मुरारिकवेर्वचांसि ।। अनर्घराघवम् 1.12 ।

127. येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती,
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्‌गारेऽपि किं हीयते ।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररूहाः सानन्दमारोपिता–
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः ।। प्रसन्नराघवम्, 1.18 ।

128. अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः
परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः ।
निजघन–मकरन्द–स्यन्द–पूर्णालवालः
कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः ।। प्रसन्नराघवम् 1.19 ।।

129. पाणींजनककन्यानां पीडयद्भिः सहानुजैः ।
सीताया रामभद्रो मे पाणिपीडनमिच्छति ।। प्रसन्नराघवम्, 3.51 ।।

130. व्यावर्तव्यमुपाध्वनमुद्धुरशरज्वालामुखीं मातरम् ।
देवीमस्त्रमयीं प्लवंपशवः पश्यन्ति पृष्ठानि वः ।। अनर्घराघवम् 6.18 ।।

131. यदि क्षुण्णं पूर्वैरति जहति रामस्य चरितं
गुणैरेतावद्भिर्जगति पुनरन्यो जयति कः ।
स्वमात्मानं तत्तद्गुणगरिमगम्भीरमधुर --
स्फुरद्वाग्ब्रह्माणः कथमुपकरिष्यन्ति कवयः ।।9।। अनर्घराघवम् 1.9 ।।

132. रामायण शतकोटि अपारा । रामचरितमानस ।

133. राम ! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।
कोई भी कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है ।। मैथिलीशरण गुप्त – साकेत ।।

134. यावत्तिष्ठन्ति गिरयः सरिताश्च महीतले ।
तावद् रामायण कथा भारते प्रचरिष्यति ।। वाल्मीकि रामायण ।।

135. तस्मै वीराद्भुतारम्भगम्भीरोदात्तवस्तवो ।
जगदानन्दकन्दाय संदर्भाय त्वरामहे ।। अनर्घराघवम् 1.6 पृष्ठ 07 ।।

136. चन्द्रे च राम चन्द्रे च नारीणां च दृगंचले ।
नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ कस्य नाऽऽमोदते मनः ।। प्रसन्नराघवम् 1.10 पृष्ठ–18 ।।

137. प्रसन्नराघवम् 1.13 पृष्ठ 22
चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी । 1963 संस्करण ।।

138. वही 1.15, पृष्ठ 23 ।
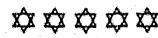
द्वितीय अध्याय

उभय नाटकों के प्रणेता एवं रचनाकाल

द्वितीय अध्याय

उभय नाटकों के प्रणेता एवं रचनाकाल

अनर्घराघवम् नाटक के प्रणेता :

इस नाटक के प्रणेता कविवर मुरारि हैं। जिस प्रकार प्राचीन भारतीय इतिहास अन्धकारावृत हैं और अनुमान् पर आधारित है उसी प्रकार संस्कृत साहित्य के प्राचीन कवियों और नाटककारों का इतिहास भी तमसावृत और अनुमान पर आधारित है। तदनुसार नाटककार मुरारि के सम्बन्ध में निःसंदिग्ध जानकारी का भी अभाव हैं। फिर भी उनके नाटक अनर्घराघवम् और अन्य संस्कृत की रचनाओं एवं पूर्वापर कवियों के कथनों और कतिपय उद्धरणों से मुरारि के सम्बन्ध में उनके रचनाकाल के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश पड़ता हुआ अवश्य दिखायी देता है।

नाटककार मुरारि ने अपने नाटक 'अनर्घराघवम्' की प्रस्तावना में अपना कुछ स्वल्प परिचय दिया है; तदनुसार वे मौद्‌गल्य गोत्र में उत्पन्न हुये थे और उनके पिता का नाम 'वर्धमान' तथा माता का नामं 'तन्तुमती' था।[1] इसके पश्चात् नट नाटक को प्रारम्भ करने का सूत्रधार से आग्रह करते हुये कहता है कि इस मौद्‌गल्य गोत्रोत्पन्न ब्रह्मर्षिवंश मूर्धन्य बालवाल्मीकि मुरारि की कवितायें अमृत बिन्दु की वर्षा करती हैं और जन–जन के हृदय में कौतूहल पैदा करती हैं। सूत्रधार नट की उक्त बात की पुष्टि करते हुये कहता है कि अवश्य ही मुरारि की कविता अमृत कुण्ड की भाँति मधुरतम है और आदिकवि वाल्मीकि की कविता से किंचित् न्यून है।[2]

नाटक की प्रस्तावना में मुरारि का कथन है कि पिष्ट–पेषित रामकथा

के पुनः वर्णन के पीछे, रौद्र, बीभत्स, भयानक रस से ऊबे हुये लोगों को उदात्त, वीर और आद्योपान्त अद्भुत रस की रचना से लोगों को आनन्दित करना ही उनका प्रमुख प्रयोजन है। इस प्रकार सूत्रधार कहता है कि उस वीर तथा अद्भुत रसपूर्ण कथावस्तु से युक्त संसार को आनन्द प्रदान करने वाले सन्दर्भ का अभिनय कर रहे हैं।[3] मुरारि के अनुसार श्रीराम का चरित्र कवि की रचना को उदात्तता और मनोहरता प्रदान करता है और इसलिये इतने सुन्दर विषय का तिरस्कार करना मूर्खता है।

यद्यपि कविवर मुरारि ने अपने वैदुष्य और कवित्व का अपने ही मुख से प्रशंसात्मक वर्णन किया है और अपने को 'बालवाल्मीकि' की पदवी से विभूषित किया है तथा ऐसा कहकर उन्होंने रामकथा पर रचना करने में अपने को आदि कवि वाल्मीकि के समान रचना करने वाला बालवाल्मीकि के रूप में प्रस्तुत किया है किन्तु उनके इस कथन में इतनी सत्यता नहीं है जितना वे मान बैठे हैं। रामकथा पर प्रबन्धात्मक काव्य और नाटक लिखने वालों में वाल्मीकि, कविकुलगुरू कालिदास, प्रतिमानाटक के रचयिता कविवर भास, उत्तररामचरितम् और महावीरचरितम् के प्रणेता नाटककार भवभूति आदि स्वनाम धन्य कविगण जिस विषयवस्तु का सविस्तार रसात्मक और चमत्कारकारी निरूपण कर चुके हों, उसमें किसी विरल महाकवि को ही सफलता मिल सकती है।

पाश्चात्य विद्वान् और समीक्षक डॉ0 कीथ का कहना है कि वस्तुन्नयन विषयक मुरारि के आत्म विश्वास का औचित्य सिद्ध नहीं होता है। भवभूति जिस

विषयवस्तु का अतिशय कवित्व–पूर्ण गुम्फन कर चुके हों उसमें किसी महाकवि को ही सफलता की सम्भावना हो सकती है। मुरारि इस प्रकार के कवि नहीं थे। वे आगे यह भी कहते हैं कि कतिपय परवर्ती लेखकों ने मुरारि की गम्भीरता का गुणगान किया है; किन्तु उसमें औचित्य का लेश भी नहीं हैं।[4]

डॉ0 कीथ के अनुसार इस नाटक के दोष स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं। कविवर मुरारि ने परम्परागत कथा में सुधार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया है।[5]

कथावस्तु की समीक्षा :

अनर्घराघवम् नाटक की कथा–वस्तु की मीमांसा करने पर विदित होता है कि प्रथम अंक में दशरथ और वामदेव का वार्तालाप होता है तथा इसी बीच महर्षिवर विश्वामित्र के आगमन की सूचना प्राप्त होती है। विश्वामित्र और दशरथ की परस्पर प्रशंसा उद्वेजक और औचित्य हीन है परन्तु विश्वामित्र काम की बात करते हैं और अपने आश्रम को पीड़ा पहुँचाने वाले राक्षसों के विरूद्ध राम की सहायता की याचना करते हैं। अपने प्रिय बालक को संकट में डालते हुये राजा बहुत संकोच में पड़ जाते हैं। तब विश्वामित्र उनसे कर्त्तव्य पालन का आग्रह करते हैं और अन्ततः राजा दशरथ राम और लक्ष्मण को उन्हें सौंप देते हैं। इसी बीच वैतालिक मध्याह्न की घोषणा करता है और राजा पुत्रों के वियोग में दुखी होते हैं।

दूसरा अंक विश्वामित्र के दो शिष्यों शुनःशेप और पशुमेढ्र के मध्य लम्बे

संवाद से प्रारम्भ होता है जो नीरस और उबाऊ है। इनके इस संवाद से बालि, रावण, राक्षसों, जाम्बवन्त, हनुमान और ताड़का के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इस विष्कम्भक के बाद राम और लक्ष्मण का प्रवेश होता है। वे आश्रम और आश्रमवासियों के कार्यों और फिर मध्याह्न की गर्मी का सविस्तार वर्णन करते हैं। आह्निक यज्ञ प्रारम्भ होता है; राम लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ लम्बी बात करते हैं। इतने में सन्ध्या उपस्थित हो जाती है। वे आश्रम में परस्पर चन्द्रोदय का वर्णन करते हैं। रात्रि का पदार्पण होता है। कोई सूचना देता है कि राक्षसी ताड़का आ गयी है, वे एक नारी को मारने में संकोच प्रदर्शित करते हैं किन्तु अन्त में वे उसका वध कर देते हैं। इसके बाद विश्वामित्र मिथिला चलने का सुझाव देते हैं। वे सब धनुष यज्ञ देखने मिथिला प्रस्थान करते हैं। इसी व्याज से राजा जनक और मिथिला के वर्णनों का अवसर मिलता है।

यहाँ परम्परा प्राप्त रामकथा के सविस्तर और नाटक के अननुकूल संवाद कुछ उद्वेजक प्रतीत होते हैं।

तीसरा और चतुर्थ अंक भवभूति के 'महावीरचरितम्' के तृतीय और चतुर्थ अंक की अनुकृति प्रतीत होता है, किन्तु भवभूति ने कहीं अधिक कौशल के साथ अपने नाटक का मुख्य भाव प्रकट किया है और कथानक को सफल एकान्विति प्रदान की। 'सीता' की एक परिचारिका कलहंसिका के साथ वार्तालाप करते हुये 'जनक' का कंचुकी बतलाता है कि राजकुमारी सीता विवाह के योग्य हो

गयी है और रावण उसका पाणिग्रहण करना चाहता है।

अगले दृश्य में शतानन्द के साथ राजा जनक राम का स्वागत करते हैं, परन्तु वे इस विषय में संकोच का अनुभव करते हैं कि राम शिवधनुष को चढ़ाने की कठिन परीक्षा दे। इसी बीच रावण का पुरोहित शौष्कल आकर निवेदन करता है कि सीता का विवाह रावण से कर दिया जाये। वह इस बात को रोषपूर्वक अस्वीकार करता है कि उसका स्वामी रावण धनुष को चढ़ाये। शौष्कल रावण की प्रशंसा करता है। वह जनक से कहता है कि हे राजन् जनक ! त्रिपुरारि शिव के प्रसन्न हो जाने पर भी रावण ने जब खुजलाहट भरी अपनी भुजाओं से अनायास सभी सिर काट दिये और वह उनसे वर प्राप्त भी करना चाहता था परन्तु याचना दैन्य विमुख उसके सभी मुख 'तुम माँगों, तुम माँगों' कहकर आपस में झगड़ने लगे थे, उस रावण की क्या प्रशंसा की जाये। शौष्कल जनक से आगे कहता है कि यह कन्या निश्चय ही किसी को दान करनी है, फिर इसे भुज–पराक्रम से त्रिभुवन को मसक समान सिद्ध कर देने वाले रावण जब माँग रहे है; तब आप किंकर्त्तव्यविमूढ़ की तरह क्या देख रहे हैं ? [6]

इस पर गुरू शतानन्द कहते हैं कि महादेव के धनुष को आरोपित करके जो हमें आनन्दित करेगा, सीता उसी को दी जायेगी। इस पर शौष्कल कहता है कि अपनी सौ अंगुलियों से संचालित कैलाश पर्वत के द्वारा जिस रावण ने अपने वज्र के समान कठोर भुजाओं के पराक्रम को स्पष्ट बता दिया है, वह दशकण्ठ भला

इस प्रकार शंकर जी के धनुष को उठाने का जघन्य कार्य कैसे कर सकता है किन्तु शतानन्द ने उसे स्पष्ट रूप से यह बतला दिया है कि राजा जनक की यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि जो शिव–धनुष को नहीं उठा सकेगा उसके साथ सीता का विवाह नहीं हो सकेगा। शौष्कल चला जाता है। अन्त में, राम को शक्ति परीक्षण का अवसर मिलता है। श्रीराम उस शिवधनुष का भंजन कर देते हैं। सीता के साथ राम का विवाह होता है। दशरथ के अन्य पुत्रों का भी वहीं पर विवाह होता है।

चतुर्थ अंक में रावण का मन्त्री 'माल्यवान्' आता है। वह अपनी सीता प्राप्ति-विषयक योजना की असफलता पर पश्चाताप कर रहा है। विदेहराज जनक के यहाँ से शूर्पणखा आती है और राम–सीता–संयोग की बात बताती है। माल्यवान् जानता है कि रावण इन दोनों को अलग करने का निश्चित प्रयत्न करेगा। वह शूर्पणखा को परामर्श देता है कि वह राम को वन में निर्वासित करने के लिये कैकेयी की दासी मन्थरा का छद्म वेष धारण करे क्योंकि वन में उन पर आक्रमण करना अधिक सरल होगा। वह शूर्पणखा द्वारा दिये गये इस समाचार से भी प्रसन्न होता है कि परशुराम मिथिला पहुँच गये हैं। इससे उसकी लक्ष्य सिद्धि में सहायता मिलने की सम्भावना हो सकती है। इसके बाद के दृश्य में राम और परशुराम का वाग्युद्ध होता है। यहाँ यह बात स्पष्ट है कि 'अनर्घराघवम्' नाटक के प्रणेता कविवर मुरारि ने भवभूति के 'महावीरचरितम्' का अनुकरण किया है।

यद्यपि इस नाटक के राम 'महावीर–चरितम्' नाटक के राम की अपेक्षा

कहीं अधिक विनम्र हैं, परन्तु उनके हितैषी, रंगमंच पर वस्तुतः उपस्थित हुये बिना, नेपथ्य से आक्षेप करते हैं। अन्त में, राम अपने प्रतिद्वन्द्वी परशुराम को सचेत करते हुये कहते हैं कि उनकी क्षत्रिय विनाश से अर्जित यश की पताका जीर्ण हो गयी है। वे परशुराम को अपना यश पुनः स्थापित करने की चुनौती देते हैं और दोनों संघर्ष पर तुल जाते है। यह सब नेपथ्य में घटित होता है।

इसके बाद दोनों प्रतिद्वन्द्वियों में अच्छा सम्बन्ध स्थापित होता है। वे मंच पर आते हैं और एक दूसरे का अभिनन्दन करते हैं। इसके बाद परशुराम चले जाते हैं। तब जनक और दशरथ आते हैं। दशरथ ने राम के लिये राजत्याग करने का निश्चय किया है परन्तु लक्ष्मण मन्थरा को साथ लेकर प्रवेश करते हैं। वह कैकेयी का एक अनर्थकारी पत्र लाती है। उसमें राजा दशरथ से दो वरदान माँगने की बात कही गयी है प्रथम–राम का निर्वासन और द्वितीय–भरत का राज्याभिषेक। सीता को सूचना देने के लिये राम--लक्ष्मण को भेजते हैं और अपने पिता को जनक की देखरेख में सौंपकर प्रस्थान करते हैं। उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि नाटक के कथानक में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है और इन अंकों की कथावस्तु 'महावीरचरितम्' नाटक के अनुसार ही आगे बढ़ती है।

पंचम अंक में जाम्बवान् और तापसी श्रवणा के संवाद में राम के वन में पहुँचने तक के कार्यों का वर्णन है। श्रवणा पथिक राम–लक्ष्मण के स्नेह पूर्ण स्वागत का पूर्ण प्रबन्ध कराने के लिये सुग्रीव के पास जाती है। जाम्बवान्

परिव्राजक के वेश में आये हुये रावण और लक्ष्मण का कथनोपकथन छिप कर सुनता है। इसके बाद गृद्ध जटायु यह भयानक समाचार लाता है कि उसने रावण तथा मारीच को वन में देखा है। सुग्रीव को इस खतरे से सावधान करने के लिये जाम्बवान् उनके पास जाता है। सीता का अपहरण देखकर जटायु अपहर्ता का पीछा करता है। इस विष्कम्भक के अनन्तर राम और लक्ष्मण आते हैं। वे सीता की खोज करते हैं किन्तु सीता के न मिलने के कारण शोक-मग्न होकर इधर-उधर भटकते हैं। इसी बीच उन्हें चीत्कार सुनाई पड़ता है। वे देखते हैं कि उनका मित्र निषादराज गुह कबन्ध के द्वारा आक्रान्त है। लक्ष्मण उसे बचाते हैं परन्तु ऐसा करते हुये वे दुन्दुभि के कंकाल वृक्ष को उलट देते हैं। इससे उत्तेजित होकर बालि आता है और लम्बे कथोपकथन के बाद राम को युद्ध के लिये ललकारता है। मंच से लक्ष्मण और गुह उस युद्ध का वर्णन करते हैं। अन्त में, बालि मारा जाता है। नेपथ्य में, सुग्रीव के राज्याभिषेक की सूचना मिलती है। वह सीता की प्राप्ति के लिये कृत संकल्प है। अपने मित्र गुह के साथ लक्ष्मण उस राज्याभिषेक महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये मंच से चल देते हैं।

षष्ठ अंक में रावण के दो गुप्तचर शुक और सारण समुद्र पर सेतु निर्माण और राम की सेना के आगमन की सूचना माल्यवान् को देते हैं। नेपथ्य से सूचना मिलती है कि कुम्भकर्ण और मेघनाद युद्ध के लिये प्रस्थान कर चुके हैं। इसी प्रकार नेपथ्य से यह भी सूचना मिलती है कि वे दोनों मारे जा चुके हैं और

रावण अन्तिम बार युद्ध के लिये प्रस्थान कर चुका है। माल्यवान् उसका अनुगमन करने का निश्चय करता है। दो विद्याधर रत्नचूड और हेमांगद बोझिल तथा नीरस वाग्विस्तार के साथ अन्तिम संग्राम का वर्णन करते हैं। इस प्रकार यह षष्ठ अंक समाप्त होता है।[2]

नाटक के सप्तम अंक में युद्ध समाप्त होने के पश्चात् राम, लक्ष्मण, सीता और सुग्रीव धनपति कुबेर के पुष्पक विमान में अयोध्या के लिये प्रस्थान करते हैं, परन्तु उनका मार्ग साधारण पथ से भिन्न है क्योंकि वे यात्री पहले काल्पनिक पर्वत सुमेरू और चन्द्रलोक के दर्शनार्थ अन्तरिक्ष लोक में जाते हैं; तत्पश्चात् सिंहल के वर्णन के साथ उनकी पार्थिव यात्रा प्रारम्भ होती है। तदनन्तर वे मलय पर्वत, वन, प्रस्रवण गिरि, गोदावरी, माल्यवान्, महाराष्ट्र देश के कुण्डिनीपुर, काँची–उज्जयिनी, माहिष्मती, यमुना–गंगा, वाराणसी, मिथिला और चम्पा के ऊपर से यात्रा करते हैं। तब विमान पश्चिम की ओर उड़कर प्रयाग पहुँचता है और उसके बाद मुड़कर अयोध्या की ओर पहुँचता है जहाँ राम के भाई भरत, शत्रुघ्न, गुरू वशिष्ठ उनके राज्याभिषेक की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पुष्पक विमान की इस यात्रा में भौगोलिक औचित्य पर ध्यान नहीं दिया गया है। परम्परागत कथा में सुधार करने का कोई विशेष प्रयत्न दिखायी नहीं देता है। यद्यपि नाटक में बालि का वध औचित्य के साथ कराया गया है। प्रायः सभी पाठ रूढ़िबद्ध हैं। विषय को बोझिल बनाने और उसके विस्तार देने में कवि ने

अधिक रूचि दिखायी है। प्रत्येक भाव में अतिशयोक्ति दिखायी देती है। कविवर मुरारि ने अपने पुराण कथा-विषयक पर्याप्त ज्ञान के कारण कल्पनाओं और शब्द-क्रीड़ा का बाहुल्य प्रदर्शित किया है। उन्होंने नाटक में चन्द्रलोक और सुमेरू पर्वत के दर्शन की जो उद्भावना की है उसकी क्या आवश्यकता थी ? यह विचारणीय है। महावीर चरितम् के जटायु-सम्पाति संवाद के स्थान पर नाटक में जटायु-जाम्बवान् सम्वाद की योजना भी विचारणीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार मुरारि नाटकोचित संवाद-योजना या संवाद-कला के मर्मज्ञ नहीं थे। उनकी रचना का गुण यह प्रतीत होता है कि वे संस्कृत भाषा के प्रयोग और प्रभावशाली छन्दों के अनुरूप शब्द-विन्यास में कुशल और निपुण थे। उनका शब्दाकोश सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त समृद्ध है। व्याकरण के दुर्बोध प्रयोगों के कारण उन्हें इतनी ख्याति मिली थी कि प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजि दीक्षित ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्त कौमुदी में अनर्घराघवम् नाटक से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। अपने भाषा-सम्बन्धी गुणों के कारण वे आधुनिक अभिरूचि के पाठकों में अधिक प्रशंसनीय रहे हैं।

यद्यपि कविवर मुरारि में भाषा सम्बन्धी शब्द प्रयोग की विदग्धता है किन्तु उनके काव्य में अभिव्यंजना शक्ति का चमत्कार भी दिखायी पड़ता है। वे पण्डित राज है। उन्होंने नाटक लिखते समय इस बात की चिन्ता नहीं की है कि उनका नाटक मंचन के योग्य बन सकेगा या नहीं। उन्होंने पाण्डित्य-प्रदर्शन और

अपने कवित्व का प्रदर्शन दिखाने का भरपूर प्रयत्न किया है।

कविवर मुरारि कहते हैं कि यद्यपि सरस्वती देवी की उपासना बहुत से लोग करते हैं, परन्तु वाणी के तत्व को गुरूकुल में रहकर परिश्रम करने वाले मुरारि कवि ही भली भाँति जानते हैं। वानर सेना ने समुद्र को अवश्य पार कर लिया था, किन्तु उसकी गहराई को पाताल तक डूबा हुआ स्थूलकाय मन्दराचल ही जानता है।[8]

मुरारि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

कविवर मुरारि का व्यक्तित्व असाधारण है। वे पण्डितों के भी पण्डित हैं। व्याकरण, धर्मशास्त्र, वैदिक वाङ्मय, राजनीति, न्यायशास्त्र और वैशेषिक शास्त्र के वे अद्वितीय विद्वान् प्रतीत होते हैं। उनके नाटक अनर्घराघवम् का प्रत्येक पृष्ठ उनके प्रखर पाण्डित्य का प्रमाण है। उन्होंने गुरूकुल में रहकर बड़ी कठिनाई से शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था। उनका कथन है कि अनेक लोग वाग्देवता की उपासना करते हैं किन्तु सरस्वती का स्वर तत्व तो मैंने ही गुरूकुल में रहकर बड़ी कठिनाई से अर्जित किया है। वानर सेना ने सेतु का निर्माण कर यद्यपि समुद्र पार किया है; किन्तु समुद्र की गहराई को तो वस्तुतः मन्दराचल ही जानता है।[9] सर्वप्रथम उनके व्याकरण शास्त्रीय वैदुष्य को ही देखा जा सकता है। कविवर मुरारि महावैयाकरण थे; यह बात उनके नाटक अनर्घराघवम् के अध्ययन से विदित हो जाती है।

'अनर्घराघवम्' नाटक के द्वितीय अंक में श्रीराम और लक्ष्मण परस्पर चन्द्रोदय का वर्णन करते हैं और उसी समय विश्वामित्र का अभिवादन करते हैं तभी विश्वामित्र सस्नेह और अति सम्मान के साथ राम का आलिंगन करते हैं और कहते हैं कि प्रकृष्टकर्ता के अभिप्राय रूप क्रियाफल वाली यज्ञ विधियों को सम्पादित करते समय इसी प्रकार आप हमारी रक्षा किया करें।[10] यहाँ पर मुरारि ने पाणिनि के सूत्र 1.3.72 का स्पष्ट रूप से उदाहरण दिया है जिसमें कहा गया है कि स्वरितेत् और ञित् धातुओं से कर्तृगामी क्रिया फल होने पर आत्मनेपद होता है।[11] यहाँ पर पाणिनि के सूत्र के समान मुरारि के द्वारा कर्तृभिप्राय क्रिया फल शब्द का प्रयोग उनके व्याकरण–प्रेम को प्रदर्शित करता है।

इसी प्रकार इसी नाटक के चतुर्थ अंक में 'आदेश' शब्द का प्रयोग मुरारि के व्याकरण प्रेम को प्रदर्शित करता है। माल्यवान् नामक पात्र कहता है कि यद्यपि तपस्या के द्वारा परशुराम में ब्राह्मणत्व है किन्तु स्थानिवद् भाव की तरह वह क्षत्रिय के कार्य को नहीं छोडते हैं। यहाँ पर स्थानिवद् भाव और आदेश शब्द पाणिनीय व्याकरण से लिये गये हैं।[12] व्याकरण में आदेश शब्द शत्रुवत् होता है और अल् से भिन्न आदेश स्थानिवद् माना जाता है।[13] इसके अतिरिक्त मुरारि के नाटक अनर्घराघवम् से भट्टोजि दीक्षित जैसे वैयाकरण ने भी अपने प्रसिद्ध व्याकरण के ग्रन्थ 'सिद्धान्त–कौमुदी' में अनेक उदाहरण दिये हैं। इससे मुरारि की व्याकरण सम्बन्धी विद्वता असंदिग्ध रूप से प्रकाशित होती है।

कविवर मुरारि व्याकरण शास्त्र के अतिरिक्त वेद शास्त्र, धर्म शास्त्र और वैशेषिक शास्त्र के भी प्रखर पण्डित थे। उनके अनर्घराघवम् नाटक में इस सम्बन्ध में विपुल सामग्री प्राप्त होती है। यजुर्वेद, गायत्री मन्त्र और यज्ञ-यागादि से सम्बद्ध अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं।[14] इसी प्रकार राजनीति में भी उनके प्रखर ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है। इस नाटक के द्वितीय, चतुर्थ और षष्ठ अंकों मे राजनीति से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है। अरिषड्वर्ग, राजपुत्र का कर्त्तव्य, राजाओं का तेज, राजा में आत्मबल की आवश्यकता आदि अनेक विषयों पर मुरारि के विचार इस नाटक में मिलते हैं जिससे प्रतीत होता है कि वे राजनीति में भी निष्णात थे।[15]

कविवर मुरारि धर्मशास्त्र और वैशेषिक शास्त्र के भी पण्डित थे। नाटक के दूसरे अंक में तपस्वी ब्राह्मणों के क्रोध न करने और पाँचवें अंक में राजाओं के आतिपातिण कर्म में सद्या शुद्धि के विधान का वर्णन प्राप्त होता है।[16] वे वैशेषिक शास्त्र के भी पण्डित थे। न्याय शास्त्र और वैशेषिक शास्त्र का परस्पर सम्बन्ध है। इसलिये वे न्यायशास्त्री भी थे। उन्होंने वैशेषिक पण्डित होने के नाते जगत् के विजय हेतु पर्यटन की बात कही हैं।[17]

मुरारि का कवित्व :

मुरारि विविध शास्त्रों के पण्डित होते हुये भी अमर कवि हैं। उनके कवित्व का प्रमाण उनका प्रसिद्ध नाटक 'अनर्घराघवम्' है। शब्द-अर्थ का मंजुल

सामंजस्य, अर्थ गौरव और सुन्दर कल्पनायें उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के प्रमाण हैं। उनका अभिव्यंजना शक्ति और भाषा पर असाधारण अधिकार है। कतिपय उदाहरण उनके भाषा पाण्डित्य, अभिव्यंजना शक्ति और उनकी मधुर कल्पनाओं के सम्बन्ध में हमें उनके सुन्दर कविकर्म और कवित्व का परिचय देते हैं। विश्वमित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिये राम को ले जाने के लिये राजा दशरथ के यहाँ आते हैं। दशरथ विचार करते हैं कि विश्वामित्र जैसे तपस्वी यज्ञ की रक्षा के लिये सहायता हेतु मेरे पास आये हैं। यदि वे ऐसे ही लौट जाते हैं और राम उनके साथ नहीं आते हैं तब रघुवंश की दानवीरता की कथा ही अस्त हो जायेगी। यहाँ पर राजा की उदार भावना और उनका प्राँजल कथन प्रशंसनीय है।[18]

उनकी उत्प्रेक्षा का अतिसुन्दर उदाहरण भी दर्शनीय है यथा—कमलिनी सहस्त्रपत्रा होती है, जब सूर्य अस्त होने लगता है, तो उसके अस्त होते हुये करों को एक—एक कर गिनती हुई यह कमलिनी अपने हजार पत्रों को संकुचित कर लेती है, अर्थात् स्वयं मुँद जाती है; फिर जब सूर्य का उदय होता है, तो उसके उदित होने वाले करों को गिनती करती हुई सी वही नलिनी अपने हजारों पत्रों को विकसित कर लेती है। यहाँ उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य कितना अच्छा है।[19]

सीता की मँगनी के सम्बन्ध में रावण के पुरोहित शौष्कल का जनक से यह कथन कितना सुस्पष्ट और प्रसाद गुण युक्त है वह कहता है कि जब आपको कन्यादान करना ही है तब आप क्या देख रहे हैं ? रावण जैसे वीर पात्र का मिलना

आपका सौभाग्य है; आप विचार क्या करते हैं, आपका विचार करना मूढ़ता का प्रतीक है, आप से तो ऐसी आशा नहीं की जानी चाहिये।[20]

राम ने शिव के धनुष का भंजन कर दिया। रावण के पुरोहित शौष्कल को इसकी सूचना मिल गई है परन्तु जाते–जाते वह चेतावनी देता है। इस की रमणीयता दर्शनीय है। वह कहता है कि रावण ने जिस सीता को अपने हृदय–पटल में रख लिया है, उस सीता के साथ विवाह करना सर्प से खेलना होगा, इसलिये हे राम! आप धनुर्भंग की कीर्तिमात्र से सन्तुष्ट होकर लौट जायें, विवाह के फन्दे में न फँसे तो अच्छा है।[21] मुरारि के काव्य में प्रसाद गुण की रमणीयता दृष्टव्य है। यथा–कुमुद अपने उदर में रहने वाले तथा शत्रुभूत कमलों के पास से आने वाले भ्रमरों का समान आदर करता है। ठीक ही है। साधुजन स्व तथा पर का विचार किये बिना ही उपकार किया करते हैं।[22]

किम्बहुना, श्लोकों का अर्थगौरव भारवि की कविता का स्मरण दिलाते हैं। बन्धगाढ़ता और उपस्थापन शैली भी चारूतोपनिबन्धिनी है। रावण के युद्धावतरण का यह वर्णन कितना उदात्त और चमत्कारकारी है– प्रलयकाल के प्रखर सूर्य के समान मुखवाला, मानुषयुगल से युद्ध–क्रीडा की इच्छा रखने वाले हाथों को देखकर अति लज्जित, देवगण के मद को चूर्ण करने वाला यह रावण युद्ध स्थल को एक साथ सन्नद्ध स्वबल तथा परबल के द्वारा महाशस्त्रपात किये जाने से भीषणतम बना रहा है।[23]

मुरारि की अभिव्यंजना शक्ति का चमत्कार उनके काव्य में दिखायी पड़ता है। यथा– बसन्त ऋतु के कारण मतवाली कोकिलाओं से कम्पित आम्र–मंजरियों की पराग धूलि से दुर्गम गोदावरी तट के प्रदेश दिखायी दे रहे है; जिन्हें आखेटकों से भयभीत मृगों का समूह किसी प्रकार पार करके धारावाही धूलिसमूह से पद चिन्हों के लुप्त हो जाने पर निःशंक है। यद्यपि उक्त पद्य का भाव साधारण है किन्तु अभिव्यंजना–निष्पत्ति सिद्धि की श्रेष्ठ कृति है।[24]

डॉ० ए०बी० कीथ ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत ड्रामा' में अनर्घराघवम् से कविवर मुरारि के कवित्व से सम्बन्धित कतिपय श्लोकों के उद्धरण दिये है; जिससे विदित होता है कि पाश्चात्य विद्वान् भी मुरारि की कविता के प्रशंसक रहे हैं। वे मुरारि की कविता के भाव, कल्पना–संयोजन और कवित्व से प्रभावित रहे हैं; इस सम्बन्ध में कतिपय उदाहरण अवलोकनीय हैं।

श्रृंगार रस का मनोरम उदाहरण देखिये। श्रीराम सीता के मुखच्छवि का वर्णन करते हुये कहते हैं कि कदली दल के समान जंघों वाली सीते! तुम्हारे मुख से तुलना करने के लिये चन्द्रमा तुला के एक पलड़े में रखा गया, उसमें कमी दिखायी पड़ी तो उस कमी की पूर्ति के लिये प्रतिमान खण्ड के रूप में तारागण रखे गये जो चमक रहे हैं अर्थात् केवल चन्द्रमा तुम्हारे मुख की छवि को प्राप्त नहीं करता है।[25]

निम्नांकित श्लोक में प्रशंसा का अधिक विस्तृत किन्तु ललित उदाहरण

बहुत सुन्दर है, जिसमें श्रीराम सीता से कहते हैं कि इन कमलों के वंश में ब्रह्मा ने साक्षात् जन्म ग्रहण किया, शय्या से उठकर यह कमल प्रतिदिन दिनभर भ्रमरों को तृप्त करते हैं, एकाग्र दृष्टि से भगवान् सूर्य की ओर देखने का व्रत धारण करते हैं, इसीलिये हे सुन्दरी ! यह कमल तुम्हारे मुख की समता प्राप्त कर सके हैं।[26]

एक दूसरा शृंगार रस का उदाहरण भी कमनीय हैं– सामने गिरने वाली ललाट पटल पर की जल बिन्दुओं से जिनका पत्रावलि लेख धुल गया है, वैसा कपोल बता देता है कि यहाँ की युवतियों ने विपरीत रति का अभ्यास किया है।[27]

सिंहलद्वीप में श्रीराम, शृंगार रस को रत्नसिंहासन ही मानते हैं, तदनुसार उदित होने वाले चन्द्रमा की किरणों से आर्द्र चन्द्रकान्तमणि से बने मार्ग स्त्रियों के चरणालक्तक द्वारा लिखे गये लेखों से युक्त होकर उड़ने वाले चकोरों से स्त्रियों के हृदय में भय का संचार करके अभिसारिकाओं को उल्टे पाँव लौटने को बाधित करते हैं।[28] इसलिये कविवर मुरारि का कथन है कि मेरे सहकर्मी पदपाठ, गीतकला, सभी नाट्यांगों में एक से एक बढ़कर सिद्धहस्त है; मौद्गल्य कवि मुरारि की कविता गम्भीर, मधुर, उद्गार शालिनी है; काव्यनायक वीर तथा उदात्त गुण मण्डित भगवान् रामचन्द्र ही है; जिनके चरित की प्रशंसा में वाल्मीकि ने दिव्यवाणी का सफल प्रयोग किया है।[29] वे आगे कहते हैं कि यह श्रोत्रिय पुत्र मुरारि यदि वाल्मीकि द्वारा प्रयुक्त कथावस्तु का उपयोग करता है तो इसमें उसका कुछ दोष नहीं माना जाना चाहिये। यदि प्राचीन कवियों द्वारा वर्णित होने के कारण रामचन्द्र के चरित

को अपनी काव्य-कला का आधार नहीं बनाया जाये तो दूसरा रामचन्द्र के समान चरितनायक इस संसार में कहा पाया जायेगा और तत्तद् गुण की गरिमा तथा गम्भीरता से पूर्ण वाणी वाले कविगण अपने को महाचरित प्रदर्शन द्वारा कैसे उपकृत कर सकेगें ?[30]

इस नाटक के सूत्रधार के मुख से यह बात मुखरित हुई है कि इस मौद्गल्य गोत्रोत्पन्न ब्रह्मर्षि वंश मूर्धन्य 'बाल–वाल्मीकि' मुरारि की कवितायें जो अमृत बिन्दु की वर्षा करती हैं; मेरे हृदय में उत्सुकता पैदा कर रही हैं।[31] सूत्रधार के कथनानुसार यह कविता ऐसी ही है। उस अवर्णनीय रघुवंश की परम्परा से सुरभित गम्भीर तथा मनोहर मुरारि की कवितायें वाल्मीकि के वचन रूप अमृत के लिये कूप–निपान की शोभा धारण करती हैं अर्थात् वाल्मीकि के काव्य से कुछ न्यून मुरारि का काव्य है।[32]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस काल में मुरारि के कवित्व का तेज विदग्धों को चकाचौंध करता रहा है। जिस प्रकार महाकवि माघ की अक्षय कीर्ति का कारण एक ही महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' है, उसी प्रकार मुरारि की अक्षय कीर्ति का स्तम्भ एक ही नाटक 'अनर्घराघवम्' है। कतिपय विद्वान् मुरारि के काव्यत्व को भवभूति से अधिक श्रेष्ठ मानते हैं और वे भवभूति की उपेक्षा कर मुरारि के काव्यानुशीलन में अपना मन लगाते हैं।[33]

किसी अन्य समालोचक का कथन है कि यदि आप मुरारि का काव्य पढ़

रहे हैं तो भवभूति की चर्चा व्यर्थ है। काव्य का आनन्द लेने वाले को भवभूति को छोड़ कर मुरारि के काव्य का आश्रय लेना चाहिये।[34] कुछ लोग मुरारि के काव्य से माघ के काव्य को श्रेष्ठ मानते हैं। इसलिये ये लोग कहते हैं कि यदि मुरारि के काव्य–पदों का चिन्तन करना हो तो माघ काव्य का सेवन करिये या निष्पाप होकर ही मुरारि के काव्य का सेवन करिये।[35]

रचना काल :

संस्कृत साहित्य के अनेक कवियों की भाँति कविवर मुरारि का रचनाकाल भी अनुमान पर आधारित है। इन्होंने अपने सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं दी है। अपने नाटक में इन्होंने अपने सम्बन्ध में केवल इतना कहा है कि वे मौद्गल्य गोत्र में उत्पन्न हुये हैं; उनके पिता का नाम वर्धमान और माता का नाम तन्तुमती था। इनके नाटक के अनुशीलन से विदित होता है कि मुरारि, नाटककार भवभूति से अत्यधिक प्रभावित थे। भवभूति के महावीरचरित का प्रभाव मुरारि के 'अनर्घराघवम्' में अधिक दिखायी देता है। इससे यह सिद्ध होता है कि भवभूति के बाद नाटककार मुरारि हुये होगें क्योंकि मुरारि ने अपने नाटक में उत्तररामचरितम् के दो श्लोकों 6.30, 6.31 के उदाहरण दिये हैं।[36]

इसके अतिरिक्त 855–884 ए0डी0 में वर्तमान अनन्तवर्मा के दरबारी कवि रत्नाकार ने अपने 'हर–विजय' महाकाव्य में कविवर मुरारि का स्मरण किया है।[37] इससे प्रतीत होता है कि मुरारि कविवर रत्नाकर 855 ए0डी0 से पूर्ववर्ती रहे

हैं। दूसरी बात यह भी है कि स्वयं मुरारि ने अपने नाटक में लंका से अयोध्या जाते समय राम के मुख से अन्यान्य स्थानों के साथ 'माहिष्मती' नगरी का वर्णन किया है। माहिष्मती नगरी चेदिमण्डल की श्रेष्ठनगरी और करचुलि राजाओं की राजधानी थी। करचुलि राजाओं की अष्टम शतक ए0डी0 में माहिष्मती नगरी राजधानी थी।[38] यह भी सम्भव है कि 'उदात्तराघव' नामक रूपक के प्रणेता करचुलि नरेश अनंग हर्ष के समय मुरारि विद्यमान रहे होगें। इससे प्रतीत होता है कि सम्भवतः मुरारि का समय अष्टम शताब्दी के अन्तिम भाग और नवम शताब्दी के पूर्वभाग में रहा होगा।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् डॉ0 ए0बी0 कीथ का कथन है कि वे महाकवि होने का दावा करते हैं और बाल–वाल्मीकि होने का अनुचित अधिकार जताते हैं। डॉ0 कीथ भी मुरारि को भवभूति का पश्चात्‌वर्ती ही मानते हैं और वे आगे कहते हैं कि काश्मीरी कवि रत्नाकर (नवम–शताब्दी–मध्यकाल) ने अपने काव्य 'हरविजयम्' में मुरारि का नामोल्लेख भी किया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मुरारि का समय अष्टम शताब्दी का अन्तिम और नवम् शतक का प्रारम्भिक काल रहा होगा।[39]

यह आश्चर्य की बात है कि भट्टनाथस्वामी और प्रो0 कोनो, रत्नाकर द्वारा अपने महाकाव्य 'हरविजयम्' में उल्लिखित मुरारि के नाम को अप्रमाणिक मानते हैं। उनका कथन है कि मंखकने1135 ई0 में अपने काव्य 'श्रीकण्ठचरितम्' में मुरारि का नामोल्लेख किया है और वे उन्हें राजशेखर का पूर्ववर्ती मानते हैं। राजशेखर रत्नाकर के पूर्व हुये थे; इसलिये उक्त कथन से भी मुरारि का समय

अष्टम शतक का अन्तिम और नवम शतक का पूर्वभाग है।[40]

मीमांसा के भाट्टरहस्यादि ग्रन्थों में भी मुरारि का एवं उनके मत का उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु ये नाटककार मुरारि नहीं है। ये सम्भवतः मीमाँसक मुरारि हैं और मैथिल ब्राह्मण हैं। मीमाँसा के ग्रन्थों में यह बार–बार कहा गया है कि 'मुरारेस्तु तृतीयः पन्थाः'। यह आमाणक मीमाँसक मुरारि के सम्बन्ध में ही प्रचलित था, क्योंकि मीमाँसा–शास्त्र में मुरारि का मत भाट्टमत और गुरुमत से भिन्न रहा है।

नाटककार मुरारि सम्भवतः दाक्षिणात्य थे क्योंकि उनकी कविता पर भवभूति का अत्यधिक प्रभाव दिखायी देता है। भवभूति भी दाक्षिणात्य थे। उनके समय में और भवभूति के समय में जितना अन्तर है उतने समय में दूरवर्ती कवि पर इतना प्रभाव होना सम्भव नहीं प्रतीत होता है।

मुरारि की सूक्तियों में प्रतिबिम्बित जीवन-दर्शन :

कविवर मुरारि के नाटक 'अनर्घराघवम्' में अनेक सूक्तियाँ और सुभाषित देखने को मिलते हैं, जिनसे उनके जीवन–दर्शन पर प्रकाश पड़ता है। मुरारि न्यायमार्ग में चलने वाले की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि न्यायमार्ग में चलने वाले की सहायता पक्षीगण भी करते हैं; कुमार्ग में चलने वाले व्यक्ति को उसके सहोदर भ्राता भी छोड़ देते हैं।[41] इससे प्रतीत होता है कि मुरारि धर्म भीरू और न्यायप्रिय थे। उनकी रचना का मुख्य प्रयोजन 'रामादिवत् प्रवर्तित्तव्यम् न रावणादिवत्'

ही है।

मुरारि का यह भी कथन है कि यदि व्यक्ति में वीरता, पराक्रम या शक्ति है तो समय पाकर वह अवश्य ही प्रकट होगी।[42] इस का तात्पर्य यह है कि मुरारि व्यक्ति में विद्यमान मूलगुणों और उसमें अन्तर्निहित शक्ति में ही विश्वास करते थे आडम्बर और कृत्रिमता में नहीं। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो वे यथार्थवादी और तत्व वेत्ता थे। वे लोक व्यवहार में निष्णात और धर्मप्रवण थे।

एक अन्य सुभाषित में मुरारि का कथन है कि श्रवणों को कुण्डलों की वेधव्यथा को सहना पड़ता है और निरन्तर उनके भार को वहन करने का श्रम करना पड़ता है, परन्तु इतना होने पर भी कुण्डल कानों से अधिक कपोलों की ही शोभा बढ़ाते हैं।[43] इसका तात्पर्य यह है कि राजा या पिता अपने पुत्रों के लालन और पालन में अत्यधिक कष्ट का अनुभव करते हैं परन्तु उनके द्वारा दूसरे लोग उपकृत और लाभान्वित होते हैं; उनके जनक उतने लाभान्वित नहीं होते हैं। इससे प्रतीत होता है कि मुरारि पुत्रों या सन्तानों के लालन–पालन के कष्टों से भली भाँति परिचित थे, किन्तु पुत्रों से प्राप्त सुखों से अधिक सन्तुष्ट नहीं थे।

अन्यत्र मुरारि का कथन है कि नीच राक्षसों का साथ अनर्थकारी है। जिस प्रकार रावण के साथ बालि की मित्रता अनर्थकारी है उसी प्रकार रावण के भाई पुलत्स्यापत्य धनपति कुबेर के साथ शिव की मित्रता भी शुभ नहीं है। शिव सर्वगुण–सम्पन्न होते हुये भी बैल में सवारी करते हैं; भूषण अस्थिमाला है; भस्म

चन्दन है, वस्त्र की जगह हस्तिचर्म है। मित्रकुबेर के साथ कैलास रूप एक घर में रहने पर भी शिव की यह दरिद्र दशा है।[44] पौलत्स्यापत्य रावण है और पौलत्स्यापत्य कुबेर है अर्थात् पौलत्स्यापत्यता मैत्री के योग्य नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि मुरारि दुर्जनों की संगति को अनर्थ परम्परा का कारण मानते हैं क्योंकि अकारण दारूण वैर करने वाले दुर्जन से किसे भय नहीं होता है। जिस प्रकार सर्पराज के मुख में सदैव विष विद्यमान रहता है उसी प्रकार दुर्जनों के मुख में सदैव दुर्वचन रूपी विष विद्यमान रहता है।[45]

एक दूसरे प्रसंग में, मुरारि भयानक विपत्ति दैवात् आ जाने पर धैर्य को कवच के रूप में धारण करने की बात करते हैं। राम रावण के द्वारा अपहृत सीता का स्मरण कर मूर्च्छित हो जाते हैं तब लक्ष्मण राम को समझाते हुये कहते हैं कि दैववश भयानक विपत्ति के आ जाने पर महाजनों के हृदय अपने धैर्य को ही कवच बनाते हैं।[46] इससे प्रतीत होता है कि मुरारि विपत्ति में धैर्य से काम लेते थे।

मुरारि का यह भी कथन है कि लोक में मात्र अपना स्वार्थ–साधन करना कभी प्रशंसनीय नहीं होता है। जो व्यक्ति अपने साथ–साथ परहित साधन भी करता है, वस्तुतः वही वन्दनीय होता है। एक पौराणिकी कथा का सन्दर्भ लेते हुये वे कहते हैं कि अपने पंखों के काटे जाने के भय से मैनाक ने अपने पुत्र क्रौंच और पिता हिमालय को छोड़कर समुद्र में प्रविष्ट होकर केवल अपनी रक्षा कर ही ली तो क्या किया ? उसके लिये तो यह उचित था कि अपनी रक्षा करने के साथ–साथ उसे अपने पुत्र और पिता की भी रक्षा करनी चाहिये। इससे प्रतीत होता है कि

मुरारि एक उदारवादी व्यक्तित्व के धनी थे। उनमें संकीर्णता नहीं थी।[47]

अनर्घराघवम् में प्रयुक्त छन्द :

कविवर मुरारि छन्द शास्त्र के भी मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपने नाटक 'अनर्घराघवम्' में लगभग 16 छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें प्रमुख रूप से अनुष्टुप्, आर्या, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, शालिनी, वंशस्थ, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, वसन्ततिलका, शार्दूल विक्रीडित, शिखरिणी, हरिणी और स्रग्धरा आदि प्रमुख हैं।

नाटक के प्रथम अंक का शुभारम्भ 'शार्दूल विक्रीडितम्' छन्द से होता है और अंक समापन वसन्ततिलका वृत्त से होता है। इसी प्रकार द्वितीय अंक शिखरिणी छन्द से प्रारम्भ होता है और समापन अनुष्टुप् छन्द से होता है। तृतीय अंक वसन्ततिलका वृत्त से प्रारम्भ होता है और समापन शिखरिणी छन्द से होता है। चतुर्थ अंक का प्रथम छन्द शार्दूलविक्रीडित है तथा अन्तिम शिखरिणी छन्द है। पंचम अंक का प्रथम छन्द वंशस्थ है तो अन्तिम शार्दूलविक्रीडित है। षष्ठ अंक आर्या से प्रारम्भ होता है और स्रग्धरा से समाप्त होता है। सप्तम अंक शिखरिणी से प्रारम्भ होता है और शार्दूलविक्रीडित से समाप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है किं कवि का सर्वाधिक प्रिय शार्दूलविक्रीडित छन्द है क्योंकि वे नाटक का प्रारम्भ शार्दूलविक्रीडित छन्द से करते हैं और समापन भी शार्दूलविक्रीडित छन्द से करते हैं। इससे यह भी प्रतीत होता है कि कविवर मुरारि कवि शार्दूल हैं।

मूल्यांकन :

वस्तुतः मुरारि संस्कृत भाषा के पारंगत विद्वान् थे, शब्द विद्या के वे परमाचार्य थे, वे कवि और नाटककार थे इसमें सन्देह नहीं है। वे रस मर्मज्ञ हैं और काव्य-शास्त्र के ज्ञाता और अलंकारों के प्रयोग में निपुण हैं। वे अपने लिये 'बाल-वाल्मीकि' विशेषण का प्रयोग करते हैं। वे अपने को श्रोत्रिय पुत्र भी कहते है जिससे यह प्रतीत होता है कि उनके कुल में विद्वानों की परम्परा विद्यमान थी। वे अपने को 'ब्रह्मर्षिवंश मूर्धन्य' भी कहते हैं और 'बालवाल्मीकि' (मुरारि) के वाङ्मय को 'अमृतबिन्दुनिष्यन्दि' कहते हैं। वे अनेक बार अपने काव्य को आदिकवि वाल्मीकि के अमर काव्य-गुणों का समीपवर्ती बतलाते हैं। उनके अनुसार उनका काव्य वाल्मीकिकाव्यामृतकूप का उपकूप है।[48]

सम्यक् विचार करने पर मुरारि की कविता में वह प्रसाद-गुण, वह प्रांजल पद विन्यास, वह सुकोमल भावाभिव्यक्ति, वह उदात्त चारित्रिक सृष्टि, वह अमर प्रकृति वर्णन, वह सरस पदशय्या, वह स्वाभाविक अलंकार-योजना, वह कल्पना सौन्दर्य दिखायी नहीं देता है जो आदि कवि वाल्मीकि की आदि कविता में दिखायी देता है। उनके द्वारा अपने को 'बालवाल्मीकि' कहा जाना अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। वाल्मीकि के बाद भास और कालिदास जैसे महाकवि और नाटककार हुये हैं। उनके सुकोमल काव्यों और नाटकों से भी मुरारि ने प्रसाद गुण, सुकोमल भावाभिव्यक्ति और सरस अविरल भाव-प्रवाह का भी अनुकरण नहीं

किया है, केवल भवभूति के नाटकों की छाया अवश्य दिखायी देती है किन्तु भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' नाटक में जो करूण–रस की सरिता सबको रस में सराबोर करती हुई प्रवाहित होती है, जिसमें ग्रावा (पत्थर) भी रोता है और वज्र का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है, उस प्रकार की रस सृष्टि मुरारि की कविता में दिखायी नहीं देती है।

मुरारि की कविता में पाण्डित्य प्रदर्शन, शब्द–विद्या का चमत्कार, कादम्बरी के लम्बे समासों की भाँति समस्तपदों का प्रयोग, भाव की जटिलता, नाटकोचित नैपुण्य का अभाव दिखायी देता है जिससे मुरारि का यह नाटक मंचन के योग्य नहीं बन सका है।

प्रसन्नराघवम् नाटक के प्रणेता :–

कविवर जयदेव–

व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

संस्कृत–साहित्य के अन्य कवियों और नाटककारों की भाँति नाटककार जयदेव के जन्मस्थान और रचना काल के सम्बन्ध में कोई निश्चयात्मक ज्ञान नहीं है फिर भी परवर्ती ग्रन्थों में जयदेव एवं उनकी कविता का उल्लेख मिलने के कारण उनके जन्मस्थान और उनके पौर्वापर्य पर अनुमान लगाया जा सकता है।

जयदेव नाम के चार कवि एवम साहित्यकार मिलते हैं जिससे विद्वत्समाज और संस्कृत साहित्य के पाठकों में भ्रमात्मक ज्ञान दिखायी देता है। एक तो गीत

गोविन्दकार जयदेव हैं जो संस्कृत के ललित गीतकार हैं, जिन्हें उड़ीसा देशवासी कहा जाता है। यह कविवर बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के राज–दरबार में विद्यमान थे।[49] राजा लक्ष्मण सेन का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी था और यही समय गीतगोविन्दकार जयदेव का माना जाता है। इनकी माता का नाम रामा देवी और पिता का नाम भोजदेव था।[50]

दूसरे जयदेव कवि हैं, जिन्होंने 'शृंगारमाधवीय–चंम्पू' का प्रणयन किया है। इनका उपनाम कृष्णदास था, इनके माता और पिता का नाम अविदित है। इनका जन्मस्थान भी अज्ञात है। तीसरे जयदेव चन्द्रालोक के प्रणेता हैं जो अलंकार से रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानने वाले मम्मट प्रभृति काव्य शास्त्रियों की आलोचना करते हुये कहते हैं कि ऐसे काव्यशास्त्री अग्नि को शीतल या अनुष्ण क्यों नहीं मान लेते ?[51] काव्यप्रकाश के प्रणेता मम्मट का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी माना जाता है। इसीलिये चन्द्रालोककार जयदेव का समय मम्मट के बाद होना चाहिये।

चौथे जयदेव प्रसन्नराघवम् नाटक के प्रणेता हैं। विद्वत्समाज चन्द्रालोक कार जयदेव और 'प्रसन्नराघवम्' नाटक के प्रणेता जयदेव को एक ही मानते हैं। यही जयदेव अलंकारशास्त्री भी थे और तर्कशास्त्री भी थे। उक्त दोनों जयदेव के एक ही व्यक्ति होने के सन्दर्भ में एक संकेत यह प्राप्त होता है कि दोनों के पिता का नाम महादेव और माता का नाम सुमित्रा था।[52]

प्रसन्न राघवम् नाटक के प्रणेता जयदेव ने अपने नाटक में अपने वंश का परिचय देते हुये कहा है कि अनुपम रसों के प्रवाह से सुस्वादु जिनकी वाणियों का विलास सुन्दरियों के बिम्ब–फल सदृश ओष्ठ की मधुरता को सूचित करता है। कवीन्द्र कौण्डिन्य महादेवपुत्र वे जयदेव यहाँ पर आपके कर्णों के आतिथ्य को प्राप्त नहीं हुये ?[53]

इसी नाटक में सूत्रधार आगे यह कहता है कि लक्ष्मण के समान सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न जयदेव जी का मन रामचन्द्र जी के चरणकमल में भ्रमण करता हुआ भ्रमर की तरह आचरण करता है।[54] इन कथनों से यह प्रतीत होता है कि चन्द्रालोककार जयदेव और 'प्रसन्नराघवम्' नाटक के प्रणेता जयदेव एक ही व्यक्ति थे क्योंकि दोनों के माता और पिता का नाम सुमित्रा देवी और महादेव था और इससे यह भी प्रतीत होता है कि जयदेव कौण्डिन्य गोत्र में उत्पन्न हुये थे। ये विदर्भ के बरार के समीप स्थित कुण्डिनपुर के निवासी थे।[55]

जयदेव साहित्यकार होने के साथ–साथ तर्कशास्त्री भी थे। जयदेव ने अपने इस नाटक में कवित्व शक्ति के साथ तर्कशक्ति के संगम का अपूर्व वर्णन किया है। तदनुसार जिन कवियों की वाणी कोमल काव्य–रचना कौशल–कला में विलासवती है, उन लोगों के कर्कश न्यायशास्त्र से कुटिल वचनों के प्रकाशन में भी क्या हानि है ? जिन पुरूषों ने प्रिया के पयोधर मण्डल में नख क्षति का आनन्द लिया है, वे लोग क्या मतवाले हाथी के मस्तक–पिण्ड में बाण प्रहार नहीं करते ?[56]

चन्द्रालोककार जयदेव ने भी अपने ग्रन्थ 'चन्द्रालोक' में 'अप्रतीत दोष' के उदाहरण में 'वीतानुमान' का उल्लेख किया है।[57] इससे दोनों के तर्कशास्त्री होने और दोनों के समान होने की बात प्रमाणित होती है। इसलिये यह बिना सन्देह के ही कहा जा सकता है कि 'प्रसन्न–राघवम्' नाटक के प्रणेता जयदेव और 'चन्द्रालोक' के प्रणेता जयदेव एक ही व्यक्ति थे।

रचनाकाल :

यद्यपि नाटककार जयदेव के रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई निश्चयात्मक ज्ञान नहीं है किन्तु फिर भी कतिपय वर्णनों और उद्धरणों से इस सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। कविवर जयदेव अपने ग्रन्थ चन्द्रालोक में, काव्य के लक्षण–निरूपण के अवसर पर काव्यप्रकाशकार आचार्य–प्रवर मम्मट के काव्य लक्षण 'तद् दोषौशब्दार्थौसगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' में क्वचित् स्फुट अलंकार न होने पर भी शब्द और अर्थ काव्य होते हैं; की आलोचना करते हैं कि जो लोग अलंकार से रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानते हैं वे लोग अग्नि को शीतल अर्थात् अनुष्ण क्यो नहीं मान लेते हैं ?[58] इनके अनुसार अलंकार काव्य का अनिवार्य धर्म है। बिना अलंकार के काव्यत्व सम्भव नहीं है। कविवर जयदेव के द्वारा मम्मट की उक्त आलोचना से यह निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि वे मम्मट के पश्चाद्वर्ती है।

आचार्य प्रवर मम्मट विक्रम की 12वीं शताब्दी में विद्यमान थे, क्योंकि

उन्होंने अपने ग्रन्थ काव्यप्रकाश में उदात्त लक्षण के उदाहरण में धारा नगरी के नृपति भोजराज का स्मरण किया है। तदनुसार वस्तु की ऐश्वर्यशालिता का जहाँ वर्णन किया जाता है वहाँ उदात्त अलंकार होता है। इसके उदाहरण में मम्मट कहते हैं कि पण्डितजनों के घरों में, जो रतिलीला में टूटे मौक्तिक मालाओं के मोती प्रातः काल आँगन में झाड़ से बहारे हुये होने और अलसाई चाल से चलने वाली नवयौवना युवतियों के पैर में लगी महावर से लाल दिखने के कारण दूर से अनार के दानों के सन्देह क्रीडा–शुकों के द्वारा चोंच से इधर–उधर पकड़े जाते दिखायी दिया करते हैं; वह सब 'महाराज भोज' की दानशीलता नहीं तो क्या है ?[59] राजा भोज का प्रादुर्भाव काल विक्रम की 12वीं शताब्दी है। इस उदाहरण से यह निश्चय हो जाता है कि मम्मट भोजराज के परवर्ती हैं। मम्मट 12वीं विक्रम शताब्दी के बाद हुये थे और इसलिये नाटककार जयदेव आचार्य प्रवर मम्मट के पश्चात् विक्रम की 12वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रहे होंगे।

इधर दूसरा प्रमाण यह है कि साहित्यदर्पणकार कविराज विश्वनाथ ने 'प्रसन्न–राघव' नाटक से ध्वनि के उदाहरण के रूप में एक श्लोक उद्धृत किया है। तदनुसार साहित्यदर्पणकार ने अर्थान्तर संक्रमित वाच्य–ध्वनि के उदाहरण में जयदेव के निम्नांकित श्लोक का उद्धरण किया है जिसका तात्पर्य यह है कि कदली–कदली है, करभ (उरू के आकार का हाथ का पार्श्वभाग) करभ ही है, करिराज का कर–करिराज का कर ही है। मृगनयनी सीता के ये दोनों उरू तीनों

लोकों में अपनी समानता नहीं रखते हैं।[60] यहाँ कदली आदि में जाड्यातिशय व्यंग्य है। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ जयदेव के पश्चात्वर्ती हैं। विश्वनाथ का समय विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी माना जाता है । इससे स्पष्ट है कि जयदेव विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी से पूर्व और बारहवीं शताब्दी के पश्चात् हुये थे अर्थात् कविवर जयदेव विक्रम की 13वीं और 14वीं शताब्दी के मध्यकाल में हुये रहे होंगे।

मैथिल के विद्वान जयद्वेव को मैथिल ब्राह्मण मानते हैं । अन्य विद्वान् इन्हें विदर्भ में स्थित कुण्डिनपुर का निवासी मानते हैं किन्तु जयदेव अपने को कौण्डिन्य कहते हैं[61] और अपने नाटक का मंचन दक्षिण के राजाओं के सभामण्डप में करने की बात करते हैं।[62] इससे प्रतीत होता है कि कविवर जयदेव दाक्षिणात्य थे और सम्भवतः विदर्भ के कुण्डिनपुर ग्राम के निवासी थे।

जयदेव का कवित्व :

जयदेव कवित्व के धनी थे। उनमें कवित्व शक्ति थी अर्थात् उनमें कवित्व बीज रूप संस्कार विशेष था। काव्यशास्त्रादि विविध शास्त्रों के अवगाहन से उन्होंने निपुणता प्राप्त की थी और काव्य-रचना का भरपूर अभ्यास किया था; इसीलिये उनकी वाणियों का विलास अमर रसों के निष्यन्दन से मधुर है; उनकी कविता कुरंगाक्षी नवयौवनाओं के बिम्बाधरों के माधुर्य से ओत-प्रोत है।[63] वे तार्किक होते हुये भी कोमल-काव्य रचना कौशल-कला में अत्यन्त निपुण हैं। यह

उनके व्यक्तित्व की असाधारण विशेषता है कि वे कर्कश तर्कों के वचनोद्‌गार में भी उतने ही प्रवीण हैं। वे स्वयं कहते हैं कि जिन लोगों ने आनन्द पूर्वक कान्ताओं के कोमल कुचमण्डलों में कररूहों का प्रयोग किया है, क्या उन्हें मतवाले गजराजों के कुम्भमण्डलों में शरसन्धान नहीं करना चाहिये ? वस्तुतः, जयदेव सुस्पष्ट वक्ता और कवि हैं। वे जैसा कहते हैं वैसी ही मधुर–रस–निष्यन्दिनी उनकी कविता है।[64]

आदि कवि वाल्मीकि द्वारा वर्णित जिस रामकथा का गान अनेक स्वनाम धन्य कविगण कर चुके हैं; उसी रामकथा को अपने नाटक की आधिकारिक कथा–वस्तु बनाना और उसी का आश्रय लेकर अपने कवित्व के प्रदर्शन के सम्बन्ध में कविवर जयदेव का आत्मनिवेदन प्रशंसनीय है। वे कहते हैं कि अपने काव्य का पात्र एक मात्र रघुकुलतिलक श्रीराम को बनाने वाले कवियों का क्या दोष है ? यह दोष तो श्री राम के गुणगणों का है; जो कि जगत् में इन्हीं श्री राम के गुणों के लोभी कविजन श्रीरामचरित का ही अवगाहन करते हैं।[65]

जयदेव चित्रकाव्य के भी सफल प्रणेता थे। वे कहते हैं कि प्रत्येक अंक में शृंगार आदि रसों से युक्त, नवीन और विकसित होने वाले पुष्पों की पंक्ति के तुल्य शोभित, रंग रचना से सम्पन्न चन्द्र के सदृश कुटिलता से अतिशय मनोहर और अति सुन्दर रचना से मनोरम नाटक का अभिनय किया जा रहा है।[66] जयदेव का यह श्लोक चित्रकाव्य का सुन्दर उदाहरण है। तुलसीदास ने इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति 'नाट्यप्रबन्ध–मति मंजुल–संविधानम्' का मानो अपने प्रबन्धकाव्य

रामचरितमानस में लगभग ग्रहण कर लिया है। तुलनीय 'भाषानिबद्धमति मंजुलमातनोति' आदि।[67] निम्नलिखित पद्य में कवित्व में द्रुमत्व का आरोप करके कविवर जयदेव ने अपने असाधारण कल्पना–कौशल का परिचय दिया है। तदनुसार बहुकाल से उपार्जित सुन्दर चरित्र जिसका बीज है, प्रतिभा जिसका नवीन अंकुर है, पण्डित–मण्डली का परिचय जिसका काण्ड है, काव्य जिसका नवीन पल्लव है और कीर्ति जिसकी पुष्प–परम्परा है; ऐसा काव्य वृक्ष रामचन्द्र जी की प्रशंसा रूप फल के बिना क्या निष्फल किया जाता है ?[68]

वे कवियों के गुणग्रहण के सम्बन्ध में कहते हैं कि कविजन अपने वाग्विलासों से हर्ष को प्राप्त करते हुये भी दूसरे कवि की कविता में भी सन्तोष का अनुभव करते हैं। अपने साधन पुष्परस के निष्यन्द से परिपूर्ण आलवाल वाला रसाल वृक्ष क्या कलश जल से सेचन नहीं चाहता है ? अर्थात् कुछ सज्जन कविजन दूसरे कवियों के सुन्दर कवित्व से भी अत्यन्त हर्षित होते हैं।[69]

किम्बहुना, कविवर जयदेव ने कविता में कामिनी का आरोप कर अपने पूर्ववर्ती कवियों का मनोहर स्मरण किया है। तदनुसार जिस कविता कामिनी का चोर नामक कवि केशकलाप, मयूर कर्णपूर, भास हास, कविकुल–गुरू–कालिदास विलास, श्रीहर्ष हर्ष, बाणभट्ट हृदय में रहने वाला पंचबाण है; तो बताइये ऐसी कविता–कामिनी किसके हृदय में कौतूहल उत्पन्न नहीं करेगी ?[70] किंच, सूत्रधार कवि की वचन वक्रता की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि यदि मन्दमतिजन

कवियों की वक्ररचनाओं की भले निन्दा कर लें, नीरस पुरूष सुन्द रियों के कुटिल कटाक्षों की प्रशंसा भले न करें फिर भी निपुण सज्जनों का मन क्या कविता की वक्रता को नहीं चाहता ? अर्थात् बुध लोग कवि की वचन–वक्रता की सदैव प्रशंसा करते हैं। यही कारण है कि भगवान् महादेव अपने मुकुट के अग्रभाग में वक्र चन्द्रकला को धारण करते हैं।[71]

जयदेव की कविता वास्तव में कौतूहल उत्पन्न करने वाली है। उनकी कोमल शब्दसौष्ठव, मधुर गुण और अर्थगाम्भीर्य वाली कविता विदग्धों के हृदयों को आवर्जित करने वाली है। वे सच्ची कविता को ब्रह्मविद्या और राजलक्ष्मी से भी श्रेष्ठ मानते हैं। जिस प्रकार लोकोत्तर पुरूष श्रीराम के साथ पुत्री सीता का सम्बन्ध परमानन्द को उत्पन्न करने वाला है उसी प्रकार यह कविता लोकोत्तर आनन्द को देने वाली है।[72]

सीता का स्वयंवर आयोजित है, दूरस्थ द्वीप–द्वीप से राजा लोग आये हुये हैं। मंजीरक सूचित करता है कि यह कन्या सुवर्ण के सदृश कान्तिवाली है और धनुर्भजन कार्य से यश प्राप्त करने का गौरव भी है। किसी भी राजा ने इस धनुष को नहीं उठाया है और न ही धनुष्टंकार ही कर सके हैं; न तो इस शिव–धनुष को झुका ही सके हैं और न ही स्थान से हटा सके हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्प्रति उर्वीतल वीर–विहीन हो गया है।[73] किम्बहुना, यह पद्य लुप्तोपमा अलंकार का मनोरम उदाहरण होने के साथ–साथ राजा जनक की

नैराश्यपूर्ण मनः स्थिति को पूर्णतया प्रकट करने में सक्षम है।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'रामचरितमानस' हिन्दी महाकाव्य की रचना करते समय यह नाटक कविवर तुलसीदास के सामने था और उनके महाकाव्य रामचरित मानस पर इस नाटक का विशेष प्रभाव पड़ा है। इस अवसर पर गोस्वामी तुलसीदास इसी के समान वर्णन करते हुये कहते हैं कि द्वीप–द्वीप के अनेक राजागण हमारे प्रण को पूरा करने के लिये रणधीर, विपुलवीर इस स्वयंवर में आये हैं। मनोहर कन्या, महान विजय और सुन्दर यश की प्राप्ति को पाने वाले को सम्भवतः विधाता ने रचा ही नहीं है।[74]

इसी प्रकार सीता–स्वयंवर के अवसर पर उपस्थित रावण और बाणासुर के वाद–प्रतिवाद, उत्तर–प्रत्युत्तर में भी वाग्विदग्धता का अतिमनोरम उदाहरण दर्शनीय है।[75] मंजीरक जनकतनया सीता को रावण की अंकशायिनी की कल्पना कर दुष्ट विधाता की निन्दा करता है। वह कहता है कि वत्से सीते ! जिसके कलुगुरू स्वयं याज्ञवल्क्य, पिता जनक और जननी पृथ्वी है; ऐसी सुतनया होकर भी दुर्भाग्य के प्रहार में आज तुम्हें राक्षस के हस्तगत होना पडेगा।[76] यहाँ कवि की वाग्विदग्धता दर्शनीय है। कवि की कल्पना–शक्ति की पटुता अवश्य ही प्रशंसनीय है।

सीता को बलात् लंका ले जाने की इच्छा करने वाले रावण से बाणासुर हँसकर कहता है कि यदि तुम्हारे पास ऐसी वीरता दर्प है तो शिवधनुष को उठाकर

ही सीता को क्यों नहीं ले जाते ? इस पर रावण कहता है कि उद्धत कर्म से प्रकाशमान बाण समूह से अनायास ही चंचल होने वाले महादेव के कैलाश शिखर से सुन्दर यशवाले मुझे इस बालमृणाल के समान शिवधनुष उठाने में व्यर्थ क्लेश करने से कैसा यश होगा ?[77]

रावण आगे कहता है कि शिव के कैलाश पर्वत की उठायी गयी चोटियाँ मेरी बाहुओं की परीक्षा पहले ही ले चुकी हैं। अब केवल सीता के मिलन की क्रीड़ा के कौतूहल से इस शिव धनुष को उठाना है। वह अपने बाहुगुणों को सम्बोधित करते हुये कहता है कि– शिवधनुष को खींचने से उत्पन्न यश के द्वारा तीनों लोकों को सफेद बनाना है और शीघ्र ही सीता के वक्ष में लगे हुये चन्दन रज से इन हाथों को धूसरित करना है। इसके बाद वह कहता है कि यदि कोई दूसरा वीर इस धनुष को उठाकर सीता का पाणिग्रहण कर लेता है तब भी मैं बलात् सीता को लंका ले जाऊँगा और अपनी विनम्र वाणी से उससे अनुनय–विनय करके अपनी वशवर्तिनी बना लूँगा।[78]

इस पर जनक का अनुचर मंजीरक कहता है कि यह शिवधनुष बाणासुर के बाहु शिखरों से परिपीड्यमान होने पर भी उसी प्रकार किंचित् भी चलायमान नहीं होता है, जिस प्रकार कामातुर व्यक्ति की वाक्य रचनाओं से प्रार्थित स्वभाव–सुन्दर पतिव्रताओं के मन चंचल नहीं होते हैं।[79] कविवर जयदेव के इस वर्णन और कल्पना का प्रभाव गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस में परिलक्षित होता है,

जहाँ पर वे कहते है कि यह शम्भु का शरासन उसी प्रकार डगमग नहीं करता जिस प्रकार कामी के वचनों से सती का मन नहीं डगमगाता है।[80]

मंच पर सीता का आगमन हो रहा है और इधर रावण और बाणासुर का संवाद तीव्रता से चल रहा है। रावण कहता है कि हे बाणासुर ! तुम मेरे ऊपर पाँच सौ बाण छोड़ सकते हो और मैं हाथ में तलवार लिये हूँ। वह कामदेव को सम्बोधित करते हुये कहता है कि हे पंचबाण ! तुम भी अपने बाणों को प्रकट करो क्योंकि युवतियों में श्रेष्ठ स्त्री रत्न सीता आ रही है।[81] बाणासुर तो वहाँ से चला जाता है लेकिन रावण के वहाँ से जाने का बहाना कवि ने बड़ी मौलिकता से उपस्थित किया है। उसे आकाश में किसी के रोने की आवाज सुनायी पड़ती है। वह अनुमान करता है कि किसी के बाण से पीड़ित होकर कठोर शब्द से रूदन करने वाला आकाश मार्ग से चलने वाले मारीच का ही यह करूण–क्रन्दन है। इस कारण इसे आश्वासन देने हेतु यहाँ से जाता हूँ। इसी बहाने से रावण भी वहाँ से चला जाता है।

प्रस्तुत अवसर पर राक्षस मारीच के रूदन के व्याज से रावण का वहाँ से चला जाना कवि की कल्पना शक्ति की पटुता को प्रकट करता है। जिस कवि में अपार कल्पना शक्ति होती है वही मौलिक उद्भावनायें प्रस्तुत कर अपनी रचना को उत्कृष्ट रूप देता है। धनुषभंग प्रकरण में न तो अनर्घराघवम् में और न तो वाल्मीकि रामायण में मारीच के रूदन का प्रसंग वर्णित है। यह कवि की मौलिक

उद्भावना है।

नाटक के द्वितीय अंक में, भिक्षु और तापस वेषधारी दो निशाचरों का वार्तालाप और कार्य के प्रति सामान्य प्रयोजन नाट्य–दर्शकों के चित्त में चमत्कार पैदा करता है। यहाँ पर तापस भिक्षु से कहता है कि कौतुक से भरी हुई वार्ता और विमलविद्या तथा कस्तूरीमृग की लोकोत्तर सुगन्धि, ये तीनों वस्तुयें अनिवार्य रूप से अपने आप उसी तरह फैल जाती हैं जैसे जल में पड़ी हुई तेल की एक बूँद चारों ओर फैल जाती है।[82] तापस का यह कथन अतिरमणीय है।

राम और लक्ष्मण जनकपुरी में उपवन दर्शन के सम्बन्ध में जाते हैं और वहाँ हुई बसन्त की शोभा देखकर मुग्ध हो जाते हैं। वे वासन्ती शोभा का वर्णन करते हुये कहते हैं कि इस उपवन में मल्लिका लता के फूलों का रस पीने वाली भ्रमरियों की सूक्ष्म ध्वनि का सम्प्रदाय सुशोभित हो रहा है। इस उपवन में दक्षिण दिशा से चलने वाली वायु से प्रतिशब्द अथवा पग–पग में उपदिष्ट अशोक की मंजरी विलास के साथ नृत्य कर रही है।[83] राम अपने अनुज लक्ष्मण के साथ उस उपवन में आगे बढ़ते हैं तो उन्हें वहाँ मन्दिर में दुर्गा जी का दर्शन होता है। इधर से अपनी सखियों के साथ दुर्गापूजन के लिये सीता का प्रवेश होता है। राम सीता के सौन्दर्य को देखकर अत्यधिक आश्चर्य करते हैं। वे कहते हैं कि कसौटी पर घिसी सुवर्ण की सुन्दर रेखाओं के समान, सोने की कदली के भीतर भाग के सदृश पीतवर्ण और हल्दी के रस के सदृश शोभा प्रवाह को धारण करने वाले अंगों

से सुशोभित एवं कामक्रीडा के भवन की अटारी में दीपशिखा के समान यह कौन सुन्दरी आ रही है ?[84] श्रीराम सीता के सौन्दर्य का कुछ इस प्रकार वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि सीता के ओष्ठ बन्धूक पुष्प के सदृश लाल, नेत्र केतकी पुष्प के समान श्वेत, कपोल मधूक पुष्प के कोरक के समान सुन्दर, दाँतों की पंक्ति अनार के बीजों की पंक्ति को जीतने वाली और मुख कमल को भी दास बनाने वाला है।[85] यहाँ पर कविवर जयदेव ने अनेक उपमानों को प्रस्तुत करते हुये और दो प्रकार के व्यतिरेक वर्णनों से संकर अलंकार का मनोरम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

श्रीराम सीता के सौन्दर्य से इतने मुग्ध हैं कि वे आगे कहते हैं कि सीता अपने चरणों से विकसित रक्त–कमलों की कान्ति को भी परास्त कर रही है, हाथों से नये पल्लवों की अरूणिमा को ग्रहण कर रही है, ओष्ठों के अग्रभाग से प्रवालों की कान्ति को पी रही है और मन्दहास्य के कान्ति प्रवाहों से चन्द्रमा की कान्ति का उपहास कर रही है।[86] प्रस्तुत पद्य में कवि ने व्यतिरेक और उपमालंकार का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है। इन दोनों अलंकारों के एकाश्रयानुप्रवेश से संकर अलंकार का सौन्दर्य भी प्रकट हो रहा है। वे लताओं की ओट से सीता को देखकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं। श्रीराम कहते हैं कि श्याम कान्ति वाले कदली पत्रों के बीच प्रकट होने वाली यह सीता नूतन मेघों के मध्य प्रकाशित होने वाली चन्द्र कला की तरह मुझे चकोर के समान आनन्दित कर रही है।[87]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुष्पवाटिका में नायक श्रीराम नायिका सीता

को जब प्रथम बार देखते हैं तो वे उसके सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होते हैं। यहाँ पर पुष्पवाटिका उद्दीपन विभाव है; राम और सीता आलम्बन विभाव हैं। यहाँ पर मधुर श्रृंगार रस की निष्पत्ति बड़ी कोमलता से हुई है। इधर सीता जब पुष्पवाटिका में श्रीराम को देखती है तो वह अपनी सुध–बुध खो देती है। वह अपने मन में कहती है कि विकसित कोमल नील–कमल के पलाश पुंज के समान श्यामवर्ण वाले, महादेव जी के मनोहर शेखर में प्रकाशित चन्द्र के सदृश कोमल, कामदेव के रूप सौन्दर्य को पराज़ित करने वाला लतागृह में अवस्थित यह कौन पुरूष मेरे युगल नेत्रों को सुख–सिन्धु में निमग्न कर रहा है ?[88]

नायिका सीता अपने मन ही मन श्रीराम के अनुपम सौन्दर्य का अनुभव कर रही है। वह अपने नेत्रों को सम्बोधित करते हुये कहती है कि हे नेत्रों ! तुम प्रिय राम के मुख कमल के मकरन्द का पान कर लो क्योंकि हे चंचल लोचन युगल! तुम्हें ऐसा अवसर कब और कहाँ मिल सकता है ?[89] इधर नायक राम भी सीता के अनुपम सौन्दर्य से मुग्ध हैं और वह उनके रूप का अति मधुर वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि सीता का रूप सौन्दर्य नवयौवन का सर्वस्व है, भोग का भवन है, नेत्रों का भाग्य है, यौवन मद के विलास का सौभाग्य है, संसार का सार है, जन्म का सत्परिणाम है, कामदेव का अभिप्राय विशिष्ट स्थान है, राम का हृदय है, राग की पराकाष्ठा है और श्रृंगार रस का रहस्य है। संक्षेप में, कुवलयलोचना सीता का दर्शन अनिर्वचनीय है।[90] श्रीराम यह अनुभव करते हैं कि सीता अपने चंचल नेत्रों से

दुग्धसागर की महा तरंगों से मानों उन्हें स्नान करा रही है किन्तु वे इस बात पर थोड़ा संकुचित होते हुये कहते हैं कि–सीता की यह दुग्ध–धवल दृष्टि सदा रहने वाली नहीं है क्योंकि विधाता की रचनायें मधुर और विधुर होती हैं अर्थात् संयोग और वियोग से भरी हुई रहती हैं।[91]

दोनों ही नायक और नायिका मुड़–मुड़ कर परस्पर एक दूसरे को देखते हुये अपने–अपने आश्रय स्थान की ओर चले जाते हैं। इधर जनक अपने गुरू शतानन्द जी के साथ ऋषिप्रवर अपने मित्र विश्वामित्र के पास जाते हैं। वहाँ राम को देखकर वे परमानन्द का अनुभव करते हैं। वे राम को देखकर कहते हैं कि असीम आनन्द से मनोहर भागों वाले, भवसागर का अतिक्रमण करने वाले और मित्र की प्रीति के आधार परमात्मा में मैं जिस परमानन्द का अनुभव करता हूँ, उसी प्रकार विकसित नील कमल के पत्र के मध्य भाग के समान श्याम वर्ण वाले इस बालक राम को देखकर उसी परमानन्द का अनुभव कर रहा हूँ ।[92] फिर भी सीता–स्वयंवर हेतु शिव–धनुष भंग करने के प्रति जनक के मन में सन्देह होता है। वे कहते हैं कि–गाधिनन्दन भगवान् विश्वामित्र इस विषय में मिथ्यावादी कैसे हो सकते हैं ? परन्तु राम अभी बालक हैं। शिवधनुष अनिर्वचनीय रूप से गुरू गहन और गम्भीर है। इस कारण उनकी मनोवृत्ति इस विषय में बार–बार दोलारोहण कर रही है।[93]

सम्भवतः गोस्वामी तुलसीदास इससे प्रभावित होकर सुनयना के मुख से यह कहलाते हैं कि हे सती ! जो हमारे मित्र और हितैषी हैं, वे सब कौतुक देखने

वाले हैं। कोई भी गुरू विश्वामित्र जी से समझाकर यह नहीं कहता है कि ये बालक धनुष भंग करने के लिये हठ योग्य नहीं है[94] किन्तु राम सभी आशंकाओं को निराधार करते हुये शिव–धनुष का भंजन कर देते हैं। इधर, परशुराम का आगमन होता है। वे क्रोध से कहते हैं कि–देवता, सिद्ध, किन्नर और मनुष्यों से अनतिक्रमणीय तीनों पुरियाँ भाग्य के समान जिस धनुष के वक्र होने पर एक ही बार में जल गयी थी, महादेव के उस धनुष को बालक राम ने यदि बल से तोड़ दिया है तो फिर मेरे शस्त्र की धारारूपी जल से सम्पूर्ण रघुवंश ही डूब जायेगा।[95]

लक्ष्मण परशुराम को देखकर श्लेषमिश्रित विरोधाभास से उनका मनोहर वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि–धनुष प्रत्यंचा को धारण कर रहा है और इनका शरीर मौंजी मेखला को धारण कर रहा हैं। हाथ में बाण और कुश सुशोभित हो रहे हैं। धारा जल के समान तीक्ष्णधार वाला यह परशु है। जलधारा से उज्जवल यह कमण्डलु भी है। इस प्रकार जहाँ एक ओर ये वीर रस के प्रतिमान हैं, वहीं दूसरी ओर ये शान्त रस के परिणाम प्रतीत होते हैं।[96] परशुराम जब क्रोध करते हैं तो श्रीराम बड़ी विनम्रता से उनसे निवेदन करते हैं और कहते हैं कि–चाहे हार अथवा तीक्ष्णधार वाला कुठार कण्ठ में प्रवेश करे, नारियों के नेत्रों में कज्जल या जल (अश्रु) रहे, हम लोग इस लोक में चिरकाल तक आनन्द का अनुभव करें अथवा यमराज का मुख देखें, जैसा होना हो वैसा हो परन्तु हम लोग ब्राह्मणों में वीरता का प्रदर्शन नहीं करते।[97]

श्रीराम आगे कहते हैं कि हे ब्राह्मण देवता ! आपके साथ हम लोगों की संग्राम वार्ता भी घटित नहीं होती है, क्योंकि हम सभी लोग बलहीन हैं और आप बलवानों में मूर्धन्य हैं। दूसरी बात यह है कि हम राजाओं का यह धनुष एक गुण वाला है और आप ब्राह्मण देवताओं का नव गुणों अर्थात् सूत्रों वाला यज्ञोपवीत सर्वश्रेष्ठ बल है।[98] गोस्वामी तुलसीदास जी ने इससे प्रभावित होकर अपने महाकाव्य रामचरित मानस में भी यही बात कही है। वे कहते हैं कि—हे देव ! हमारे पास एक गुण अर्थात् एक प्रत्यंचा वाला धनुष है किन्तु आपके पास परम पुनीत नव गुण हैं। इसलिये हम सब प्रकार से आपसे हारे हैं। आप हमारे अपराध क्षमा करें।[99]

कविवर जयदेव ने इस प्रसंग में, श्रीराम की परम उदारता और विनम्रता का प्रशंसनीय परिचय दिया है। वे परशुराम को स्वयं विचार करने के लिये बाध्य कर देते हैं। वे कहते हैं कि हे मुनिवर! कहाँ तो आप का यह अमंगल परशु और कहाँ आपका पवित्र गोत्र ? कहाँ तो यह समुन्नत धनुष और कहाँ ब्राह्मण वंश निर्मल शील ? कहाँ तो समर भूमि में बाण—वर्षा की क्रीडा और कहाँ कुशपल्लव से सुन्दर तपस्या के योग्य पर्णशाला ? यह विषमता अनौचित्य से भरी हुई है।[100] राम परशुराम से पुनः कहते हैं कि आप प्रसन्न हो जाइये, क्रोध से विरत हो जाइये और मेरा निवेदन अपने चित्त में धारण कीजिये। आपने चिरकाल तक अनेक प्रयत्नों से अनेक बार जिस अमर यश और चरित्र को अर्जित किया है, उसे जुआड़ी के द्वारा धन की तरह व्यर्थ में विनष्ट मत कीजिये।[101]

अन्त में, परशुराम अपने धनुष की प्रत्यंचा खींचने का प्रस्ताव श्रीराम से करते हैं। राम विष्णु के धनुष को लेकर उसका शर–सन्धान करते हैं जिससे परशुराम को बहुत आश्चर्य होता है और वे अपने मन में समझ जाते हैं कि जगत् का कारण वह ब्रह्म रूप तेज इस बालक के रूप में प्रकट हो गया है। वे श्रीराम को पुराण पुरूष श्रीविष्णु का ही बालरूप समझते हैं। परशुराम श्रीराम की शरणागत होते हैं और उन्हें शुभकामनाओं तथा आशीर्वाद से अलंकृत करते हुये कहते हैं कि–सुन्दरियों के नेत्र कमलों के विकासार्थ सूर्य रूप हे रामचन्द्र ! आप अपनी कीर्ति–पताका दूर तक फहराइये और हजारों वर्षो तक उज्जवल रूप वाले बने रहिये। यह लोकत्रयी आपके बाणों से मारे गये रावण के सिरों से युक्त हो और समृद्धि का अनुभव करने वाले तीनों लोकों के निवासी प्रसन्न हों।[102]

नाटक के पंचम अंक में, कविवर जयदेव ने नदी पात्रों के माध्यम से शेष नाटकीय वृत्तान्तों का परिचय दिया है। इस अंक में गंगा–यमुना–सरयू–सागर और हंस नामक पात्रों के परस्पर वार्तालाप से कथा–सूत्र विदित होता है। यहाँ पर कविवर भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' नाटक का प्रभाव परिलक्षित होता है। उत्तर रामचरितम् में भी भवभूति ने नदी पात्रों का प्रयोग किया है। सरयू के द्वारा गंगा को विदित होता है कि अयोध्या में दशरथ का निधन हो गया है। सरयू ने इसका कारण बतलाते हुये यह कहा है कि कैकेयी ने राजा दशरथ से दो वरदान माँगे थे कि आप हमें प्रथम वरदान यह दीजिये कि कौशल्यापुत्र राम वन में प्रवेश करें और

दूसरी ओर भरत युवराज बनें। कैकेयी के ऐसे वचनों को सुनकर, व्याकुल पिता के चरणों का स्पर्श कर प्रसन्न चित्त राम वन की ओर चले गये।[103]

राम के वन जाते समय जनकतनया सीता ने भी उनका अनुगमन करते हुये अपने बन्धुजनों को अश्रुपूरित कर दिया। कवि ने यहाँ बड़ी सुन्दरता के साथ करूण रस की निष्पत्ति की है।[104] यद्यपि बन्धु–बान्धवों ने राम से यह कहा कि सीता अभी बालिका है, तुम दोनों चंचल हो और दक्षिण दिशा राक्षस–समूह से दोष युक्त है। इसलिये उन्होंने बड़े स्नेह से यह कहा कि हे नीति निपुण राम! तुम दक्षिण दिशा की ओर मत जाओ। यहाँ पर कवि की वैदर्भी शैली की छटा अवलोकनीय है।[105] राम के चले जाने पर महाराज दशरथ तृण के समान अपने प्राणों का परित्याग कर देते हैं।

इसके पश्चात् जब ननिहाल से भरत अयोध्या आते हैं तो वे अपनी माता से बड़ी सरलता से पूँछतें हैं, जिसमें पुत्र और माता का उत्तर–प्रत्युत्तर की सुस्पष्टता और रमणीयता दृष्टव्य है। भरत पूँछते हैं कि हे माता जी! पिता जी कहाँ गये ? उसने उत्तर दिया–देवलोक। क्यों ? पुत्र के शोक से। वह पुत्र कौन है ? चारो पुत्रों में तुम जिसके छोटे भाई हो। उनका क्या हुआ ? वे वन को चले गये। क्यों ? राजा की आज्ञा से। उन्होंने ऐसी आज्ञा क्यों दी ? उन्होंने मेरी वाणी से नियन्त्रित होकर ही ऐसी आज्ञा दी। इसमें आपको क्या लाभ हुआ ? तुम्हारा राज्य लाभ। हाय! मैं तो नष्ट हो गया।[106] यहाँ पर कवि ने वाक्केलि नामक नाट्य गुण

का अति सुन्दर प्रदर्शन किया है।

गंगा, वनगमन काल में श्रीराम की यात्रा का सुन्दर प्रतिपादन कर रही है। सूर्य जब तक कान को सन्तप्त करता है, तब तक ही वे यात्रा करते हैं। सूर्य की कठोर किरणों के फैलने पर वे विश्राम करते हैं, सूर्य के रथ से अवस्रस्त होने पर अर्थात् अपराह्ण काल में फिर वे यात्रा प्रारम्भ करते हैं और जब कमलिनी निमीलित होने लगती है तब वे रात्रि के आगमन पर निवास स्थान पर आश्रय लेते हैं।[107] सरयू कहती है कि जब सीता यमुना और गंगा को पार कर रही थी तब उन दोनों ने कोमल लवली लताओं के सदृश सुकोमल अंगों से युक्त, वन को जाती हुई सीता को अपने तरंग रूपी हाथों से क्यों नहीं रोका ?[108]

हंस के द्वारा यह संसूचित होता है कि राम कनक–मृग का वध करने के लिये उसके पींछे–पीछे दौड़ते हैं और उसके बाद सुमित्रानन्दन लक्ष्मण भी राम का अनुकरण करते हैं। इधर, सीता भिक्षु के करतल में भिक्षा दे रही है। भिक्षु वेषधारी रावण सीता का अपहरण करता है और उधर कनक–मृग मारीच नामक राक्षस के रूप में प्रकट हो जाता है। रावण जब आकाश मार्ग से सीता का अपहरण करके ले जा रहा था तब वे विलाप कर रही थीं और कह रही थीं कि हा राम! हा रमण! हे संसार के एक मात्र वीर! हे नाथ ! हे रघुपते ! आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहें हैं ?[109] मार्ग में जटायु रावण से युद्ध करता है लेकिन वह भी मारा जाता है। यह बात सागर को विदित होती है तो वह शोक संतप्त होता है। गंगा उसे अति

कातर न होने के लिये समझाती है और कहती है कि दुष्ट लोगों की सम्पत्तियाँ अन्त में दुष्परिणाम देने वाली होती हैं और महात्माओं की विपत्तियाँ भी अन्त में शुभ परिणाम देने वाली होती हैं।[110] इधर तुंगभद्रा नदी श्रीराम की सुग्रीव से मैत्री का संदेश देती है। सुग्रीव हनुमान् के नेतृत्व में सीता की खोज में वानर सेना भेजते हैं। इस बीच गोदावरी भी सागर से श्रीराम के माधुर्य का वर्णन करती है।

षष्ठ अंक में, कवि ने राम का विरह वर्णन प्रस्तुत किया है। राम की यह विरह कातरता कवि ने बड़ी सुन्दरता के साथ व्यक्त की है। श्रीराम चक्रवाक को देखकर कहते हैं कि यह चक्रवाक चन्द्रोदय होने पर अपनी प्रियतमा से बिछुड़ता है और सूर्योदय होने पर अपनी प्रियतमा के संगम को प्राप्त कर लेता है किन्तु सीता के वियोग में मेरे सैकड़ों चन्द्रास्त और सूर्योदय व्यतीत हो गये।[111] श्रीराम सीता का स्मरण करते हुये कहते हैं कि मैं सीता के वचनामृतों को क्या फिर से अपने कर्णों से सुन सकूँगा जिसने मुझे अपने वचनामृतों से गोदावरी के कमलों और तरंगों की चेष्टाओं को दिखाया था। इसी बीच नेपथ्य में एक मधुर ध्वनि सुनायी पड़ती है, जिसमें कहा गया है कि सौभाग्य सम्पन्न हे रघुकुल चन्द्र! आपके ऊपर तरंग रूप सफेद चामर को चलाते हुये गोदावरी अपने हाथ से कमल रूप छत्र को धारण कर रही है। राम जब इस स्वर्ण संयोग को सुनते हैं तो वह सहसा कह उठते हैं कि यह परिमित कमनीय कोमल वाग्विलास सीता का ही है। सरस और मधुर काव्यपंक्ति वीणा के पंचम स्वर का अनुकरण करने वाली हैं।[112]

श्रीराम प्रियतमा सीता को देखने के लिये आकुल और व्याकुल हो उठते हैं। सीता यहाँ छाया सीता के रूप में है जैसा कि 'उत्तररामचरितम्' में भी इसी प्रकार की छाया सीता के रूप में सीता का वर्णन किया गया है। इधर लंका में रावण सीता को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है किन्तु सीता उसे खद्योत के समान चित्रित करती है। इधर राम जानकी की याद करके विलाप करते हैं।[113] सीता रावण की दुष्टता का उत्तर देती हुई कहती है कि हे राक्षस ! तुम चुप रहो; व्यर्थ बकवाद मत करो; मेरे कण्ठ का स्पर्श या तो नीलकमल के समान श्याम राघव के भुजदण्ड करेंगे अथवा करूणा शून्य तेरी तलवार स्पर्श करेगी।[114]

सीता अपने परिताप और संताप को शान्त करने के लिये चन्द्रहास नामक खड्ग को सम्बोधित करते हुये कहती है कि हे चन्द्रहास ! रामचन्द्र के वियोगानल से उत्पन्न मेरे सन्ताप को समाप्त कर दो क्योंकि अपनी कान्ति से मुक्ताचूर्ण को जीतने वाले तुम अपनी धारा में शीतल पानी को धारण करते हो।[115] हिन्दी के प्रसिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो प्रसन्नराघवम् नाटक के प्रस्तुत श्लोक का शब्दशः भावानुवाद कर दिया है। उसमें भी इसी प्रकार सीता रघुपति की विरहाग्नि से उत्पन्न परिताप को चन्द्रहास से दूर करने की प्रार्थना करती है क्योंकि वह चन्द्रहास की धारा में शीतल जल धारा का रूप देखती हैं।[116]

त्रिजटा सीता को आश्वासन देती है। हनुमान् सीता के कर–कमलों में राम की मणि मुद्रिका फेंक देते हैं जिसे देखकर सीता आश्चर्य में पड़ जाती है और

कहती है कि जो शैशव काल से मनोरम रामचन्द्र के हस्तांगुलि से प्रणय करती थी वह सौभाग्यशाली सुगम चरित्रवाली दूसरी जानकी के समान यह रत्न–मुद्रिका कैसे इस लंका में आ गयी ?[117] हनुमान् अपना परिचय देने के बाद सीता को श्रीराम का सन्देश सुनाते हैं। वे कहते हैं कि श्रीराम के लिये आपके वियोग में चन्द्रमा सूर्य के समान तीक्ष्ण किरणों वाला हो गया है और नव जलधर दावानल के समान दाहकता लिये हुये है। सरिताओं की तरंगों से मिश्रित पवन क्रुद्ध सर्प के निःश्वास के समान ऊष्ण और विषैला है। नवीन मल्लिका का पुष्प माला के समान कष्टदायक है और कुवलयवन कुन्तों के समान हो गया है। हे सुन्दरि! तुम्हारे वियोग के कारण यह संसार ही मेरे प्रतिकूल हो गया है।[118] सीता के लिये राम का यह सन्देश भी तुलसीदास ने यथावत् अपने रामचरितमानस में अवतरित कर लिया है और उसे अपने शब्दों में इस प्रकार अनूदित किया है।[119]

इसी प्रकार हनुमान् श्रीराम के सन्देश का वर्णन करते हुये आगे कहते हैं कि हे चन्द्रमुखी ! इस विपत्ति को किसे बताकर मैं आश्वस्त हो सकता हूँ ? हम दोनों के प्रच्छन्न प्रणय तत्व को कौन जानता है ? हे प्रिय! उसे मेरा मन ही जानता है। उसने भी बहुत समय पहले से तुम्हारा अनुसरण किया है, इसलिये इस सम्बन्ध में मैं क्या करूँ ? कुछ समझ में नहीं आता है।[120] इसके बाद हनुमान् सीता का प्रति सन्देश लेकर वापस आ जाते हैं।

सप्तम अंक में, करालक बतलाता है कि एक बार विभीषण रावण को

प्रणाम करने गये थे। उसने रावण के पास एक पत्र भी छोड़ दिया था, जिसे रावण ने पढ़ा था जिसका आशय यह था कि भविष्य में ऐश्वर्य चाहने वाले और अपना कल्याण चाहने वाले सज्जन को परनारी के ललाट–पटल को भाद्र शुक्लपक्ष चतुर्थी की चन्द्रलेखा के समान नहीं देखना चाहिये[121] किन्तु रावण ने विभीषण के इस परामर्श को हँसकर टाल दिया और यह कहा कि यह धीर व्यक्तियों का कथन है। यहाँ पर भी गोस्वामी तुलसीदास ने प्रस्तुत श्लोक का यथावत् भावानुवाद कर दिया है।[122]

करालक बतलाता है कि सुर और असुर सभी रावण के पाद–पद्म के सेवी हैं। चन्द्रमा अपनी कोमल किरणों से चन्दन के समान, रावण के अंग में लेपन करता है, वसन्त वायु चंचल ताल–वृन्तों से हवा कर रहा है, पश्चिम दिशा के लोकपाल वरूण कमल के पत्तों से उसकी शय्या की रचना कर रहे हैं। इस प्रकार अनंग के ताप से तप्तहृदय रावण की काया की सभी देवता सेवा कर रहे हैं।[123] इधर रावण विभीषण पर शक्ति का प्रयोग करता है किन्तु लक्ष्मण ने उसे प्रिया की तरह अपने वक्ष से ग्रहण कर लिया अर्थात् मूर्च्छित हो गये। राम मूर्च्छित लक्ष्मण को अपने अंक में रखते हुये कारूण्कि विलाप करते हैं। हे वत्स लक्ष्मण ! अपने नेत्रकमल विकसित करो क्योंकि सूर्यवंश का भाग्य, राम का जीवन और उर्मिला का नेत्रांजन यह सब एक साथ ही अस्तमित मत हो।[124] वे आगे बड़ी करूणा के साथ कहते हैं कि मैं अपनी छोटी माता सुमित्रा के निष्फल दर्शन को कैसे सहन

कर पाऊँगा ? लक्ष्मण के बिना कठोर हृदय के समान होकर यह राम अयोध्या में पुनः कैसे प्रवेश करेगा ? यह पाप शान्त हो।[125] प्रस्तुत पद्यों में प्रसाद गुण, वैदर्भी शैली और करूण रस की निष्पत्ति अवलोकनीय है।

इसके बाद राम–रावण युद्ध समाप्त हो जाता है। रावण मारा जाता है। राम सीता को साथ में लेकर पुष्पक विमान से समुद्र, दण्डकारण्य, नर्मदा, यमुना को पार कर चित्रकूट आते हैं।[126] यहाँ पर कवि ने सम्भवतः भौगोलिक क्रम का ध्यान नहीं दिया है क्योंकि सम्प्रति चित्रकूट की अवस्थिति यमुना के पहले है। चित्रकूट के बाद ही यमुना मिलती है। इसके बाद राम सीता के साथ अयोध्या पहुँचते हैं। उनका मनोरथ सिद्ध होता है और वे प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। इस दृष्टि से ही सम्भवतः कवि ने अपने नाटक का नामकरण 'प्रसन्नराघवम्' अभिहित किया है। अन्त में, सुग्रीव राम के भव्य कार्यों का वर्णन करते हुये कहते हैं कि रघुवंशी राम ने विधिवत् पिता की आज्ञा का पालन किया और अपने गुणों से अतिशय समुन्नति प्राप्त की। सुग्रीव और विभीषण को राज्य प्रदान किया, देवशत्रु रावण को युद्ध में कीर्तिशेष बना डाला और आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त अयोध्या पुरी में भाई भरत से मिले।[127] अन्त में, भरत वाक्य के द्वारा यह शुभकामना व्यक्त की गयी है कि बालकों से लेकर सभी लोगों के मुखकमल में शास्त्रों का सम्वर्धन हो, भगवान् विष्णु और शंकर में समन्वय बुद्धि रहे, सरस्वती के सारे दोष का परित्याग करके लक्ष्मी सज्जनों के भवनों में उसी तरह निरन्तर निवास करे

जैसे पृथ्वी शेषनाग के फणांचलों में रहती है।[128]

मूल्यांकन :

उपर्युक्त पर्यालोचन से यह विदित होता है कि कविवर जयदेव ने भवभूति प्रणीत उत्तररामचरितम् नाटक को अपने नाटक प्रसन्नराघवम् का उपजीव्य बनाया है। उपर्युक्त पद्यों के उद्धरण से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अनेक स्थलों में उत्तर रामचरितम् नाटक की तरह चमत्कार प्रदर्शित किया है। जिस प्रकार उत्तररामचरितम् में विदूषक पात्र का प्रयोग नहीं किया गया है, उसी प्रकार इस नाटक में भी विदूषक पात्र नहीं मिलता है। जिस प्रकार उत्तररामचरितम् नाटक में यज्ञ के अश्व के वर्णन प्रसंग में हास्य रस की सृष्टि हुई है उसी प्रकार यहाँ पर भी तृतीय अंक में वामन और कुब्जक के वार्तालाप के अवसर में हास्य रस प्रस्फुटित हुआ है। जिस प्रकार भवभूति ने अपने नाटक में नदी पात्रों को आधार बनाया है उसी प्रकार जयदेव ने भी अपने नाटक में नदी पात्रों का प्रयोग किया है। जिस प्रकार उत्तररामचरितम् में श्रीराम अपनी प्रियतमा जानकी के वियोग में अत्यन्त शोकाकुल होते हैं और उनके कारूण्य का जैसा वर्णन कविवर भवभूति ने किया है लगभग कुछ उसी से मिलता–जुलता जानकी विरह में शोक–संतप्त राम के विरह का वर्णन इसमें भी प्राप्त होता है।

जिस प्रकार उत्तर रामचरितम् में छायासीता राम को क्षणिक शान्ति प्रदान करती है उसी प्रकार यहाँ भी ऐन्द्रजालिक प्रयुक्त छायासीता राम के पास

आती हुई दिखायी देती है। चन्द्रोदय और सूर्योदय आदि का वर्णन भी लगभग कुछ मिलता–जुलता हैं। यह परम्परा रही है कि परवर्ती साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती साहित्यकार का ऋणी होता है। यद्यपि रामकथा प्रधान अनेक महाकाव्य और नाटक लिखे गये हैं और उनकी कथावस्तु लगभग एक समान है किन्तु कविवर भवभूति जयदेव के निकटतम प्रेरणास्रोत प्रतीत होते हैं।

यद्यपि जयदेव ने नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार के मुख से यह बात कही है कि उनकी वाणियों का विलास अनुपम रसों के प्रवाह से अति मधुर है, जो कुरंगाक्षी ललनाओं के बिम्बाधरोष्ठों की मधुरता को प्रकट करता है।[129] वे आगे यह भी कहते हैं कि वे यद्यपि मूलरूप से तर्कशास्त्री हैं फिर भी उनकी वाणी कोमल काव्य-कला के कौशल में विलासवती है। कवि के अनुसार उन लोगों के कर्कश न्यायशास्त्र से कुटिल वचनों के प्रकाशन में क्या हानि है ? जिन लोगों ने प्रिया के पयोधर मण्डल में सानन्द नखक्षति की है, क्या वे लोग मतवाले हाथी के मस्तक पिण्ड में बाणवर्षा नहीं कर सकते ?[130]

कविवर जयदेव अपने वाग्विलासों से प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। वे कवि की वक्रता के पक्षधर है। उनके प्रेरक कवियों में चोर नामक कवि, मयूर कवि, नाटककार भास, कविकुलगुरू कालिदास, श्री हर्ष और बाणभट्ट इत्यादि हैं क्योंकि इन कवियों की कविता कामिनी उनके मन में कौतुक का सृजन करती रही है। इन लोगों की कविता ब्रह्मविद्या और राजलक्ष्मी से भी श्रेष्ठ है। यह कविता लोकोत्तर

राम जी के साथ सम्बन्ध स्थापित करने वाली जनकतनया सीता के समान हृदय में हर्ष का संचार करती है। प्रस्तावना में कविवर जयदेव ने इस प्रकार के कवि रूपी नूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी (मेघमाला) के निरन्तर संसार में बरसते रहने कामना की है।[131]

यद्यपि कविवर जयदेव का यह नाटक प्रसन्नराघवम् भवभूति के उत्तर रामचरितम् से अत्यधिक प्रभावित है किन्तु उन्होंने कवि प्रशंसा में भवभूति का नामोल्लेख नहीं किया है। यह आश्चर्य की बात है। वस्तुतः जयदेव स्वनाम धन्य कवियों में से एक हैं जिनके काव्यों में तथा नाटकों से अन्य साहित्यकारों और कवियों ने अपने ग्रन्थों में उनके श्लोकों का उद्धरण और नाम स्मरण किया है। साहित्यदर्पणकार कविराज विश्वनाथ ने अपने काव्यशास्त्र साहित्यदर्पण में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य में नाटककार जयदेव के एक पद्य का उद्धरण दिया है। नाटक में एक पुरूष सीता के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है कि कदली कदली है, करभ करभ है, करिराजकर करिराजकर है। मृगनयनी सीता के ये दोनों उरूदण्ड तीनों लोकों में अपनी कोई समानता नहीं रखते हैं। यहाँ पर द्वितीय बार कदली, करभ और करिराज कर के शब्द पुनरूक्ति दोष के भय से सामान्य कदली, करभ और करिराजकर रूपी मुख्यार्थों से बाधित होकर जाड्यादिगुण विशिष्ट कदली इत्यादि रूप गुण और अर्थ को प्रदर्शित करते हैं और इनका व्यंग्यार्थ जाड्यातिशय है। यह अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि का उदाहरण है जिसे साहित्य दर्पण में

उद्धृत किया गया है।[132]

इसी प्रकार 'शार्गधर पद्धति' में भी प्रसन्नराघव नाटक के अनेक पद्यों के उद्धरण दिये गये हैं। शार्गधर पद्धति' विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में विरचित किया गया था। इसी प्रकार विक्रम की सप्तदश (सत्रहवीं) शताब्दी में विद्यमान विद्वत्प्रवर शिन्न भूपाल ने अपने ग्रन्थ 'रसार्णव–सुधाकर' में प्रसन्नराघवम् नाटक के अनेक पद्यों का उल्लेख किया है। इन सबसे यह प्रतीत होता है कि नाटककार जयदेव का कवित्व चमत्कारकारी रहा है इसलिये परवर्ती काव्य शास्त्रियों ने उनके नाटक के पद्यों को यत्र–तत्र उद्धृत किया है।

नाटककार जयदेव के प्रसन्नराघवम् नाटक की प्रस्तावना अति सुन्दर और चमत्कारपूर्ण है। उसमें न केवल उन्होंने अपने वैदुष्य को ही सिद्ध किया है प्रत्युत कोमल काव्यकला में अपनी कुशलता ही ध्वनित की है। प्रस्तावना कोमलकान्त सरस पदावली से भरी हुई और बड़ी प्रभावोत्पादक है। नाटक का सम्पूर्ण प्रथम अंक प्रसाद गुण और वैदर्भी शैली का मनोरम उदाहरण है। उनका यह प्रथम अंक एक सफल नाटकोचित कुशलता का प्रमाण है।

प्रथम अंक में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक, नेपथ्य जैसे नाट्यगुणों को प्रदर्शित किया है। इस अंक में रावण–बाणासुर के परस्पर संलाप प्रभावशाली हैं किन्तु द्वितीय अंक में कुछ पद्यों को छोड़कर प्रसाद गुण और वैदर्भी शैली दिखायी नहीं देती है। अनेक श्लोकों में कवि ने पांचाली शैली का प्रयोग किया है जो एक

सफल नाटक के लिये उपयुक्त नहीं हैं। सम्पूर्ण नाटक में शार्दूल विक्रीडित और स्रग्धरा छन्दों की भरमार है जिससे नाटकीयता के गुण तिरोहित हो जाते हैं। श्लोकों में लम्बे–लम्बे समास कभी–कभी सरलता को समाप्त कर देते हैं।

जयदेव ने चोर नामक कवि की प्रशंसा की है लेकिन इनका कोई काव्य ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। इन्होंने इनकी कौन सी विशेषता ग्रहण की है कुछ कहा नहीं जा सकता है। मयूर को उन्होंने कर्ण–भूषण नामक उपाधि दी है जिनका काव्य आज हस्तगत नहीं है। नाटककार भास को उन्होंने कविता–कामिनी का हास्य कहा हैं लेकिन भास के नाटकों में जो सरलता, प्रांजलता, सुन्दर संवाद–योजना, अभिनयादि नाट्यगुण, प्रसादगुण और वैदर्भी शैली आदि विशेषतायें हैं वे प्रसन्नराघवम् में दिखायी नहीं देती हैं। भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्,' प्रतिज्ञा–यौगन्धरायणम्' और 'प्रतिमानाटकम्' जिस प्रकार भारतीय रंगमंच में मंचन योग्य माने जाते हैं वैसी मंचन योग्यता इस नाटक में नहीं है।

इसके बाद कवि ने कविकुलगुरू कालिदास को कविताकामिनी का विलास कहा है किन्तु महाकवि कालिदास की कोमलकान्त पदावली जैसी अमर वाणी, प्रसाद गुण और वैदर्भी शैली के दर्शन इस नाटक में नहीं होते हैं। कविवर जयदेव के सामने कविकुलगुरू कालिदास का विश्व–विख्यात नाटक 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम्' अवश्य रहा होगा लेकिन उस नाटक जैसी नाटकीय विशेषतायें, उसके प्रसाद गुण और वैदर्भी शैली, मधुर संवाद–योजना, अभिनयोचित नाट्यकला का

गुम्फन इस नाटक में दिखायी नहीं देता है। कविवर जयदेव ने इसके बाद 'नैषधीय–चरितम्' महाकाव्य के प्रणेता श्रीहर्ष और कादम्बरी के प्रणेता बाणभट्ट को क्रमशः कविता कामिनी का हर्ष और पंचबाणधारी काम देव कहा है।[133] ऐसा प्रतीत होता है कि जयदेव के नाटक में श्रीहर्ष प्रणीत नैषधीयचरितम् का पद–लालित्य अवश्य है और कादम्बरी के प्रणेता महाकवि बाणभट्ट की समास–बहुला शैली भी यत्र–तत्र विद्यमान है। ओजोगुणमण्डिता समास–बहुला शैली नाटकोचित नहीं होती है।

यद्यपि नाटककार जयदेव का प्रिय छन्द वसन्त–तिलका है किन्तु उन्होंने शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा और शिखरिणी आदि लम्बे छन्दों का बहुल प्रयोग किया है जिससे नाटक की सरलता और दर्शकोचित प्रांजलता समाप्त सी हो गयी है। पाश्चात्य समीक्षक डॉ0 ए0बी0 कीथ प्रसन्नराघवम् नाटक को नाट्य–कला की अवनति का ही नाटक मानते हैं। वे इस नाटक के पंचम अंक में, जहाँ पर सागर के चारों ओर नदियों का मिलन होता है, अद्भुत और प्रभावशाली मानते हैं[134] लेकिन कीथ के अनुसार, नाटकीय व्यापार से उनका कोई तालमेल नहीं है। जयदेव को लम्बे–लम्बे छन्दों के लेखन में विशेष रूचि प्रतीत होती है, जिससे नाट्य-कला बाधित होती है। जयदेव ने रामायण की कहानी का पुनः वर्णन करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार जयदेव का यह नाटक घिसी–पिटी राम–कथा का ही वर्णन करता है[135] किन्तु डॉ0 ए0बी0कीथ की यह आलोचना अधिक

सारगर्भित नहीं है। तर्कशास्त्री जयदेव मूल रूप से न्यायशास्त्र के आचार्य थे और उन्होंने चन्द्रालोक जैसे अलंकार शास्त्र की भी रचना की थी फिर भी उनमें कोमल काव्य रचना का कौशल विद्यमान है। उनमें कवित्व है, पद–लालित्य है, और पाण्डित्य है।

जयदेव के सुभाषित :

नाटककार जयदेव के नाटक में अनेक सुभाषित पाये जाते हैं जिससे उनके जीवन–दर्शन, तत्कालीन संस्कृति, धर्म और विचारों का ज्ञान होता है। कुछ प्रमुख सुभाषितों का वर्णन करते हुये यहाँ उनके उक्त गुणों का प्रकाशन करने का प्रयास किया गया है। कविवर जयदेव का कथन है कि चतुर लोग आकार से ही दूसरों के अभिप्राय को समझ लेते हैं यथा सुगन्धि से ही भ्रमर केतकी पुष्प को पहचान जाते हैं।[136] इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में लोग संकेत से ही दूसरों को समझ लेते थे। कवि का कथन है कि महानुभावों का नाम सार्थक होता है। वह गुणों से व्यभिचार नहीं करता है जैसे–सुवर्ण, श्री खण्ड (चन्दन), रत्नाकर और सुधाकर अन्वर्थक हैं।[137] इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में लोगों के नाम अन्वर्थक होते रहे होंगे।

कवि की मान्यता है कि प्राचीनकाल में सरस, सहृदय, गुणग्राही और रसिक लोग रामचन्द्र में और नारियों के नयनांचलों में प्रसन्नता का अनुभव करते थे।[138] कविवर जयदेव का कथन है कि सुन्दर रूप वाली और उदारचरित्र से युक्त

दूसरे की रचना की चोरी करना अथवा ललित वदना, उदार चरिता परनारी का अपहरण करना अच्छी बात नहीं है। ऐसा व्यक्ति समुद्र के पार भी चला जाये तो वह सुख और शान्ति से नहीं रह सकता है।[139]

कविवर जयदेव बड़े उदार कवि है। वे दूसरे कवि की सुन्दर कविताओं की भी प्रशंसा करते हैं। उनका कथन है कि अपने वाग्विलासों से प्रसन्नता का अनुभव करने वाले कतिपय सज्जन दूसरे कवियों की उक्तियों में भी संतोष का अनुभव करते है। अपने घनीभूत मकरन्द के प्रस्रवण से पूर्ण आलवाल वाला रसाल वृक्ष क्या कलश जल से सिंचन की अपेक्षा नहीं करता है ?[140] इस कथन से कविवर जयदेव की उदारता ध्वनित होती है अन्यथा कुछ कवि अपनी रचना को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं और दूसरे की रचना को तुच्छ समझते हैं। वे अपने दूसरे सुभाषित में कहते हैं कि कुछ मन्दमति लोग कवियों की कविता की वक्रता की निन्दा करते हैं। जिस प्रकार नीरस पुरूष मृगनयनी ललनाओं के तिरछे कटाक्षों की छटा की प्रशंसा नहीं करते हैं किन्तु फिर भी निपुण, विदग्ध सज्जनों का मन क्या कविता की वक्रता को नहीं चाहता है ? इसी प्रकार क्या महादेव शंकर अपने किरीट के अग्रभाग में वक्र चन्द्रकला को धारण नहीं करते ?[141]

कविवर जयदेव कविता को श्रेष्ठतमकृति मानते हैं। उनका कथन है कि न तो ब्रह्मविद्या और न राजलक्ष्मी चित्त में वैसा हर्ष प्रदान करती है जैसा कि कवियों की लोकोत्तर पुरूष से सम्बन्धित कविता चित्त में हर्ष पैदा करती है। यथा

लोकोत्तर पुरूष श्रीराम से सम्बन्ध स्थापित करने वाली जनकतनया सीता लोगों के मन में हर्ष का संचार करती है।[142] कविवर जयदेव का कथन है कि कौतुक से परिपूर्ण वार्ता और विमल विद्या तथा कस्तूरी मृग की लोकोत्तर सुगन्ध, ये तीनों अनिवार्य रूप से जल में तेल की बूँद के समान पृथ्वी में अपने आप फैल जाती हैं।[143] इस कथन से कवि की गुण–ग्राहकता प्रकट होती है और वह कौतुकता से परिपूर्ण विमल विद्या के पक्षधर प्रतीत होते हैं।

कविवर जयदेव प्रसन्नराघवम् नाटक के नायक के द्वारा यह कहते हैं कि तत्कालीन समाज में क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों पर अपनी वीरता का प्रदर्शन नहीं करते थे। राम, परशुराम से इसी प्रसंग में कहते हैं कि चाहे हार कण्ठ में प्रवेश करे या आपका तीक्ष्ण धार वाला कुठार प्रवेश करें, नारियों के नेत्रों में कज्जल सुशोभित हो या जल (अश्रु) सुशोभित हो, हम लोग इस लोक में चिरकाल तक रहें या शीघ्र ही यमराज का मुख देखें, चाहे जो कुछ भी हो हम लोग ब्राह्मणों में पराक्रम का प्रदर्शन नहीं करते हैं। इससे विदित होता है कि तत्कालीन वर्ण व्यवस्था प्रधान समाज में ब्राह्मणों को श्रेष्ठता प्राप्त थी।

तत्कालीन समाज में अपने स्वजनों के सम्बन्ध में यह बात प्रचलित थी कि सुजन अपने आत्मीय जनों पर पड़ी हुई विपत्ति को न तो जानने की इच्छा करता था, न अनुमोदन करने की इच्छा करता था, न देखने की इच्छा करता था और न ही उपेक्षा करने की इच्छा करता था अर्थात् स्वजनों की विपत्ति में लोग

किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते थे।[144] कवि की यह मान्यता है कि दुरात्मा लोगों की सम्पत्तियाँ प्रायः दुष्परिणाम देने वाली होती हैं और महात्माओं की विपत्तियाँ भी शुभ परिणाम देने वाली होती हैं।[145] इससे यह ध्वनित होता है कि तत्कालीन समाज में दुष्टों की सम्पत्तियों को अशुभ माना जाता था और सज्जनों की विपत्तियों को सुखान्त माना जाता था।

कविवर जयदेव का कथन है कि भविष्य में कल्याण चाहने वाले सज्जन पर नारी की भालपट्टिका को नहीं देखा करते हैं। जिस प्रकार समाज में भाद्रपद शुक्लपक्ष की चतुर्थी को चन्द्रमा दर्शनीय नहीं होता है।[146] इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास ने अपने महाकाव्य रामचरितमानस में रूपान्तरित कर अनूदित किया है।[147] मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी में चन्द्रदर्शन करने से मिथ्या दोष लगने की सम्भावना बनी रहती है इसलिये बुधजनों को चतुर्थी के चन्द्रमा का दर्शन निषेध है।[148]

उपर्युक्त सुभाषितों के अनुशीलन–परिशीलन से तत्कालीन समाज का विश्वास, विचार, चिन्तन, धर्म–भीरूता, अधर्म के प्रति अरूचि, सुन्दर भविष्य की कामना, तत्कालीन संस्कृति और धर्म का संकेत प्राप्त होता है। यह भी विदित होता है कि कविवर जयदेव किन विचारों के पक्षधर हैं तथा वे किस प्रकार के आदर्श समाज के निवासी थे ?

उभयनाटककारों में साम्य और वैषम्य :

कविवर मुरारि प्रणीत अनर्घराघवम् और कविवर जयदेव प्रणीत प्रसन्नराघवम् नाटकों में कुछ समानतायें भी हैं और कुछ विषमतायें भी हैं। दोनों ही नाटकों की आधिकारिक कथावस्तु वाल्मीकि–रामायण में वर्णित रामकथा है और सुग्रीव की कथा प्रासंगिक कथावस्तु है। दोनों ही नाटककारों ने विस्तृत रामकथा को अपने नाटकों के सात अंकों में समेट दिया है। दोनों ही नाटक भवभूति विरचित उत्तररामचरितम् नाटक से प्रभावित हैं। दोनों ही नाटककारों ने नाटक के प्रारम्भ में लम्बी–लम्बी प्रस्तावना की सृष्टि की है। दोनों ही नाटककार पूर्व से चर्चित रामकथा को अपने नाटक की कथावस्तु बनाने के कारणों पर प्रकाश डालते हैं। अनर्घराघवम् में छब्बीस पुरूष पात्र और चार नारी पात्र हैं जबकि प्रसन्न राघवम् में चौबीस पुरूष पात्र और नौ नारी पात्र हैं जिनमें नदी पात्र भी शामिल हैं। अनर्घराघवम् में नदी पात्रों का वर्णन प्राप्त नहीं होता है जबकि प्रसन्नराघवम् में नदी पात्रों का भरपूर प्रयोग किया गया है।

अनर्घराघवम् नाटक में पाण्डित्य का प्रचुर प्रदर्शन है। मुरारि अपने को बाल वाल्मीकि कहते हैं किन्तु वाल्मीकि रामायण का प्रसाद गुण और ललित पदावली नाटक में दिखायी नहीं देती है। मुरारि ने भवभूति की परम्परा में अपने नाटक का गुम्फन किया हैं किन्तु उत्तररामचरितम् की मधुर गीतिबद्धता को वे नहीं पा सके हैं। मुरारि माघ काव्य के लालित्य पर भी आकर्षित थे किन्तु माघ का लालित्य भी वह प्राप्त नहीं कर सके हैं। वे नाटक के

लिये आवश्यक गुणों की उपेक्षा कर अपने पाण्डित्य प्रदर्शन को ही अपना लक्ष्य मान बैठे हैं। उन्होंने अपनी कलात्मकता का भरपूर प्रदर्शन किया है।

दूसरी ओर प्रसन्नराघवम् नाटक अपेक्षाकृत कोमल और सरस काव्य का उदाहरण है। यद्यपि उनका यह नाटक भी भवभूति के उत्तररामचरितम् से प्रभावित है किन्तु उत्तररामचरितम् नाटक की लय बद्धता और रसात्मकता को यह भी नहीं छू सके हैं। आदि कवि वाल्मीकि की पुण्य परम्परा में उत्पन्न यह कवित्व द्रुम कितना ऊँचा है जिसे जयदेव भी नहीं स्पर्श कर पाये हैं।

यद्यपि जयदेव की कविता प्रारम्भ में रस भरे मोदकों के समान प्रतीत होती है और वे अपने को रामकथा मंजरी का भ्रमर मानते हैं तथा उनकी भारती कोमल काव्य कौशल–कला में लीलावती है। उनके वाग्विलास धनीभूत मकरन्द की वर्षा करने वाले हैं। उनकी कविता में वक्रता है और आदर्श कवि चोर, मयूर भास, कविकुलगुरू कालिदास, श्रीहर्ष और बाणभट्ट हैं जिनकी कविता कामिनी उनके मन में कौतुक का संचरण करती है। फिर भी उक्त कवियों के काव्य गुणों का प्रतिबिम्ब इनके नाटक में दिखायी नहीं देता है किन्तु कविवर मुरारि की तुलना में इनकी कविता अधिक रसवती है।

यद्यपि नाटक के प्रारम्भ में इनकी कविताओं में कौतूहल और सुन्दर काव्य–छटा विद्यमान है किन्तु जैसे–जैसे इनका नाटक आगे की ओर बढ़ता है वैसे–वैसे स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित आदि बड़े–बड़े छन्दों के प्रयोग से

नाटकीयता विलुप्त हो गयी है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह दृश्य काव्य कम और श्रव्य काव्य अधिक है। लम्बे–लम्बे समासों का प्रयोग, अलंकारों की अनावश्यक भरमार, नाटकोचित सुन्दर संवाद–योजना का अभाव खटकता है फिर भी दोनों ही नाटककार अलग–अलग दृष्टियों से सुरभारती के शृंगार हैं।

अध्याय – 2
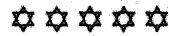
1. अस्ति मौद्गल्यगोत्रसम्भवस्य महाकवेर्भट्टश्रीवर्धमानतनूजन्मनस्तन्तुमतीनन्दनस्य मुरारेः कृतिरभिनवमनर्घराघवं नाम नाटकम् ।
   अनर्घराघवम्–प्रस्तावना, पृष्ठ – 9 ।
2. अस्य हि मौद्गल्यानां ब्रह्मर्षीणामन्वयमूर्धन्यस्य मुरारिनामधेयस्य बाल्मीकेर्वागयममृत–बिन्दुनिष्यन्दि कन्दलयति कौतुकं मे ।
   वाल्मीकिवागमृतकूपनिपानलक्ष्मी –
   मेतानि बिभ्रति मुरारिकवेर्वचांसि ।। अनर्घराघवम् , 1.12 ।।
3. तस्मैवीराद्भुतारम्भगम्भीरोदात्तवस्तवे ।
   जगदानन्दकन्दाय सन्दर्भाय त्वरामहे ।। अनर्घराघवम् , 1.6 ।।
4. संस्कृत ड्रामा (संस्कृत नाटक)–ए0बी0कीथ, पृष्ठ–238
   अनुवादक–डॉ0 उदय भानु सिंह, मोतीलाल बनारसी दास, 1971 ।
5. संस्कृत नाटक –ए0बी0कीथ, पृष्ठ–241
   अनुवादक–डॉ0 उदय भानु सिंह ।
6. अनर्घराघवम् – 3.44 पृष्ठ 171 ।
7. अनर्घराघवम् – षष्ठ अंक, पृष्ठ 319–––393 ।
8. देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतम्,
   जानीते नितरामसौ गुरूकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः ।
   अब्धिर्लंघित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता–
   मापातालनिमग्नपीवर तनुर्जानातिमन्थाचलः ।।
   संस्कृत नाटक– ए0बी0कीथ, पृष्ठ–243 पाण्डुलिपि से उद्धृत ।
9. संस्कृत ड्रामा– ए0बी0कीथ, पृष्ठ–243 ।
10. प्रकृष्टकर्त्रभिप्रायक्रियाफलवतो विधीन् ।
    प्रयुंजानास्त्वया वीर परिपाल्यामहे वयम् ।। अनर्घराघवम्, 2.86 ।।
11. स्वरितञित् कर्त्रभिप्राये क्रियाफले । पा0 1.3.72
12. "माल्यवान्– (विहस्य ।)वत्से, तपोभिरस्य ब्राह्मणादेशोऽपि स्थानिवद्भावेन क्षत्रकार्य न जहाति" । अनर्घराघवम्, चतुर्थ अंक पृष्ठ–199 ।
13. 'स्थानिवदादेशोऽनलविधौ'– पाणिनीय व्याकरण ।
14. (1) 'तपोभिरस्य ब्राह्मणादेशोऽपि क्षत्रकार्य न जहाति" । अंक–4
    (2) गायत्री द्रुपदा देवी पाप्मानमपहन्तु ते ।
    पुनन्तु पावमान्यस्त्वामृध्नोतु ब्रह्म ते परम् ।। अनर्घराघवम्, 4.62 ।
    (3) 'परिणमयति ज्योतिर्वृत्या यजूँषि' । वही–2.28 ।
15. अनर्घराघवम्, द्वितीय, चतुर्थ एवं षष्ठ अंक ।
16. अनर्घराघवम् अंक 2 एवं अंक 5 ।
17. 'वैशेषिक–कन्दली–पण्डितो जगद्विजयमानः पर्यटामि' (वही अंक–5) ।

18. क्रियाणां रक्षायै दशरथमुपस्थाय विमुखे,

    मुनौ विश्वामित्रे भगवति गते साम्प्रति गृहान् ।

    तपोलेश क्लेशादुपशमितविघ्नप्रतिभये,

    प्रवृत्ते यष्टुं वा रघुकुलकथैवास्तमयते ।। अनर्घराघवम्, 1.45 ।।

19. एकद्विप्रभृतिक्रमेण गणनामेषामिवास्तं यतां,

    कुर्वाणा समकोचयद्दशशतान्यम्भोजसंवर्तिकाः ।

    भूयोऽपि क्रमशः प्रसारयति ताः संप्रत्यमूनुद्यतः

    संख्यांतु सकुतूहलेव नलिनी भानोः सहस्त्रं करान् ।। अनर्घराघवम्, 2.5 ।।

20. दातव्येयमवश्यमेव दुहिता कस्मैचिदेनामसौ,

    दोर्लीलामसृणीकृतत्रिभुवनो लंकापतिर्याचते ।

    तत्किं मूढवदीक्षसे ननु कथागोष्ठीषु नः शासति,

    त्वद्वृत्तानि परोरजांसि मुनयः प्राच्या मरीच्यादयः ।। वही 3.44 ।।

21. समन्तादुत्तालैः सुरसहचरीचामरमरू–

    त्तरंगैरूत्कीलद्भुजपरिघसौरभ्यशुचिना ।

    स्वयं पौलत्स्येन त्रिभुवनभुजा चेतसि कृता–

    मरे राम त्वं मा जनकपतिपुत्रीमुपयथाः ।। वही 3.61 ।।

22. अभेदेनोपास्ते कुमुदमुदरे वा स्थितवतो,

    विपक्षादम्भोजादुपगतवतो वा मधुलिहः ।

    अपर्याप्तः कोऽपि स्वपरपरिचर्यापरिचय–

    प्रबन्धः साधूनामयमनभिसंधानमधुरः ।। वही 6.6 ।।

23. कल्पान्तक्रूरसूरोत्करविकटमुखो मानुषद्वन्द्वयुद्ध–

    क्रीडाकण्डूयदूर्जस्वलसकलभुजालोकभूयोविलक्षः ।

    सम्भूयोत्तिष्ठमानस्वपरबलमहाशस्त्रसम्पातभीमा–

    मुर्वीं गीर्वाणगोष्ठीगुरू मदनिकषो नैकषेयः पिधत्ते ।। वही 6.31 ।।

24. दृश्यन्ते मधुमत्तकोकिलवधूनिर्धूतचूतांकुर–

    प्राग्भारप्रसरत्परागसिकतादुर्गास्तटीभूमयः ।

    याः कृच्छ्रादतिलंघय लुल्बकभयात्तैरेव रेणूत्करे–

    र्धारावाहिभिरस्ति लुप्तंपदवीनिःशंकमेणीकुलम् ।।

    अनर्घराघवम्, 5.6 (संस्कृत नाटक, पृष्ठ–242) ।

25. अनेन रम्भोरू भवन्मुखेन, तुषारभानोस्तुलया धृतस्य ।

    ऊनस्य नूनं परिपूरणाय, ताराः स्फुरन्ति प्रतिमानखण्डाः ।। वही 7.81 ।।

26. गोत्रे साक्षादजनि भगवानेष यत्पद्मयोनिः।

    शय्योत्थायं यदखिलमहः प्रीणयन्ति द्विरेफान् ।।

    एकाग्रां यद्धति भगवत्युष्णभानौ च भक्तिं ।

    तत्प्रापुस्ते सुतनु वदनौपम्यमम्भोरूहाणि ।। अनर्घराघवम् 7.82 ।।

27. अभिमुखपतयालुभिर्ललाटश्रमसलिलैरवधूतपत्त्रलेख : ।
    कथयति पुरूषायितं वधूनां मृदितहिम द्युतिनिर्मलः कपोलः ।। अनर्घराघवम्–7.107 ।।
28. उदेष्यत्पीयूषद्युतिरूचिकणार्द्राः शशिमणि–
    स्थलीनां पन्थानो धनचरणलाक्षालिषिभृतः ।
    चकोरैरूड्डीनैर्झटिति कृतशंकाः प्रतिपदं
    परांचः संचारानविनयवतीनां विवृणते।। वही 7.90।।
29. अनर्घराघवम् 1.8 ।
30. वही 1.9 ।
31. अस्य हि मौद्गल्यानां ब्रह्मर्षीणाभन्वयमूर्धन्यस्य मुरारिनामधेयस्य बालवाल्मीकेः वाङ्मयममृतबिन्दुनिष्यन्दि कन्दलयति कौतुकं मे। (अनर्घराघवम् पृ0 12–13)
32. वाल्मीकिवागमृत कूपनिपान लक्ष्मी–
    मेतानि बिभ्रति मुरारिकवेर्वचांसि ।। अनर्घराघवम् 1.12 ।।
33. भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया ।
    मुरारि पद चिन्तायामिदमाधीयते मनः ।। शार्ग्धर पद्धति, पृ0–10 ।।
34. मुरारिपद चिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा ।
    भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररीकुरू ।। शार्ग्धर पद्धति, पृ0–10 ।।
35. मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे मतिं कुरू ।
    मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माऽघे मतिं कुरू ।। वही पृष्ठ – 10 ।।
36. संस्कृत साहित्य का इतिहास–पृ0–199
    डॉ0 सत्य नारायण पाण्डेय, 1966 ।
37. अंकोत्थनाटक इवोत्तमनायकस्य,
    नाशं कविर्व्यथित यस्य मुरारिरित्थम् ।। हरविजयम्– पृ0–15 ।।
38. इयं च करचुलिनरेन्द्रसाधारणाग्रमहिषी माहिष्मती नाम चेदिमण्डलमुण्डमाला नगरी ।
    अनर्घराघवम्, अंक–07 ।
39. संस्कृत ड्रामा : ए0बी0कीथ पृष्ठ–237,
    अनुवादक डॉ0 उदयभानु सिंह, 1965–मोतीलाल बनारसीदास ।
40. संस्कृत ड्रामा–ए0बी0कीथ पृ0 237
    अनुवादक डॉ0 उदय भानु सिंह, 1965 मोतीलाल बनारसीदास ।
    तुलनीय– उत्तररामचरितम् एवं अनर्घराघवम् ।
41. यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यंचोऽपि सहायताम् ।
    अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुंचति ।। अनर्घराघवम्–1.4 ।।
42. यद्यस्ति वीर्यमस्त्येव तत्कर्म कथयिष्यति । वही–6.21 ।।
43. कष्टा वेधव्यथा कष्टो नित्यमुद्वहनक्लमः ।
    श्रवणानामलंकारः कपोलस्य तु कुण्डलम् ।। वही– 1.40 ।।

44. उक्षा रथो भूषणमस्थिमाला भस्मांगरागो गजचर्म वासः ।
एकालयस्थेऽपि धनाधिनाथे सख्यौ दशेयं त्रिपुरान्तकस्य ।। अनर्घराघवम् 2.7 ।।

45. तुलनीय, कादम्बरी–कथामुख श्लोक संख्या 05 ।

46. पतिते व्यसने दैवाद्दारूणे दारूणात्मनि ।
संवर्मयति वज्रेण धैर्यं हि महतां मनः ।। अनर्घराघवम् 5.15 ।।

47. रामः– (विहस्य)
क्रौचं विमुच्य पुत्रं च पितरं च हिमालयम् ।
प्रविश्य जलधिं पक्षौ रक्षताऽनेन किं कृतम् ।। वही 7. 23 ।।

48. अनर्घराघवम् 1.12 एवम् पृ0 9–13

49. गोवर्द्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः ।
कविराजश्च रत्नानि सीमतौ लक्ष्मणस्य च ।।
संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 207, डॉ0 सत्य नारायण पाण्डेय ।

50. श्री भोजदेव प्रभवस्य रामादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्द कवित्वमस्तु ।। वही पृ0–208 ।।

51. अंगीकरोति यः काव्यं शब्दाऽर्थाऽवनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ।। चन्द्रालोक– 1–8 ।।

52. महादेवः सत्र प्रमुखमखविधैकचतुर :
सुमित्रा तद्भक्तिप्रणिहितमतिर्यस्य पितरौ ।
अनेनासावाद्यः सुकवि जयदेवेन रचिते ।
चिरं चन्द्रालोके सुखयतुमयूखः सुमनसः ।। चन्द्रालोक– 1–16 ।।

53. विलासो यद्वावाचामसमरसनिष्यन्दमधुरः ।
कुरंगाक्षीबिम्बाधरमधुरभावं गमयति ।
कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयो–
रयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः ।। प्रसन्नराघवम्, 1.14 ।।

54. लक्ष्मणस्येव यस्याऽस्य सुमित्राकुक्षिजन्मनः ।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद्भृंगायते मनः ।। वही– 1.15 ।।

55. संस्कृत नाटक, ए0बी0कीथ, पृष्ठ 257 ।

56. येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते ? ।।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररूहाः सानन्दमारोपिता–
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः ।। प्रसन्नराघवम्, 1.18 ।।

57. स्यादप्रतीतं शास्त्रैकगम्यं वीतानुमानादिवत् । चन्द्रालोक– पृ0–21 ।

58. अंगीकरोति यः काव्यं शब्दाऽर्थाऽवनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ।। चन्द्रालोक, 1–8 ।।

59. मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः सम्मार्जनीभिर्हृताः
प्रातः प्रांगणसीम्नि मन्थरचलद्बालांऽघ्रिलाक्षाऽरुणाः ।
दूराद्दाडिमबीजशंकितधियः कर्षन्ति केलीशुकाः
यद्विद्वद्भवनेषु भोजनृपतेस्तत्त्यागलीलायितम् ।।
काव्यप्रकाश—श्लोक सं0—505, पृष्ठ—408 सं0—1955 चौखम्बा संस्करण ।।

60. कदली कदली, करभः करभः,
करिराजकरः, करिराजकरः ।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्ति तुला—
मिदमूरूयुगं न चमूरूदृश ।। प्रसन्नराघवम्, 1.37 ।।

61. कवीन्द्रः कौण्डिन्यः, वही, 1.14 ।

62. अधुना च श्रुतमस्माभिः यत् किल सुकण्ठ नाम्ना गायकेन सह मैत्रीं विधाय दाक्षिणात्यानाम् भूभुजां सदसि तेन रंगसंगरमुपसंक्रान्तवान् इति । वही पृ0—12 ।।

63. विलासो यद्वाचामसमरस निष्यन्दमधुरः
कुरंगाक्षीबिम्बाधरमधुरभावं गमयति । प्रसन्नराघवम् 1.14 ।।

64. येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती .... ।
(टिप्पणी सं0 56) प्रसन्नराघवम् 1.18 ।।

65. प्रसन्नराघवम्— 1.12 ।

66. वही, 1.7 ।

67. रामचरितमानस— 07 ।

68. बीजं यस्य चिरार्जितम् सुचरितं, प्रज्ञा नवीनोऽङ्कुरः
काण्डः पण्डितमण्डलीपरिचयः, काव्यं नवः पल्लवः ।।
कीर्तिः पुष्पपरम्परा, परिणतः सोऽयं कवित्वद्रुमः
किं वन्ध्यः क्रियते विना रघुकुलोत्तंसप्रशंसाफलम् ।। प्रसन्नराघवम् 1.13 ।।

69. अपिमुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः,
परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः ।।
निजघन—मकरन्द—स्यन्द—पूर्णालवालः
कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः ? ।। वही— 1.19 ।।

70. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकुरः, कर्णपूरो मयूरो,
भासो हासः, कविकुलगुरूः कालिदासो विलासः ।।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ।। वही 1.22 ।।

71. निन्द्यन्ते यदि नाम मन्दमतिभिर्वक्राः कवीनां गिरः
स्तूयन्ते न च नीरसैर्मृगदृशां वक्राः कटाक्षच्छटाः ।।
तद्वैदग्ध्यवतां सतामपि मनः किं नेहते वक्रतां
धत्ते किं न हरः किरीटशिखरे वक्रां कलामैन्दवीम् ।। प्रसन्नराघवम् 1.20 ।।

72. न ब्रह्मविद्या न च राजलक्ष्मी–
स्तथा यथेयं कविता कवीनाम् ।
लोकोत्तरे पुंसि निवेश्यमाना
पुत्रीव हर्षं हृदये करोति ।। वही, 1.23 ।।

73. आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः,
कन्येयं कलधौतकोमलरुचिः, कीर्तिश्च लाभास्पदम् ।
नाकृष्टं, न च टात्कृतं, न नमितं स्थानांच न त्याजितं,
केनापीदमहो धनुः किमधुना निर्वीरमुर्वीतलम् ।। प्रसन्नराघवम्, 1.32 ।।

74. द्वीप–द्वीप के भूपति नाना । आए सुनि हम जो पनु ठाना ।।
देव दनुज धरि मनुज सरीरा । बिपुल बीर आए रनधीरा ।।
कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय ।
पावनिहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ।। रामचरितमानस– 1.251 ।।

75. प्रसन्नराघवम्– पृ0 70—84 ।

76. प्रसन्नराघवम्– 1.46 ।

77. उद्दण्डचण्डिमलसद्भुजदण्डखण्ड–
हेलाचलाचलहराचलचारुकीर्त्तेः ।
कीदृग्यशस्तुलितबालमृणालकाण्ड–
कोदण्डकर्षण–कदर्थनयाऽनया मे ।। वही, 1.48 ।।

78. अन्योऽपि कोऽपि यदि चापमिमं विकृष्य
सीताकरग्रहविधिं विदधीत धीरः ।
लंकां नयामि च गिरानुनयामि चैनां
द्रागानयामि च वशे जनकेन्द्रपुत्रीम् ।। प्रसन्नराघवम्, 1.55 ।।

79. बाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमानं
नेदं धनुश्चलति किंचिदपीन्दुमौलेः ।
कामातुरस्य वचसामिव संविधानै–
रभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम् ।। वही, 1.56 ।।

80. डगइ न सम्भु सरासनु कैसे । कामी बचन सती मनु जैसे ।। रामचरितमानस– 1.250 ।।

81. रे बाण, मुंच बाणशतानि पंच
नन्वस्ति में करतले करवालवल्ली ।
रे पंचवाण, विवृणु त्वमपि स्वबाणान्,
नन्वेति सा युवतिलोकललामवल्ली ।। प्रसन्नराघवम्, 1.57 ।।

82. वार्ता च कौतुकवती, विमला च विद्या,
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरंगनाभेः ।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार–
मेतत्त्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ ।। प्रसन्नराघवम्, 2.2 ।।

83. इह मधुपवधूनां पीतमल्लीमधूनां,
विलसति कमनीयः काकलीसम्प्रदायः ।
इह नटति सलीलं मंजरी वंजुलस्य,
प्रतिपदमुपदिष्टा दक्षिणेनानिलेन ।। वही, 2.3 ।।

84. केयं श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखा–
लग्नैरंगैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः ।
हारिद्राम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरंवहद्भिः
कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति ।। प्रसन्नराघवम् 2.7 ।।

85. बन्धूकबन्धुरधरः सितकेतकाग्रं
चक्षुर्मधूककलिकामधुरः कपोलः ।
दन्तावली विजितदाडिमबीजराजि–
रास्यं पुनर्विकचपंकजदत्तदास्यम् ।। वही, 2.8 ।।

86. पदाभ्यामुन्निद्रामधरयति शोणाम्बुजरूचिं
कराभ्यामादत्ते नवकिसलयानामरूणताम् ।
प्रवालस्यच्छायां दशनवसनाग्रेण पिबति,
स्मितज्योत्स्नापूरैरूपहसति कान्ति हिमरूचेः ।। प्रसन्नराघवम्, 2.9 ।।

87. श्यामच्छवीनामियमन्तराले प्रादुर्भवन्ती कदलीदलानाम् ।
कलेव चान्द्री नवनीरदानां चकोरवन्मां मुदितं करोति ।। वही, 2.13 ।।

88. विकसितपेशलोत्पलपलाशपुंजश्यामलो,
महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोम–कोमलः ।
लतागृहे कोऽयमनंगरूप–खण्डनो
विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः ।। वही, 2.21 ।।

89. अयि पिबतं लोचने ! प्रियजनवदनारविन्दमकरन्दम् ।
अयि तरले ! विचारयतं 'पुनः क्व युवां, क्वायं च' ।। प्रसन्नराघवम्, 2.25 ।।

90. सर्वस्वं नवयौवनस्य, भवनं भोगस्य, भाग्यं दृशां,
सौभाग्यं मदविभ्रमस्य, जगतः सारं, फलं जन्मनः ।
साकूतं कुसुमायुधस्य, हृदयं रामस्य, तत्त्वं रतेः,
शृंगारस्य रहस्यमुत्पलदृशस्तत् किंचिदालोकितम् ।। वही, 2.26 ।।

91. मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयो हा ! विधातुः । वही, 2.28 ।

92. यथाऽहं निस्सीमोत्सवशुभगभोगे भवकथा–
    पथातीते चेतः प्रणयिनि रमे पुंसि परमे ।
तथैवाऽस्मिन् बाले ! दलदमल–नीलोत्पलदलो–
    दर श्यामे रामे नयनपदवीमागतवति ।। प्रसन्नराघवम्, 3.22 ।।

93. यस्य ख्याता जगति सकले निस्तमिस्रा तपः श्री–
    र्मिथ्योत्कण्ठः कथमिह भवेदेष गाधेस्तनूजः ?
बालो रामः किमपि गहनं कार्मुकं चन्द्रमौले–
    र्दोलारोहं कलयति मुहुस्तेन मे चित्तवृत्तिः ।। वही, 3.35 ।।

94. सखि सब कौतुकु देखनिहारे । जेउ कहावत हितू हमारे ।।
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं । ए बालक असि हठ भलि नाहीं ।।
रामचरितमानस– 1.255–1 ।

95. दुर्धर्षाः सुरसिद्धकिन्नरनरैस्त्यक्तक्रमं वक्रतां,
    प्राप्ते यत्र विधातरीव तरसा तिस्रोपि दग्धाः पुरः ।
तद्भग्नं यदि राघवेण शिशुना चण्डीपतेः कार्मुकं,
    तन्मग्नं कुलमेव तर्कय रघोर्मच्छस्त्रधाराम्भसि ।। प्रसन्नराघवम् 4.13 ।।

96. मौर्वी धनुस्तनुरियं च बिभर्ति मौंजीं,
    बाणाः कुशाश्च विलसन्ति करे, सितायाः ।
धारोज्ज्वलः परशुरेष कमण्डलुश्च,
    तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः ? ।। वही, 4.15 ।।

97. हारः कण्ठं विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः,
    स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु वः कज्जलं वा जलं वा ।
सम्पश्यामो ध्रुवमिव सुखं प्रेतभर्त्तुर्मुखं वा,
    यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः ।। प्रसन्नराघवम् 4.23 ।।

98. भो ब्रह्मन् ! भवता समं न घटते संग्रामवार्तापि नः,
सर्वे हीनबला वयं, बलवतां यूयं स्थिता मूर्द्धनि ।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभृता–
मस्माकं, भवतां पुनर्नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम् ।। वही, 4.25 ।।

99. देव एकु गुनु धनुष हमारे । नव गुन परम पुनीत तुम्हारे ।।
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु बिप्र अपराध हमारे ।। रामचरितमानस– 1.281.4 ।।

100. क्वपरशुरशुभस्ते ? कुत्र गोत्रं पवित्रं, ?
    क्व धनुरिदमुदग्रं ? निर्मलं कुत्र शीलम् ? ।
घनसमरकराला कुत्र नाराचहेला ?
    कुशकिसलयलीला कुत्र वा पर्णशाला ? ।। प्रसन्नराघवम् 4.32 ।।

101. प्रसीद त्वं रोषाद्विरम, कुरु मे चेतसि गिरं,
चिरं यच्छायासैर्बहुभिरिह वारैर्जितमभूत् ।
यशोवृत्तं, वित्तं कितव इव विक्षोभतरलं,
तदेतस्मिन्वारे भृगुतिलक ! मा हारय मुधा ।। प्रसन्नराघवम् 4.35 ।।

102. यशः पूरं दूरं तनु, सुतनुनेत्रोत्पलवनी–
तमस्तन्द्राचण्डातप ! तप सहस्त्राणि शरदाम् ।
इयं चास्तां युष्मच्छरशमितलंकेश्वरशिरः–
श्रितोत्संगा नन्दत्सुरनरभुजंगा त्रिजगती ।। प्रसन्नराघवम्, 4.48 ।।

103. सरयूः–त्वयादेयं यन्मे द्वयमभिहितं, देहि तदिदं–
वनं कौशल्येयो विशतु, युवराजोऽस्तु भरतः ।
इतीदं कैकेय्या वचनमधिगम्याऽऽकुलमतेः,
पितुः पादौ नत्वा मुदितहृदयोऽसौ वनगमात् ।। वही, 5.04 ।।

104. पुरः कान्तं यान्तं विपिनमनुयान्त्याः सरभसं,
तदादौ सीतायाः किसलयनिभौ वीक्ष्य चरणौ ।
मुहुः शीतास्तप्ताः किमपि च मुहुर्बन्धुनयनैः
समं मुक्ता मुक्तासदृशरूचयो बाष्पकणिकाः ।। प्रसन्नराघवम्, 5.14 ।।

105. बाला विदेहतनया, तरलौ भवन्तौ,
दिग्दक्षिणा च रजनीचरचक्रदुष्टा ।
तद्वत्स ! वत्सलतयेदमुदाहरामो,
मा राम ! गच्छ नयदक्षिण ! दक्षिणाशाम् ।। वही 5.15 ।।

106. मातस्तातः क्व यातः ? सुरपतिभवनं, हा कुतः ?, पुत्रशोकात्,
कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णो त्वमवरजतया यस्य जातः, किमस्य ?
प्राप्तोऽसौ काननान्तं, किमिति ? नृपगिरा, किन्तथाऽसौ बभाषे ?
मद्वाग्बद्धः, फलन्ते किमिह ? तव धराऽधीशता, हा हतोऽस्मि ।। वही, 5.18 ।।

107. यावत्कर्णं तपति तपनस्तावदेव प्रयाणं,
विश्रामश्च प्रसरति रवेरंशुजाले कराले ।
यात्रोद्योगः पुनरपि रवेर्लम्बमाने विमाने,
यावन्मीलत्यथ कमलिनी तावदावासबन्धः ।। प्रसन्नराघवम्, 5.25 ।।

108. सरयू– तपन सुतया देव्या यद्वा भगीरथकन्यया,
विपुलविपुलैर्वीचीहस्तश्चिरादपि किं कृतम् ।
ललितलवलीभंगैरंगैर्वनं चलिता सती
जनकतनया पाणौ धृत्वा न यद्विनिवारिता ।। वही, 5.33 ।।

109. 'हा राम ! हा रमण ! हा जगदेकवीर !
हा नाथ ! हा रघुपते ! किमुपेक्षसे माम् ।'
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती–
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम ।। प्रसन्नराघवम् 5.45 ।।

110. गंगा – प्रायो दुरन्तपर्यन्ताः सम्पदोऽपि दुरात्मनाम् ।
भवन्ति हि सुखोदर्का विपदोऽपि महात्मनाम् ।। वही 5.49 ।।

111. अयमुदयति चन्द्रे विप्रयोगं प्रियायाः
श्रयति, तपति सूर्ये रागमंगीकरोति ।
मम तु जनकपुत्री–विप्रयुक्तस्य यातं
शतमधिकमपीदं चन्द्रसूर्योदयानाम् ।। वही 6.7 ।।

112. परिमितकमनीयः कोमलो वाग्विलासः,
सरसमधुरकाकुस्वीकृता काऽपि लेखा ।
ध्वनिरपि विपंचीपंचमस्यानुवादी,
श्रुतिरपि कलकण्ठीकण्ठसंवादभूमिः ।। वही 6.14 ।।

113. हा जानकि ! त्वमधुनासि कथं भवित्री ,
(सविचिकित्सम्)
धिग्दैवतं तव सुदारूण एव पाकः ।
(सक्रोधम्)
आः पाप ! राक्षसकुलाधम, संहृतोऽसि
(ससंभ्रमम्)
हे वत्स, लक्ष्मण ! धनुर्धनुरेष कालः ।। प्रसन्नराघवम् 6.29 ।।

114. विरम विरम रक्षः ! किं मुधा जल्पितेन
स्पृशति नहि मदीयं कण्ठसीमानमन्यः ।
रघुपति–भुजदण्डादुत्पलश्यामकान्ते–
र्दशमुख ! भवदीयान्निष्कृपाद्वा कृपाणात् ।। वही 6.30 ।।

115. चन्द्रहास ! हर मे परितापं, रामचन्द्रविरहानलजातम्
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्ण,धारया वहसि शीतलमम्भः ।। वही 633 ।।

116. चन्द्रहास हरू मम परितापं । रघुपति विरह अनल संजातम् ।।
सीतल निसित बहसि बर धारा । कह सीता हरू मम दुखभारा ।। रामचरितमानस 5.9.3 ।।

117. या शैशवावधि मनोरमरामचन्द्र–
हस्तांगुलिप्रणयिनी सुभगा सुवृत्ता ।
अन्येव सा जनकराजसुता कथं नु
लंकामुपागतवती मणिमुद्रिकेयम् ।। प्रसन्नराघवम् 6.38 ।।

118. हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः

सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिःश्वासपवनः ।

नवा मल्ली भल्ली, कुवलयवनं कुन्तगहनं,

मम त्वद्विश्लेषात्सुमुखि ! विपरीतं जगदिदम् ।। प्रसन्नराघवम् 6.43 ।।

119. कहेउ राम वियोग तव सीता । मो कहुँ सकल भए विपरीता ।।

नवतरू किसलय मनहुँ कृसानू । कालनिसा सम निसि ससि भानू ।।

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा । बारिद तपत तेल जनु बरिसा ।।

जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ।

कहेहू तें कछु दुख घटि होई । काहि कहौं यह जान न कोई ।।

तत्व प्रेम कर मम अरू तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ।।

प्रभु संदेसु सुनत बैदेही । मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ।।

रामचरितमानस – सुन्दरकाण्ड 14 (1–4 तक)

120. कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं,

को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम् ?

जानात्येकं शशधरमुखि ! प्रेमतत्वं मनो मे,

त्वामेवैतंचिरमनुगतं तत् प्रिये ! किं करोमि ।।प्रसन्नराघवम् 6.44 ।।

121. उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते ।

चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका ।। प्रसन्नराघवम् 7.1 ।।

122. जो आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना ।।

सो परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि के चंद कि नाईं ।।

।। रामचरितमानस–सुन्दरकाण्ड, 37.3 ।।

123. अंगं लिम्पति चन्दनेन मृदुभिः शीतद्युतिः स्वः करैः,

किंचिंचंचलतालवृन्तकलनव्यग्रो वसन्तानिलः ।

किं चायं नलिनीदलैर्वितनुते तल्पं प्रतीचीपति –

र्देवैरित्थमनंगतप्तहृदयो लंकेश्वरः सेव्यते ।। प्रसन्नराघवम् 7.7 ।।

124. हा वत्स ! लक्ष्मण ! विकासय नेत्रपद्मो

मा गादिदं युगपदेव समस्तमस्तम् ।

भाग्यं दिवाकरकुलस्य च, जीवितं च

रामस्य, किंच नयनांजनमूर्मिलायाः । वही 7.30 ।।

125. कनीयस्या मातुः कृतचरणपातः कथमहं

सहिष्ये मत्पार्श्वे विफलपरिवर्त्तं नयनयोः ।

अये ! शान्तं पापं कठिन इव चेज्जीवितुमना

विना वत्सं रामः पुनरयमयोध्यां प्रविशति ।। वही 7.32 ।।

126. उल्लंघ्य नीरधिमतीत्य व दण्डकानि
नद्यौ च मेकलकलिन्दसुते व्यतीत्य ।
प्राप्ताः शिखण्डिशतखण्डितशाखिखण्ड--
मेते वयं शिखरिणं ननु चित्रकूटम् ।। प्रसन्नराघवम् 7.78 ।।

127. प्राप्ता निर्भरमुन्नतिर्निजगुणैराज्ञा पितुः पालिताः
सुग्रीवश्च विभीषणश्च परमां राज्यश्रियं प्रापितौ ।
संग्रामे दशकन्धरः सुररिपुर्नीतो यशःशेषतां
दृष्टो बन्धुगणश्च हर्षविगलद्वाष्पोल्लसल्लोचनः ।। वही 7.93 ।।

128. आबालाद् वदनाम्बुजे तनुभृतां सारस्वतं जृम्भतां
देवे कौस्तुभधाम्नि चन्द्रमुकुटेऽद्वैता मतिः खेलतु ।
वाग्देव्या सह मुक्तवैशसरसा देवीव दीव्यादियं
शेषस्येव फणांचलेषु सततं लक्ष्मीः सतां सद्मसु ।। वही 7.94 ।।

129. विलासो यद्वाचामसमरस निष्यंन्द मधुरः ....। (टिप्पणी सं0 63) प्रसन्नराघवम् 1.14 ।।

130. येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती ....।
(टिप्पणी सं0 56)।। प्रसन्नराघवम् 1.18

131. आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी, कादम्बनी वर्षतु । प्रसन्नराघवम् 1.09 ।।

132. कदली कदली, करभः करभः , ...। (टिप्पणी सं0 60)।।
प्रसन्नराघवम् 1.37 एवं साहित्यदर्पण पृष्ठ 72 मे समुद्धृत ।।

133. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः , कर्णपूरो मयूरो ....। (टिप्पणी सं0 70)।। प्रसन्नराघवम् 1.22।।

134. संस्कृत नाटक – ए0बी0कीथ, भाषान्तरकार डॉ0 उदयभानु सिंह
मोतीलाल बनारसी दास, द्वितीय संस्करण, 1971, पृ0 256 ।

135. संस्कृत नाटक – ए0बी0कीथ , पृ0 257 ।

136. आकारेणैव चतुरास्तर्कयन्ति परेंगितम् ।
गर्भस्थं केतकीपुष्पमामोदेनेव षट्पदाः ।। प्रसन्नराघवम् 1.4 ।।

137. गुणग्रामाविसंवादि नामापि हि महात्मनाम्।
यथा सुवर्णश्रीखण्डरत्नाकरसुधाकराः ।। वही 1.5 ।।

138. चन्द्रे च रामचन्द्रे च नारीणां च दृगंचले ।
नीलोत्पलसुहृत! कान्तौ कस्य नाऽऽमोदते मनः ।। प्रसन्नराघवम् 1.10।।

139. सुललितवदनामुदारवृत्तां कृतिमथवा युवतिं परस्य हृत्वा ।
तटमपि परमर्णवस्य गत्वा वद कतरः सुखभाजनं जनः स्यात् ।। प्रसन्नराघवम्, 1.17 ।।

140. अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः .... ।
(टिप्पणी सं0–69) प्रसन्नराघवम्, 1.19 ।

141. निन्द्यन्ते यदि नाम मन्दमतिभिर्वक्राः कवीनां गिरः .... ।
(टिप्पणी सं0–71) प्रसन्नराघवम्, 1.20 ।

142. न ब्रह्मविद्या न च राजलक्ष्मी–.................. ।

(टिप्पणी सं0–72) प्रसन्नराघवम्, 1.23 ।

143. वार्ता च कौतुकवती, विमला च विद्या, ... ।

(टिप्पणी सं0–82) प्रसन्नराघवम्, 2.2 ।

144. न ज्ञातुं नाप्यनुज्ञातुं नेक्षितुं नाप्युपेक्षितुम् ।
सुजनः स्वजने जातं विपत्पातं समीहते ।। वही, 5.2 ।।

145. प्रायो दुरन्तपर्यन्ताः सम्पदोऽपि दुरात्मनाम्– .... ।

(टिप्पणी सं0–110) प्रसन्नराघवम्, 5.49 ।

146. उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते .... ।

(टिप्पणी सं0–121) प्रसन्नराघवम्, 7.1 ।

147. जो आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुखनाना ।।
सो परनारि लिलार गोसाईं । तजउ चउथि के चंद कि नाईं ।। रामचरितमानस 5.37.3 ।।

148. 'सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् ।
मिथ्याऽभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा ।।'' मार्कण्डेय पुराण– पृ0, 215 ।।

तृतीय अध्याय

विषयवस्तु का नाट्यशास्त्रीय विवेचन

तृतीय अध्याय

विषयवस्तु का नाट्यशास्त्रीय विवेचन

नाटकों की श्रेष्ठता :

काव्य की अनेक विधाओं में नाटकों का महत्व सर्वोपरि माना जाता है। सुधी समीक्षकों का कथन है कि काव्य के अन्य भेदों में नाटक अत्यधिक रमणीय होता है।[1] इसका सीधा और साधारण कारण यह प्रतीत होता है कि काव्यानन्द से वंचित रहने वाले साधारण जन भी नाटक का मनोहर अभिनय देखकर असीम और अलौकिक आनन्द की अनुभूति कर लेते हैं। जहाँ एक ओर काव्य के अन्य भेद श्रवण मार्ग से सहृदयों के हृदयों को आवर्जित करते और प्रभावित करते हैं तो वहीं दूसरी ओर दृश्य–काव्य अथवा नाटक नेत्र मार्ग से आशुतर गति से हृदय प्रदेश को चमत्कृत कर आनन्द रस की सृष्टि करता है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि किसी वस्तु को देखने का आनन्द उसके सुनने की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्रतर होता है और दूसरी बात यह भी है कि काव्य का रसास्वादन सहृदय ही कर सकते हैं किन्तु नाटकों में प्रस्तूयमान अभिनय आदि में रसोपभोग की सम्पूर्ण सामग्री, नेपथ्य विन्यास, वेश–रचना और नाना प्रकार के संविधानकों के द्वारा मंच पर ही उपस्थित कर ली जाती है। इस प्रकार नाटकों में रसानुभूति के लिये वातावरण स्वयं उपस्थित हो जाता है। यही कारण है कि साधारण व्यक्तियों के लिये भी काव्य की अपेक्षा नाटक का आकर्षण विशेष प्रभावशाली होता है। इसीलिये नाटक को कवित्व की चरम सीमा माना जाता है।[2]

नाटक एक ओर सार्वजनिक मनोरंजन का हेतु है तो दूसरी ओर इसकी

विषय-वस्तु तीनों लोकों के भावों का सांगोपांग निरूपण करने वाली है। काव्य की अन्य विधाओं की भाँति नाटकों का प्रयोजन न केवल चतुर्वर्ग फल प्राप्ति है[3] अपितु बहु आयामी है। यह शक्ति–हीनों के हृदय में शक्ति का संचार करता है, शूरवीरों के हृदय में उत्साह की वृद्धि करता है, अज्ञानियों को ज्ञानी बनाता है और सकल जन–मनोरंजन करने के साथ–साथ बुध विश्राम का विधाता है। सर्वोपरि रूपक आनन्द की वर्षा करने वाले हैं, केवल व्युत्पत्ति मात्र ही इनका प्रयोजन नहीं है।[4]

नाट्यशास्त्र के प्रणेता मुनिवर भरत का कथन है कि कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है जो नाटकों में दिखायी न देता हो।[5] इसीलिये सम्भवतः कविवर कालिदास का यह कथन इस सन्दर्भ में नितान्त सत्य और प्रासंगिक है कि भिन्न–भिन्न रूचि वाले लोगों के लिये नाटक सर्वसाधारण और सर्वमान्य के मनोरंजन का सुन्दर साधन है।[6] इसके अतिरिक्त आनन्द के साथ चरित्र को उदार बनाना, जीवन–स्तर का उदात्तीकरण और आदर्श विधान ही नाटक के कतिपय अन्य महत्वपूर्ण प्रयोजन हैं।

यद्यपि मूलरूप से रामकथा आदि कवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण महाकाव्य में प्राप्त होती है। उसमें रामकथा को लेकर एक महान् महाकाव्य की रचना हुई है। काव्य को पढ़ने वाले ही इस मूल रामकथा का आस्वादन कर सकते हैं परन्तु जो लोग पढ़ने में असमर्थ हैं या साक्षर नहीं हैं वे तो देखकर ही रामकथा का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। रामकथा को आधार बनाकर अनेक काव्यों और महाकाव्यों की

रचना हुई है और श्रव्य काव्य की विधा के द्वारा पल्लवित और पुष्पित होती रही है किन्तु साधारण लोगों को भी आनन्द प्रदान करने के लिये, उनके चरित्र का उदात्तीकरण करने के लिये, सर्वोपरि उनमे उच्च–चारित्रिक भाव–भूमि का सृजन करने के लिये दृश्य–काव्य (नाटकों) में रामकथा का आश्रय लिया गया है और यह कुछ सीमा तक सफल रहा है।

इन्हीं सन्दर्भों में कविवर मुरारि ने रामकथा को नाटकीय रूप प्रदान करने के लिये अनर्घराघवम् जैसे नाटक का गुम्फन किया है और कविवर जयदेव ने भी उक्त प्रयोजनों की सम्पूर्ति के लिये प्रसन्नराघवम् नाटक का प्रणयन किया है। रामकथा अति विशाल, व्यापक और अनेक घटनाओं, दृश्यों तथा विविध वर्णनों से भरी हुई है। उसे आद्योपान्त समेटकर नाटकीय रूप देना कवि–नैपुण्य का परिचायक है। रामायण की विस्तृत कथा–सामग्री नायक, उपनायक, नायिका, विविध विशेषताओं से भरी हुई है तथा अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का उसमें सांगोपांग वर्णन किया जा चुका है फिर भी ऐसी चर्चित कथा का आश्रय लेकर नाटक लेखन का अभिनव प्रयोग विस्मयकारी है। कविवर मुरारि और जयदेव अपने–अपने समय के श्रेष्ठ कवि और नाटककार हैं जिन्होंने रामकथा का आश्रय लेकर अपने–अपने नाटकों में अपनी दक्षता, निपुणता और अपने कवि कर्म का परिचय दिया है।

रूपक :

नाट्यशास्त्र के अनुसार दृश्य–काव्य को नाटक, रूपक और रूप इत्यादि

नामों से अभिहित किये जाने की परम्परा रही है। धीरोदात्तादि नायकों, नायिकाओं तथा अन्य पात्रों के आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक इन चतुर्विध अभिनयों के द्वारा विहित अवस्थानुकरण से नटों में जो 'तादात्म्यापत्ति' होती है, उसे नाटक कहते हैं।[7] यही नाटक दृश्यमान होने के कारण 'रूप' और नट में रामादि की अवस्था का आरोप होने के कारण 'रूपक' भी कहा जाता है [8] जो रसों पर आश्रित होता है और दस प्रकार का होता है।[9] यहाँ यह प्रश्न विचारणीय हो सकता है कि अनुकरण प्रधान होने के कारण रूपकों में आवेग होने से दस प्रकार के भेद कैसे सम्भव हो सकते हैं ? इसके उत्तर में यह कथनीय है कि कथावस्तु, नायक और रस के भेद से रूपकों में दस भेद हो जाते हैं।[10]

कथावस्तु की दृष्टि से अनर्घराघवम् एवं प्रसन्नराघवम् :

रूपकों में मुख्य रूप से कथावस्तु दो प्रकार की होती है, प्रथम– आधिकारिक कथावस्तु और दूसरी प्रासंगिक कथावस्तु। इनमें जो मुख्य कथावस्तु है, उसे आधिकारिक कथावस्तु कहते हैं तथा इस अंग रूपी जिन उपकथाओं का समावेश होता है, उन्हें प्रासंगिक कथावस्तु कहा जाता है। यथा–रामायण कथा में रामकथा आधिकारिक कथावस्तु है और उसके अन्तर्गत प्राप्त होने वाली विभीषण अथवा सुग्रीव की कथा या अन्य कोई लघु कथा प्रासंगिक कथावस्तु कही जाती है।[11]

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अध्ययन विषयीभूत नाटक 'अनर्घराघवम्' में और 'प्रसन्नराघम्'

नाटक में प्राप्त कथावस्तु के अनुशीलन–परिशीलन से विदित होता है कि इन दोनों नाटकों की आधिकारिक या मुख्य कथावस्तु एक ही है और यह है रामकथा । इसका मुख्य स्रोत आदि कवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण महाकाव्य है।

आधिकारिक कथावस्तु के सम्बन्ध में आचार्यो का कथन है कि फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहा जाता है और उस फल या फलभोक्ता के द्वारा फल–प्राप्ति तक निर्वहित वृत्त अथवा कथा आधिकारिक पद–वाच्य होती है।[12]

प्रस्तुत सन्दर्भ में दोनों ही नाटकों में रावण–वध के अनन्तर राम के द्वारा सीता की प्राप्ति ही रामकथा का फल है। इस फल के स्वामी या भोक्ता स्वयं श्रीराम हैं। अनन्तर पुनः सीता की प्राप्ति होती है इसलिये दोनों ही नाटकों की आधिकारिक कथावस्तु रामायण वर्णित रामकथा है। दोनों ही कवियों ने महाकाव्य में वर्णित रामकथा को आधिकारिक कथावस्तु बनाकर इसे नाटकीय रूप दिया है।

अनर्घराघवम् का शुभारम्भ यज्ञ रक्षा करने के लिये महर्षि विश्वामित्र के द्वारा महाराज दशरथ से राम–लक्ष्मण को अपने साथ आश्रम ले जाने से होता है। राम–लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम जाते हैं। वहाँ वे ताड़का और अन्य राक्षसों का वध करते हैं। तदनन्तर राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ मिथिला जाते हैं। वहाँ सीता स्वयंवर आयोजित होता है। धनुष–भंग करने के पश्चात् सीता के साथ राम का परिणय होता है। सीता विवाहोत्सव के साथ परशुराम विजयोत्सव भी मनाया जा रहा था कि कैकेयी ने दासी के द्वारा पत्र भेजकर अपने वरदानों में

राम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक माँग लिया। सभी मर्माहत हो जाते हैं। परम पितृभक्त राम, सीता और लक्ष्मण के साथ वन चले जाते हैं। यहाँ पर इस नाटक में महावीरचरितम् की तरह राम वनगमन का प्रसंग मिथिला में ही उठा दिया जाता है।

राम के वन में जाने पर रावण भिक्षु का वेष बनाकर आश्रम में आता है। उस समय राम आश्रम में नहीं थे। वह छल–बल से सीता का हरण करता है। जटायु मारा जाता है। बाद में राम सभी समाचार जानकर बहुत दुखी होते हैं। वे सीता की खोज करने के लिये बालि–वध पूर्वक सुग्रीव के साथ मैत्री करते हैं। इसके बाद सुग्रीव की सम्पूर्ण वानर सेना समुद्र पर सेतु बाँधकर राम के नेतृत्व में लंका पर आक्रमण करती है। युद्ध में मेघनाद और कुम्भकर्ण मारे जाते हैं। बाद में रावण स्वयं लड़ने आता है और राम के अस्त्रों से आहत होकर वह भी धराशायी हो जाता है। तदनन्तर सीता की अग्नि–परीक्षा के बाद राम सभी लोगों के साथ पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर अयोध्या के लिये प्रस्थान करते हैं। मार्ग में नाना नदी, पर्वतों, स्थानों को देखते हुये और सीता को दिखाते हुये सब लोग अयोध्या पहुँचते हैं, जहाँ वशिष्ठ आदि उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अन्त में, राम का राज्याभिषेक होता है।

इस प्रकार राम के द्वारा रावण का वध और लंका विजय के पश्चात् सीता की प्राप्ति और राज्याभिषेक आदि फल की प्राप्ति नायक को होती है।

इसलिये प्रारम्भ से लेकर राज्याभिषेक आदि तक की रामकथा आधिकारिक कथावस्तु है। नाटक के अन्त में कुलगुरू वशिष्ठ अयोध्या में आये हुये राम–सीता आदि सभी जनों को देखकर कहते हैं कि सौभाग्यवश चतुर्दश वर्षो के बाद पुनः दशरथ के परिवार को समृद्ध देख रहा हूँ। वे कहते हैं कि रावण को पराजित करने वाला कार्तवीर्य अर्जुन और उसको भी पराजित करने वाले परशुराम को बाल्यावस्था में ही जब राम ने जीत लिया था, उसी समय यह कथा पूरी हो गयी थी। बाल चरित के बाद कल्पना करके प्रक्रिया–गौरव के द्वारा वस्तुतः यह रावण–विजय की कविता संसार को सन्तोष प्रदान करने के लिये हैं।[13] इसके बाद गुरूवर वशिष्ठ राम को इस मांगलिक लग्न में राज्य सिंहासनालंकृत करने के लिये आदेशित करते हैं।[14] यहाँ पर इस कथा में राम के द्वारा सीता की प्राप्ति और राज्याभिषेक के लाभ रूपीफल का स्वामित्व प्राप्त होने से उक्त कथा इस नाटक में आधिकारिक कथावस्तु है।

कविवर जयदेव विरचित प्रसन्नराघवम् नाटक की आधिकारिक या मुख्य कथावस्तु भी रामकथा ही है। इसमें दालभ्यायन की सूचनानुसार मिथिला में जनक ने सीता–स्वयंवर आयोजित किया है। मंजीरक और नूपुरक दो स्तुति पाठक आपस में वार्तालाप करते हैं और उसी समय वहाँ रावण और बाणासुर आते हैं। उनका वाद–प्रतिवाद होता है। अनर्घराघवम् में बाणासुर की चर्चा नहीं की गई है। इधर यज्ञ–रक्षा के लिये दशरथ कौशिक मुनि विश्वामित्र को अपने दोनों पुत्रों राम–लक्ष्मण

को सौंपते हैं। राम के द्वारा ताड़का और सुबाहु मारे जाते हैं। राम और लक्ष्मण मिथिला पुरी जाते हैं। राम शिव–धनुष भंग करते हैं और सीता के साथ उनका विवाह होता है। राम–परशुराम संवाद होता है। परशुराम पराजित होकर चले जाते हैं।

इसके बाद सम्पूर्ण कथा वृतान्त नदी पात्रों गंगा-यमुना–सरयू और गोदावरी आदि से विदित होता है कि राम का वनवास हो गया है। साथ में सीता और लक्ष्मण हैं। स्वर्ण मृग के पीछे राम के चले जाने पर बाद में मारीच के करूण क्रन्दन से आश्रम से लक्ष्मण के भी चले जाने पर एकाकी सीता का रावण के द्वारा हरण होता है। जटायु मारा जाता है। तुंगभद्रा नाम की नदी से विदित होता है कि राम ने बालि का वध कर दिया है तथा सुग्रीव को राजा बना दिया है। इसके बाद सुग्रीव सीता की खोज में वानर सेना को भेजते हैं। तत्पश्चात् व्याकुल राम को ऐन्द्रजालिक के कौशल से लंका की अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष का सहारा लेकर सोती हुई सीता दिखायी देती है। व्याकुल सीता को त्रिजटा नामक राक्षसी समझाती है। वहाँ हनुमान् जी पहुँचते हैं और राम की मुद्रिका सीता को देते हैं तथा उन्हें राम का सन्देश सुनाते हैं। हनुमान् राम के लिये सीता से सन्देश लेते हैं। तदनन्तर मेघनाद के द्वारा हनुमान् का बन्धन, उनकी पूँछ में आग लगाया जाना, उनके द्वारा लंका–दहन फिर समुद्र सन्तरण और राम के पास हनुमान् के आगमन की कथा वर्णित है। इसके बाद सेतुबन्ध अनन्तर राम–रावण युद्ध का वर्णन

है। विजयी राम सीता के साथ पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर अयोध्या आते हैं।

इस नाटक में राम के द्वारा सीता की प्राप्ति, अयोध्या में अपने स्वजनों से मिलन आदि फल की प्राप्ति नायक को होती है, इसलिये नायक राम प्रसन्न हो जाते हैं। यही प्रसन्नराघवम् नाटक का प्रतिपाद्य विषय है। यद्यपि दोनों ही नाटकों अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् की मुख्य कथावस्तु या आधिकारिक कथावस्तु एक ही है, किन्तु दोनों के वर्णन प्रसंगों और वस्तु–स्थापना में भेद है।

दशरूपक के अनुसार प्रासंगिक कथा–वस्तु दो प्रकार की होती है। प्रथम–पताका और द्वितीय–प्रकरी। जो कथा या वृत्त दूसरे अर्थात् आधिकारिक कथा के प्रयोजन के लिये होती है किन्तु प्रसंगानुसार इसका स्वयं का फल भी सिद्ध होता है, वह प्रासंगिक कथावस्तु कहलाती है। प्रासंगिक कथा वस्तु का प्रमुख ध्येय आधिकारिक कथावस्तु की फल निर्वहणता में सहायता प्रतिपादित करना है किन्तु प्रसंगतः उसका स्वयं का फल भी होता है। यथा–रामकथा में सुग्रीव की कथावस्तु है। उसका फल या प्रयोजन बालि वध तथा राज्य लाभ है एवं विभीषण की कथा का सृजन लंका के राज्य की प्राप्ति है। जो प्रासंगिक कथावस्तु अनुबन्ध सहित होती है तथा रूपक में दूर तक चलती रहती है, वह पताका कहलाती है। रामायण की कथा में सुग्रीव और विभीषण की कथा पताका है। वह दूर तक चलती है। वह मुख्य नायक के पताका चिह्न की तरह आधिकारिक कथा और नायक की पोषक होती है, किन्तु पताका का नायक भिन्न होता है। वह

पताका नायक कहा जाता है। रामायण में छोटी–छोटी कथाएँ प्रकरी हैं यथा श्रवणाशबरी वृतान्त।[15]

प्रासंगिक कथावस्तु की दृष्टि से उभय नाटक अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् नाटक की मुख्य कथा का अवगाहन–विगाहन करने के पश्चात् यह विदित होता है कि इसमें सुग्रीव वृतान्त को पताका कहा जा सकता है। सुग्रीव पताका–नायक है जो नायक की फल प्राप्ति तक उसका सहयोगी बना रहता है और साथ–साथ अपना भी फल सिद्ध करता है। पताका नायक मुख्य कथा के नायक की सहायता में सदैव तत्पर रहता है। इन दोनों ही नाटकों में प्रासंगिक कथावस्तु के द्वितीय भेद प्रकरी के उदाहरण नहीं प्राप्त होते हैं। वैसे नाट्यशास्त्र के नियमानुसार प्रासंगिक कथावस्तु के अन्तर्गत पताका और प्रकरी का प्रत्येक रूपक में होना कोई अनिवार्य धर्म नहीं है। इन दोनों ही नाटकों में विद्यमान सभी पात्रों का प्रयोजन नायक श्रीराम के प्रयोजन की सिद्धि के लिये ही है।

इतिवृत्त की दृष्टि से उभय नाटकों का साम्य और वैषम्य :

दोनों ही नाटकों अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् में मुख्य कथावस्तु श्रीरामकथा है जिसे आदि कवि प्रणीत वाल्मीकि रामायण से लिया गया है। अनर्घराघवम् की कथावस्तु का प्रारम्भ महर्षि विश्वामित्र का दशरथ के पास आगमन और अपने यज्ञ की रक्षा के लिये राम तथा लक्ष्मण को अपने साथ ले जाने की इच्छा से होता है। व्यथित होकर भी दशरथ विश्वामित्र का अनुरोध स्वीकार करते हैं।

तदनन्तर विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को लेकर आश्रम की ओर जाते हैं किन्तु प्रसन्नराघवम् की कथावस्तु का शुभारम्भ याज्ञवल्क्य के शिष्य दालभ्यायन के आगमन से होता है जो मंजीरक और नूपुरक नाम के दो स्तुति पाठकों से होता है जो सीता-स्वयंवर की सूचना अपने गुरू को देने जाता है। दोनों ही स्तुति-पाठक सीता-स्वयंवर में रावण और बाणासुर के आगमन की सूचना देते हैं। दोनों असुरों रावण और बाणासुर का वहाँ वाद-प्रतिवाद होता है।

दूसरे अंक में, विश्वामित्र दशरथ के पास अयोध्या आते हैं और अपने यज्ञ की रक्षा के लिये अपने साथ राम और लक्ष्मण को ले जाने की बात करते हैं। नाटककार जयदेव ने अपने नाटक में विष्कम्भक नामक नाटकीय अर्थोपक्षेपक के द्वारा यह सूचित किया है कि रावण का मन्त्री माल्यवान् भिक्षु रूप वाले राक्षस के द्वारा रावण की माता के लिये ताड़का के पास से ताटंक-युग्म नामक आभूषण ले आने के लिये आदेशित करता है। ताड़का के वध के पश्चात् मिथिला में राम और लक्ष्मण एक उपवन में जाते हैं जहाँ पर चण्डिका-मन्दिर है। वहाँ वे वसन्त-वैभव का वर्णन करते हैं। प्रथम बार नायक श्रीराम नायिका सीता के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर विस्मित हो जाते हैं। सीता भी नायक श्रीराम के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर बेसुध हो जाती है। प्रसन्नराघवम् का यह पुष्प-वाटिका प्रसंग और नायक-नायिका का प्रथम मिलन गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरितमानस के पुष्पवाटिका प्रसंग वर्णन के लिये प्रेरक रहा है।

अनर्घराघवम् के द्वितीय अंक और तृतीय अंक में राम विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम में आते हैं तथा उनके यज्ञ की रक्षा करते हैं। तत्पश्चात् वे ताड़का का वध करते हैं। विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ मिथिला आते हैं जहाँ सीता स्वयंवर आयोजित है। विश्वामित्र जनक से राम और लक्ष्मण का परिचय कराते हैं तथा जनक से कहते हैं कि आप शिव–धनुष दिखाइये। राम उनका भंजन कर देंगे। इसी बीच रावण का पुरोहित शौष्कल आता है। वह रावण के लिये सीता की याचना करता है किन्तु उसकी बात समाप्त करने के पहले ही राम धनुष को तोड़ देते हैं।

अनर्घराघवम् नाटक में मुरारि ने पुष्पवाटिका प्रसंग प्रस्तुत नहीं किया है। पुष्प–वाटिका उद्दीपन विभाव है जहाँ प्रथम बार नायक–नायिका का मिलन और उन दोनों के मन में सात्विक शृंगार रस का उद्रेक कविवर जयदेव ने प्रस्तुत किया है किन्तु नाटककार मुरारि ने इस ओर रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया है। अनर्घराघवम् नाटक में नायक शिव–धनुष भंजन के पश्चात् ही विवाह के अवसरोपस्थित नायिका को देखता है इसलिये मुरारि का वर्णन शुष्क और नीरस है। सीधे नायक के द्वारा शिव–धनुष भंजन करा देना और सीता–विवाह करा देना नाटकीयता की दृष्टि से सुन्दर प्रतीत नहीं होता है।

नाटककार जयदेव के द्वारा मिथिला में स्थित दुर्गा मन्दिर में अपनी सखियों के साथ सीता देवी–पूजन हेतु आती है। उधर श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण

के साथ उस उपवन में आते हैं। वहाँ नायक और नायिका लता तरूओं के मध्य जब एक–दूसरे को टकटकी लगाकर देखते हैं तो वहाँ न केवल नायक और नायिका के मन में अपितु दर्शकों के मन में भी शृंगार रस की निष्पत्ति होती है। दर्शकों के मन में कौतुकता की सृष्टि और कौतूहल की दृष्टि होती है। नाटक रसाश्रित होते हैं इसलिये नाटककार को ऐसे प्रसंगों का वर्णन करना चाहिये जिससे वातावरण रसमय हो जाए किन्तु नाटककार मुरारि ने इन बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। वे अपने पाण्डित्य–प्रदर्शन में उलझ से गये हैं।

अनर्घराघवम् के चतुर्थ अंक में राम और परशुराम संवाद होता है। राम के द्वारा वैष्णव धनुष का शर–संधान कर लेने के पश्चात् परशुराम नतमस्तक हो जाते हैं और वहाँ से चले जाते हैं। इसी समय मिथिला में सीता–विवाहोत्सव और परशुराम-विजयोत्सव साथ–साथ मनाया जा रहा है कि उसी समय कैकेयी अपनी दासी के द्वारा पत्र भेजकर अपने वरदानों में राम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक माँग बैठती है। सभी लोग बहुत दुखी होते हैं। परम पितृभक्त राम सीता तथा लक्ष्मण के साथ वहीं से वन चले जाते हैं।

नाटककार मुरारि के द्वारा राम–सीता के विवाहोत्सव के तुरन्त बाद कैकेयी के द्वारा मिथिला में ही राम और सीता के वनवास तथा भरत के राज्याभिषेक की बात उठाना उचित प्रतीत नहीं होता है। अभी–अभी तो सीता का विवाह हुआ है। वह अपनी ससुराल अयोध्या तक नहीं आ पायी है कि वहीं से नायक राम का

वनवास हो जाना अनौचित्य प्रवर्तक है। कविवर मुरारि को कैकेयी के द्वारा वनवास की वार्ता सीता और राम के अयोध्या आ जाने पर ही उठानी चाहिये थी। मिथिला में ही इस बात को उठाकर कवि ने औचित्य की सीमाओं का उल्लंघन कर दिया है।

दूसरी ओर प्रसन्नराघवम् के प्रणेता नाटककार जयदेव ने औचित्य का सर्वथा परिपालन किया है। सीता-स्वयंवर में अनेक राजा उपस्थित हैं। किसी में शिवधनुष उठाने की सामर्थ्य नहीं है। विश्वामित्र की आज्ञा पाकर श्रीराम शिव–धनुष का भंजन करते हैं। तदनन्तर सीता का राम से विवाह होता है तथा विश्वामित्र और जनक की इच्छानुसार माण्डवी से भरत का, उर्मिला से लक्ष्मण का और श्रुतकीर्ति से शत्रुघ्न का विवाह सम्पन्न होता है। इसके पश्चात् राम–परशुराम संवाद होता है। परशुराम श्रीराम को विष्णु का अवतारी समझकर नतमस्तक होते हैं और वहाँ से चले जाते हैं। इसके बाद वे सब अयोध्या लौटते हैं।

प्रस्तुत नाटक में सीता–राम विवाह के साथ भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का भी विवाह प्रदर्शित किया गया है, जो मुख्य कथा के अनुरूप है किन्तु कविवर मुरारि ने अनर्घराघवम् में इन भाइयों के विवाह की चर्चा नहीं की है। कविवर जयदेव ने मिथिला में कैकेयी के द्वारा राम–वनवास की बात नहीं उठायी है जो सर्वथा उचित है। यदि वे भी मिथिला में ही राम वनवास की बात उठा देते तो मिथिलावासी नर–नारी विश्व विदित रघुवंश की रानियों का कैसा चरित्रांकन करते

और विदाई के अवसर पर सीता और राम के वनवास की बात सुनकर कितने व्यथित नहीं होते ?

कविवर जयदेव ने पंचम अंक में, सीता–राम वनवास के दुखद वृतान्त को साक्षात् प्रकट नहीं किया है, प्रत्युत नदी पात्रों के द्वारा परस्पर वार्तालाप के माध्यम से यह बात विदित होती है कि कैकेयी ने महाराज दशरथ से दो वरदान माँगे थे। उनमें प्रथम वरदान के द्वारा श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास और द्वितीय वरदान के द्वारा भरत को राज्याभिषेक। इसके बाद आगे की कथा भी गंगा, यमुना, सरयू, तुंगभद्रा, गोदावरी और समुद्र आदि पात्रों के मध्य होने वाले संलापों से विदित होती है।

नाटककार जयदेव का उपस्थापन नाटकीयता लिये हुये है। साथ ही साथ उन्होंने रोचकता का भी ध्यान रखा है। कथानक के प्रवाह में कहीं अनौचित्य नहीं होने पाया है। अयोध्या में घटित होने वाला यह दुखद वृत्तान्त कवि के द्वारा साक्षात् उपस्थित नहीं किया गया है बल्कि नदी पात्रों के माध्यम से ही विदित होता है कि श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास हो गया है तथा उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी हैं। दुखद वृत्तान्त की साक्षात् सूचना और असाक्षात् सूचना में बहुत अन्तर है। एक में करूणा का वेग बढ़ जाता है और दूसरे में करूणा सहन योग्य हो जाती है। यवनिका में झलकने वाले सौन्दर्य की तरह करूण रस की प्रतीति होती है।

अनर्घराघवम् के पंचम और षष्ठ अंक में रावण भिक्षु का वेष बनाकर राम के आश्रम में प्रवेश करता है। उस समय राम आश्रम में नहीं थे। सीता का हरण होता है। जटायु मारा जाता है। सीताहरण की बात सुनकर राम बहुत दुखी होते हैं और वे अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये बालिवध पूर्वक सुग्रीव से मैत्री करते हैं। सुग्रीव के नेतृत्व में सम्पूर्ण वानर–सेना समुद्र में सेतु बाँधकर लंका पर आक्रमण कर देती है। युद्ध होता है जिसमें मेघनाद, कुम्भकर्ण और रावण आदि मारे जाते हैं।

कविवर मुरारि ने किष्किन्धा और लंका की घटनाओं को सपाट रूप में वर्णित किया है। पंचम अंक में जाम्बवान् और श्रवणा-वृतान्त से कथा के टूटे हुये सूत्र जुडते हैं। इसके बाद जाम्बवान् और जटायु का संवाद होता है जिससे यह विदित होता है कि जटायु अपने अग्रज सम्पाती से मिलकर पंचवटी की ओर बड़े वेग से आया है। वह जाम्बवान् से कहता है कि रावण पंचवटी की ओर बढ़ रहा है इसलिये मैं अधिक देर तक आपसे बात नहीं कर सकता हूँ। जटायु देखता है कि पंचवटी से रावण सीता का हरण करके लिये जाता है। जटायु रावण को ऐसा न करने के लिये ललकारता है।[16]

इधर राम और लक्ष्मण पंचवटी की ओर आते हैं। राम सीता को वहाँ न पाकर खिन्न हो जाते हैं। वे रावण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि– कुलगौरव में, वीरता में, बाहुशालिता में, तपस्या में, न कोई तुम्हारे समान हुआ है

और न आगे चलकर होगा। आश्चर्य है कि तुमको यह दिग्भ्रम कहाँ से हो गया ? हे रावण! तुमने जिस मार्ग से चलना प्रारम्भ किया है, यह मार्ग वीरों का नहीं हैं।[17] राम फिर आगे सिद्ध क्षेत्र वन–प्रदेश जाते हैं जहाँ जटायु और रावण का युद्ध हुआ था। यह देखकर राम दुखी होते हैं।

राम का सीता–वियोग कविवर मुरारि ने बड़ी सुन्दरता के साथ प्रकट किया है। राम कहते हैं कि–सीता के वियोग में श्वास वायु बड़े वेग से निकल रहा है, मुख सूख रहा है, स्वर भंग हो रहा है, अवयवों के श्रान्त तथा स्रस्त हो जाने से शरीर विवर्ण हो रहा है, जड़ता बढ़ रही है, आँखों से आँसू प्रवाहित हो रहे हैं, स्मरण शक्ति लुप्त हो रही है और शोक करूण रस के रूप में परिणत हो रहा है।[18]

इसके बाद गुह और लक्ष्मण के मध्य वार्तालाप होता है। तदनन्तर दुन्दुभि नाम के दैत्य का कंकाल–कूट जिसे लक्ष्मण ने अपने बाणों से खिसका दिया है। इसे देखकर बालि बहुत क्रोधित होता है और वाद–प्रतिवाद के बाद युद्ध की स्थिति पैदा हो जाती है। उधर से सुग्रीव और हनुमान् आते हैं। इसी बीच राम सप्तताल वृक्षों को छेदकर बालि का वध कर देते हैं और दूसरी ओर सुग्रीव का राज्याभिषेक हो जाता है। स्वयं राम सुग्रीव के गले में स्वर्ण कमल की माला पहनाते हैं। इस प्रकार बालिवध पूर्वक राम और सुग्रीव की मैत्री होती है।

अनर्घराघवम् के उक्त वर्णनों में नाटकीयता उतनी नहीं दिखायी देती है जितनी कि एक सफल नाटक के लिये अपेक्षित होती है। सपाट वर्णनों से श्रव्य

–काव्य के गुण प्रदर्शित होते हैं। कविवर मुरारि अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने में प्रखर हैं, किन्तु नाटकीय गुणों के प्रति उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया है।

नाटक के षष्ठ अंक में माल्यवान्, सारण, शुक, रत्नचूड, हेमागंद आदि के द्वारा राम–रावण युद्ध की सूचना प्राप्त होती है जिसके अनुसार राम के द्वारा रावण मारा जाता है। मुरारि ने यहाँ भी अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। बड़े–बड़े स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित छन्दों की भरमार की है जिससे नाटकीय गुण लुप्त से हो गये हैं । मुरारि अपने पाण्डित्य प्रदर्शन की तीव्रता में यह भूल जाते हैं कि वे नाटक की रचना कर रहे हैं जिसका दर्शकों और सामाजिकों के समक्ष मंचन भी किया जायेगा।

नाटक के सप्तम अंक में, नेपथ्य से यह बात सूचित होती है कि सीता की अग्नि–परीक्षा हो गयी है। सीता की शुद्धता भी प्रमाणित हो गयी है और उसके कलंक की बात कल्याण मात्र ही थी। राम सुग्रीव, विभीषण, लक्ष्मण और सीता आदि के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। राम सीता को युद्ध–स्थल के दृश्य दिखाते हैं। वे सीता से नागपाश बन्धन, पक्षिराज गरूड़ द्वारा उसे काटा जाना, लक्ष्मण के द्वारा शक्ति–बाण को सहना, हनुमान् जी के द्वारा द्रोणाचल पर्वत सहित संजीवनी औषधि का लाया जाना, राक्षसराज रावण का मारा जाना आदि घटनाओं का वर्णन करते हैं।

इसके अनन्तर समुद्र वर्णन, सेतुबन्ध वर्णन, मैनाक पर्वत, पार्वती–महादेव

प्रसंग वर्णन, कैलाश पर्वत वर्णन, चन्द्रोदय वर्णन, सूर्योदय वर्णन, मरूभूमि का वर्णन, प्रदोष का वर्णन, मलयाचल वर्णन, पंचवटी वर्णन, प्रस्रवण गिरि वर्णन, गोदावरी नदी के रमणीय तटों का वर्णन, महाराष्ट्र देश के अलंकार भूत कुण्डिन नगर का वर्णन, विदर्भ देश के महत्व का वर्णन, आन्ध्र देश के भीमेश्वर महादेव का वर्णन, द्रविण देश के कांची नगर का वर्णन, अवन्ति देश की नगरी उज्जयिनी का वर्णन, महाकाल का वर्णन, करचुलि नरेश तथा मण्डल की शिरोभूषण स्वरूपा माहिष्मती नगरी का वर्णन, तदनन्तर गंगा संगिनी यमुना का वर्णन, भगवती भागीरथी का वर्णन, वाराणसी का वर्णन, काशी विश्वनाथ का वर्णन, मिथिला का वर्णन, प्रयाग का वर्णन और अन्त में अयोध्यापुरी में आगमन तथा गुरूवर वशिष्ठ तथा भरत जी के नेतृत्व में अयोध्यावासी जनों के साथ राम का अभिनन्दन आदि वर्णन प्राप्त होते हैं।

अनर्घराघवम् के इस अंक में अनेक स्थानों के बड़े-बड़े वर्णन किये गये हैं जिनमें स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित छन्दों का विशेष प्रयोग किया गया है। समास-बहुला-पदावली नाटकों की क्लिष्टता को बढ़ाने वाली है। मंचन योग्य नाटक में लम्बे-लम्बे समास, कठिन पदावली का प्रयोग रसापकर्षक होता है। यद्यपि मुरारि ने विदर्भ देश के वर्णन के प्रसंग में कहा है कि-विदर्भ देश की रीति वैदर्भी को दूर देश वर्ती कविगण भी अपनाते हैं क्योंकि वैदर्भी रीति में वाणी के परिमल को बढ़ाने वाली कैशिकी वृत्ति विद्यमान रहती है[19] किन्तु कविवर मुरारि ने

स्वयं वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण का अनुसरण नहीं किया है। वे स्वगं वैदर्भी रीति के प्रशंसक हैं लेकिन अपने नाटक में वे उसका परिपालन नहीं कर सके हैं। यही कारण है कि यह नाटक कविकुलगुरू कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की भाँति या नाटककार भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' की भाँति मंचन योग्य और लोक विख्यात नहीं हो सका है।

पाण्डित्य और कवित्व की दृष्टि से भले ही यह पठनीय हो लेकिन यह मंचन योग्य प्रतीत नहीं होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कविवर मुरारि को इस बात का संभवतः आभास था कि लोग मेरी इस कविता में गुण–दोष का निर्धारण करेंगे, इसलिये उन्होंने नाटक के अन्त में नायक श्रीराम के मुख से भरत वाक्य के रूप में यह बात कही है कि–विकसित होने वाले सूक्ति स्तबकों के रस से कविगण अनवरत धारा स्नान प्राप्त करें और शब्द ब्रह्म के रहस्य को बिना समझे लोग कवियों के गम्भीर वचन में गुण–दोष का निर्धारण न किया करें।[20]

प्रसन्नराघवम् नाटक में कविवर जयदेव ने षष्ठ अंक में नाटकीयता का परिचय दिया है। यहाँ चम्पकापीड और रत्नशेखर पथिकों की परस्पर वार्ता होती है जिसके अनुसार चम्पकापीड के अनुरोध पर रत्नशेखर अपनी इन्द्रजाल कला का प्रदर्शन करता है। लक्ष्मण राम से उसके ऐन्द्रजालिक कौशल को देखने का निवेदन करते है। ऐन्द्रजालिक के कौशल से लंका में अशोक–वाटिका के अन्दर अशोक वृक्ष का सहारा लेकर सोती हुई सीता दिखायी देती है। वे स्वप्न में राम को

देखकर जाग जाती हैं किन्तु दुःसह विरह के कारण मूर्च्छित हो जाती है। वहाँ उपस्थित त्रिजटा नाम की राक्षसी उन्हें आश्वासन देती है। सीता त्रिजटा से अपने स्वप्न का वृत्तान्त सुनाती है। त्रिजटा इस स्वप्न को शुभसूचक बतलाती है।

इसी समय नेपथ्य में वीर वानर हनुमान् का आगमन और रावण पुत्र अक्ष कुमार के आगमन की सूचना प्राप्त होती है। इधर रावण सीता को अपने अनुकूल करने के लिये प्रार्थना करता है किन्तु सीता उसे फटकार देती है। रावण सीता से कहता है कि–काम सन्ताप की पीड़ा से गिरते हुये आँसू के प्रवाह से प्रक्षालित एवं ललनाओं के कुच–कुम्भों में स्थित केसर के पराग की चोरी के अपराध से उज्जवल और दिग्गजों के दन्त शिखरों के विदारण के चिन्ह से प्रसिद्धि प्राप्त, वज्र तुल्य शब्द करने वाली चारो दिशाओं के साथ विश्व के विजय से युक्त यह मेरा वक्षस्थल तुमसे याचना करता है।[21]

रावण सीता की प्राप्ति हेतु अपनी महारानी मन्दोदरी का भी परित्याग करने के लिये तैयार है, किन्तु सीता राघव राम को तेजस्वी बताती है और उसे खद्योत के समान सम्बोधित करते हुये कहती है कि–क्या सूर्य के अतिरिक्त कहीं खद्योत कमलिनी को प्रफुल्लित कर सकता है ?[22] गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी यही भाव अपने महाकाव्य 'रामचरितमानस' के सुन्दर काण्ड में रूपान्तरित किया है।[23] इस पर रावण क्रुद्ध होकर सीता का वध करने के लिये तलवार निकाल लेता है। सीता-वध की सम्भावना से श्रीराम आकुल और व्याकुल हो जाते हैं तब लक्ष्मण

उन्हें समझाते हैं कि यह यथार्थ नहीं है प्रत्युत यह ऐन्द्रजालिक–कला का कौशल है। रावण सीता का रूधिर ग्रहण करने के लिये एक कपाल पात्र की इच्छा करता है। तब उसके हाथ में हनुमान् के द्वारा निक्षिप्त अक्षकुमार का मस्तक आ जाता है जिससे वह कुछ समय के लिये मूर्च्छित हो जाता है। तत्पश्चात् चेतना आने पर वह हनुमान् को मारने के लिये वहाँ से निकल पड़ता है।

ऐन्द्रजालिक कला के इस प्रदर्शन से राम और लक्ष्मण बहुत हर्षित होते हैं। इधर सीता राम विरह के असह्य होने से अग्नि में प्रवेश करने के लिये त्रिजटा से अग्नि कण लाने के लिये कहती है। इसके बाद अशोक वृक्ष के अग्रभाग से अग्निकण के सदृश एक वस्तु गिरती है। सीता जब उसे ग्रहण करती है तो उसे राम की रत्न जड़ित अँगूठी समझती है। उसी समय हनुमान् उनके सामने प्रकट हो जाते हैं और वे सीता से लक्ष्मण के साथ राम का कुशल, सुग्रीव के साथ उनकी मैत्री, बालि–वध, सीता के विरह से राम की अतिशय कृशता इत्यादि बातें बताते हैं। सीता भी राम के लिये प्रत्यसंदेश और अभिज्ञान के लिये चूड़ारत्न देती है। हनुमान् वहाँ से विदा लेते हैं। इसके बाद इन्द्रजित् मेघनाद के द्वारा हनुमान् का बन्धन, उनकी पूँछ में आग लगाया जाना, उनके द्वारा लंका–दहन, तत्पश्चात् समुद्र सन्तरण सुनकर और उन्हें देखकर सभी हर्षित होते हैं। हनुमान् के साथ सभी वानर मधुवन में प्रवेश करते हैं। सभी लोग हनुमान् की अगवानी के लिये जाते हैं।

नाटक के सप्तम अंक में पुलत्स्यशिष्य और लंकेश्वर के महामन्त्री

माल्यवान् के परिचारक करालक से बात होती है। करालक पुलत्स्य के शिष्य से बताता है कि विभीषण ने रावण को समझाया है कि कल्याण चाहने वाले लोग परनारी का मस्तक नहीं देखते हैं[24] किन्तु इस पर रावण विभीषण का उपहास करता है और उसके वक्ष–स्थल पर पाद–प्रहार करता है। करालक सीता विरह सै व्याकुल रावण का मनोरंजन करने के लिये सीता का एक चित्र प्रेषित करता है। वह उस चित्र में उत्ताल तरंगों से युक्त समुद्र भी देखता है। वहाँ सुग्रीव से रक्षित बन्दरों का समूह भी दिखायी देता है। धनुर्धारी राम और लक्ष्मण के भी चित्र हैं। राम का आश्रय लेने वाले विभीषण का भी चित्र है। उसमें कुछ अक्षर पंक्तियाँ लिखी हुई हैं जिन्हें प्रहस्त रावण के समक्ष बाँचता है। उसमें सेतु बन्ध भी दिखायी देता है। वानर लोग कोलाहल कर रहे हैं लेकिन रावण वानरों के कोलाहल को अपने मनोरंजन का साधन बतलाता है। इसी बीच महारानी मन्दोदरी का प्रवेश होता है और वह अपने स्वप्न की चर्चा करती हुई कहती है कि–दशरथ पुत्र श्रीराम त्रिकूट पर्वत से दुर्गम इस भूमि को प्राप्त हो गये हैं। राक्षसों और वानरों का युद्ध होता है। रावण विभीषण पर शक्तिबाण का प्रयोग करता है जो लक्ष्मण को लग जाती है। राम बहुत दुखी होते हैं।

मन्दोदरी रावण के समीप अधोमुखी होकर बैठी है। रावण उसके विषाद का कारण पूँछता है। मन्दोदरी शत्रु से उत्पन्न भय को ही इसका कारण बतलाती है। रावण निश्चिन्त रहने की बात कहता है। रावण कुम्भकर्ण को जगाकर राम से

और मेघनाद को लक्ष्मण से लड़ने की आज्ञा देता है। उधर हनुमान् औषधियों से युक्त गन्धमादन पर्वत ले आते हैं। औषधि को सूँघने मात्र से लक्ष्मण की मूर्च्छा समाप्त हो जाती है। इधर राम-रावण युद्ध में विद्याधर रावण के वध की सूचना देता है। राम और सीता का मिलन होता है। हनुमान् यह समाचार देने अयोध्या जाते हैं। राम, सीता और लक्ष्मण, विभीषण सुग्रीव आदि सभी लोग पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर समुद्र, दण्डकारण्य, नर्मदा और यमुना का अतिक्रमण कर चित्रकूट पहुँचते हैं। इसके पश्चात् यमुना, गंगा प्राप्त होती हैं। राम सूर्योदय का वर्णन करते हैं। पुष्पक विमान अयोध्या पहुँचता है। उससे उतरकर कुलगुरू वशिष्ठ, भरत आदि बन्धुजनों और सभी अयोध्या वासियों से मंगल–मिलन होता है। अन्त में, भरत वाक्य से यह नाटक समाप्त होता है।

भरत वाक्य में यह कहा गया है कि–बालक से लेकर सब लोगों के मुख कमल में शास्त्रों का सम्वर्द्धन हो। भगवान् विष्णु और भगवान शंकर में अभेद बुद्धि क्रीड़ा करती रहे। सरस्वती के साथ द्रोह का परित्याग कर लक्ष्मी उसी तरह सज्जनों के भवनों में शोभित रहे जैसे पृथ्वी शेषनाग के फणांचलों में रहती है।[25] इसके पश्चात् यह कहा गया है कि– विकसित नव मल्लिका पुष्पों से विरचित मालाओं के समान सज्जनों की वाणियाँ अनन्त विलास से मनोरम हो जायें। निपुण बुद्धि से सम्पन्न जन जिन वाणियों को कण्ठ में रखकर भी हर्ष से इतना अधिक रोमांचित हो जाते हैं कि वे फिर प्रियतमा के गाढालिंग को भी तृण तुल्य समझते हैं।[26]

प्रसन्नराघवम् नाटक का कथा संयोजन कौतूहल पूर्ण है। इसके संवाद छोटे-छोटे और प्रसादगुण युक्त हैं। यद्यपि कविवर जयदेव ने भी शार्दूल विक्रीडित और स्रग्धरा जैसे बड़े छन्दों का प्रयोग किया है जिससे इस नाटक की भी मंचन योग्यता समाप्त सी हो गयी है लेकिन अनर्घराघवम् की तुलना में इसमें नाटकीयता है और नाटकीय विशेषताओं से यह नाटक संवलित है। इस नाटक के घटनाचक्र प्रभावोत्पादक, सरस, सरल और मर्मस्पर्शी हैं। अनर्घराघवम् की अपेक्षा इसमें अधिक कठिनता नहीं है। ऐन्द्रजालिक के प्रयोग से लंका का सम्पूर्ण घटनाचक्र हमें दिखायी देता है। इसमें रावण के समक्ष चित्रदर्शन भी बडे महत्व का है जिसमें होने वाले युद्ध का चित्रावलोकन हो जाता है।

यह चित्रदर्शन उत्तररामचरितम् नाटक के चित्रदर्शन से प्रभावित है। यद्यपि नाटककार जयदेव ने उत्तरामचरितम् नाटक की शैली का अनुसरण करने का प्रयास किया है लेकिन भवभूति की हृदयस्पर्शी और मार्मिक शैली का अनुकरण नहीं कर पाये हैं। उत्तररामचरितम् में रस-निष्पत्ति अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई है जिसमें न केवल पत्थर अपितु वज्र का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है। वैसी रस-निष्पत्ति इसमें दृष्टिगोचर नहीं होती है। फिर भी प्रसन्नराघवम् नाटक अनर्घराघवम् नाटक की तुलना में एक सफल नाटक कहा जा सकता है।

इस नाटक ने परवर्ती साहित्यकारों को अत्यधिक प्रभावित किया है। कविराज विश्वनाथ ने अपनेप्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'साहित्य-दर्पण' में अर्थान्तर

संक्रमित वाच्य ध्वनि का उदाहरण इसी प्रसन्नराघवम् नाटक से ही अवतरित किया है।[27] इसी प्रकार शार्गधर पद्धति में भी प्रसन्नराघवम् नाटक के अनेक पद्यों का उदाहरण दिया गया है। इसी प्रकार अनेक कवियों ने रामकथा प्रधान काव्यों के लेखन में इस नाटक से प्रेरणा ग्रहण की है। हिन्दी साहित्य के सन्त कवि तुलसीदास ने अपने महाकाव्य रामचरितमानस की रचना में प्रसन्नराघवम् नाटक से अत्यधिक प्रेरणा ग्रहण की है। कहीं–कहीं पर तो उन्होंने अक्षरशः नाटक के श्लोकों का भावानुवाद ही कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रसन्नराघवम् नाटक को अपने सामने रखकर ही रामचरित मानस महाकाव्य की रचना की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संवाद–योजना, संवाद–सौष्ठव, सरस कोमलकान्त पदावली, मधुर भाव व्यंजना, अपार कल्पनाशीलता और भाव प्रवणता की दृष्टि से प्रसन्नराघवम् नाटक अनर्घराघवम् नाटक से श्रेष्ठतर है। यद्यपि दोनों ही नाटकों में कवित्व का भरपूर प्रयोग किया गया है किन्तु मुरारि के द्वारा पाण्डित्य का प्रखर प्रदर्शन करने के कारण उनकी कृति अनर्घराघवम् एक सफल दृश्य काव्य का उदाहरण नहीं बन सकी है। बड़े–बड़े स्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग इस नाटक को श्रव्य काव्य के समीपवर्ती होने का संकेत देता है।

यद्यपि प्रसन्नराघवम् में भी बड़े–बड़े छन्दों स्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग हुआ है किन्तु अनर्घराघवम् की तुलना में किंचित् न्यून है। प्रसन्नराघवम्

नाटक में अनेक स्थलों पर संवाद छोटे–छोटे और साधारण जनों के भी समझने योग्य हैं। ऐन्द्रजालिक द्वारा चित्र–दर्शन में लंका की सम्पूर्ण घटनाओं का प्रदर्शन, नदी पात्रों द्वारा अयोध्या में घटित दुःखद घटनाओं का संसूचन नाटकीयता लिये हुये है। इसलिये अनर्घराघवम् की अपेक्षा प्रसन्नराघवम् को सफल नाटक कहा जा सकता है। यद्यपि यह भी अपने यथारूप में अभिज्ञान शाकुन्तलम् और स्वप्नवासवदत्तम् जैसे नाटकों के समान मंचन योग्य नहीं है।

नाटकीय इतिवृत्त का विभाजन :

दशरूपक के अनुसार रूपक के इतिवृत्त को निम्नांकित पंच अर्थ प्रकृतियों, पंच अवस्थाओं और पंच सन्धियों में विभक्त किया जाता है जो निम्नवत् हैं–

अर्थ प्रकृतियाँ	अवस्थायें	सन्धियाँ
1– बीज	आरम्भ	मुख
2– बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
3– पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ
4– प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
5– कार्य	फलागम	उपसंहृति

अर्थप्रकृतियाँ, नाटकीय इतिवृत्त के पंच तत्व माने जाते हैं।[28] सम्पूर्ण नाटकीय इतिवृत्त उपर्युक्त नाटकीय पंच तत्वों में विभाजित किया जाता है। बीज

वृक्ष के बीज की भाँति वह तत्व होता है, जो अंकुरित होकर नायक के कार्य या फल की ओर बढ़ता है। बिन्दु वह स्थिति है, जब बीज पानी में गिरे हुये तैल की बूँद की भाँति फैल जाता है। इस दशा में इतिवृत्त का बीज फैलकर व्यक्त होने लगता है। पताका और प्रकरी का सभी नाटकों में प्रयोग अनिवार्य नहीं माना जाता है।[29] इसलिये कतिपय नाटकों में पताका और प्रकरी प्राप्त नहीं होते हैं किन्तु इन दोनों नाटकों अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् में सुग्रीव और विभीषण की कथा पताका के रूप में मानी जाती है। इन दोनों ही नाटकों में प्रकरी का कोई उदाहरण प्राप्त नहीं होता है।

आरम्भ से फलागम तक पंचावस्थाएँ इतिवृत्त की गति को सूचित करती हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि मानव का जीवन एक सीधी रेखा की तरह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचता है। वह टेढ़ा–मेढ़ा होता हुआ अपने उद्देश्य तक यथा कथंचित् पहुँच पाता है। मानव का जीवन संघर्ष से भरा हुआ है। संघर्ष ही उसे गति देते हैं। वह संघर्ष की चट्टानों को तोड़ता हुआ, उन पर विजय प्राप्त करता हुआ आशा और उल्लास के साथ आगे बढ़ता है। हम भारतीयों को इस बात पर विश्वास रखना चाहिये कि जीवन के संघर्षों और विघ्नों पर अवश्य विजय प्राप्त होगी।

भारतीय संस्कृति का भी यही विश्वास है कि जीवन के संघर्षों और विघ्नों पर एक न एक दिन विजय अवश्य ही प्राप्त होगी, इसमें रंचमात्र भी संदेह

नहीं है। भारत के निवासी 'फलागम' में विश्वास रखते हैं। मानव—जीवन का लक्ष्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इत्यादि चतुर्वर्ग फल प्राप्ति है। भारतीयों की धारणा कभी पाश्चात्य नाटककारों की तरह निराशावादी नहीं रही है, इसलिये यहाँ के नाटक प्रायः सुखान्त होते हैं।[30] इसी कारण अध्ययनविषयीभूत उभय नाटक अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् सुखान्त हैं। यद्यपि इन दोनों नाटकों के अभ्यन्तर में सुख और दुख की कथा भी विद्यमान है किन्तु इनका अन्त सुखान्त है।

नाटकीय कथावस्तु की प्रथम अवस्था 'आरम्भ' है। इस अवस्था के अन्तर्गत नायक में किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा होती है। यह दूसरी बात है कि उसका प्रकाशन कोई दूसरा पात्र करे। दूसरी अवस्था 'प्रयत्न' है। इस अवस्था में नायक उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील होता है। तीसरी अवस्था 'प्राप्त्याशा' में विघ्न-बाधा इत्यादि को पार कर लेने के पश्चात् नायक को लक्ष्य की प्राप्ति की सम्भावना हो जाती है। चौथी अवस्था 'नियताप्ति' में सफलता का पूरा विश्वास हो जाता है और पाँचवी अवस्था 'फलागम' में वह फलागम तक पहुँच जाता है। उदाहरण के लिये—अनर्घराघवम् नाटक में जब श्रीराम विश्वामित्र के साथ उनकी यज्ञ रक्षा के लिये जाते हैं और वहाँ से मिथिला जाते हैं तब वह सीता—स्वयंवर में शिवधनुष भेदन हेतु विश्वामित्र के जनक के प्रति प्रस्ताव का मन ही मन अनुमोदन करते हैं। वे कहते हैं कि—मैं क्यों व्यर्थ के तर्कों से अपने को भुलाता रहूँ ? यह भगवान् विश्वामित्र स्वयं मेरे कौतुक के लिये शिवधनुष की अभ्यर्थना कर

रहे हैं।

श्रीराम जनक की मनोदशा को देखकर विचार पूर्वक कहते हैं कि–इस समय जनक के मन में यह बात आ रही है कि क्या बालक के द्वारा इस कार्य का किया जाना सम्भावित है और यह महर्षि विश्वास पूर्वक कह रहे हैं कि राम शिवधनुष का भंजन कर देंगे। निश्चय ही राजा जनक यही बात सोंच रहे होंगे। यह इस सम्बन्ध में क्या उत्तर देते हैं ? यह जानने के लिये मैं आकुल और व्याकुल हो रहा हूँ। नायक राम की शिवधनुष भंजन के लिये आकुलता और व्याकुलता आरम्भ है जिससे नायक की सीता प्राप्ति की इच्छा का संकेत मिलता है।[31]

राम के द्वारा शिव–धनुष भंजन की मन ही मन उत्सुकता होना और उस लक्ष्य के लिये प्रयत्नशील होना दूसरी अवस्था है जिसे यत्न कहते हैं। उस सीता स्वयंवर में रावण का पुरोहित शौष्कल भी आ जाता है। वह वीरवर रावण के लिये सीता की याचना करता है। इस तीसरी अवस्था प्राप्त्याशा में यह विघ्नबाधा उपस्थित हो जाती है। रावण पुरोहित शौष्कल जनक से कहता है कि–तुम्हें यह कन्या निश्चय ही किसी को दान करनी है फिर इसे जब अपने भुज पराक्रमों से त्रिभुवन को जीत लेने वाले वीरवर रावण ही सीता को तुमसे माँग रहे हैं तब आप किंकर्त्तव्यविमूढ़ क्यों हो रहे हैं ? तुम्हें अवश्य रावण के लिये अपनी कन्या सीता का दान कर देना चाहिये।[32] नायक की प्रात्याशा में यह महान् विघ्न उपस्थित हो गया किन्तु शतानन्द यह कहकर इस विघ्न को टाल देते हैं कि महादेव के इस

धनुष को आरोपित करके जो हमें आनन्दित करेगा, पूर्ण पात्र स्वरूप यह मैथिली उसी की दक्षिणा बनेगी।[33]

नाटकीय कथावस्तु की चौथी अवस्था नियताप्ति है। इसमें नायक को सफलता का पूरा विश्वास हो जाता है। उदाहरण के लिये–अनर्घराघवम् नाटक में विश्वामित्र रामभद्र से यह कहते हैं कि–जनकवंश के पुरोहित शतानन्द तुम्हें धनुर्गृह में जाने की आज्ञा दे रहे हैं। इस पर राम कहते हैं कि गुरूजनों की जैसी आज्ञा। वे विनय, लज्जा और कौतुक से लक्ष्मण के साथ धनुर्गृह जाते हैं।[34] यहाँ पर नायक राम को सफलता का पूरा विश्वास हो जाता है।

पाँचवी अवस्था फलागम है। राम जब धनुष का भंजन कर देते हैं तो जनक बड़े हर्ष के साथ विश्वामित्र के चरणों में निवेदन करते हैं और कहते हैं कि धनुषभंग के साथ राम ने सीता को अपने गुणों से खरीद लिया है।[35] इस प्रकार नायक को सीताप्राप्ति रूप फलागम होता है। नायक–नायिका का मिलन ही फलागम है। इसी प्रकार अवस्था के क्रम से नाटक में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहृति इत्यादि पंच सन्धियों का विभाजन किया जा सकता है।

इसी प्रकार प्रसन्नराघवम् नाटक में भी पंच अर्थ प्रकृतियाँ, पंचावस्थायें और पंचनाट्य-सन्धियाँ प्राप्त होती हैं। राम विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के लिये लक्ष्मण जी के साथ आश्रम आये हुये हैं। वहाँ से वे मिथिला पुरी में आयोजित सीता स्वयंवर में भी पधारे हुये हैं। जनक की यह प्रतिज्ञा है कि– जो शिव धनुष का

भंजन करेगा, उसी के साथ सीता का विवाह सम्पन्न होगा। इस कार्य हेतु द्वीप–द्वीपान्तरों से राजा लोग आये हुये हैं। रावण, बाणासुर भी वहाँ अपने बल पराक्रम का प्रदर्शन करने हेतु आये हैं।

श्रीराम लक्ष्मण के साथ जनक के उपवन में जाते हैं। वहाँ वसन्त ऋतु की सुन्दर शोभा उन्हें आकर्षित करती है। वहाँ एक चण्डिका मन्दिर है। उसे वे प्रणाम करते हैं। उधर से दुर्गापूजन हेतु राजकुमारी सीता अपनी सखियों के साथ प्रवेश करती है। राम सीता के सौन्दर्य को देखकर बड़े हर्ष और कौतुक के साथ कहते हैं कि–श्याम निकषोपल पर खचित सुवर्ण रेखा के सदृश, स्वर्णिम कदली के समान पीतवर्ण और हरिद्रा के रस के सदृश कान्ति समूह को धारण करती हुई, काम क्रीडा के भवन की अट्टालिका में दीपिका के सामन यह कौन सुन्दरी आ रही है ?[36]

सखियाँ राजकुमारी सीता से कहती हैं कि–यह दुर्गा मन्दिर है। अब दुर्गा पूजन कर लीजिये। सीता दोनों हाथ जोड़कर दुर्गा देवी से प्रार्थना करती है कि–हे महादेव की अर्धांगिनी ! त्रिभुवन रूप में निवास करने वाली आपको नमस्कार है। इस पर सखी अंजलि बाँधकर दुर्गा जी से निवेदन करती है कि हे चन्द्रकान्त मणि माला के तुल्य कोमल स्वभाव वाली ! हे चन्द्रशेखर की अंकशायिनी देवी ! चारूचन्द्र के समान रूचिर यह सीता शीघ्र ही इन्दु मुख सुन्दर वर को प्राप्त करे।[37] राम उसी उपवन में हैं और चण्डिका मन्दिर के पास स्थित होकर सखी के द्वारा

दुर्गा जी से सुन्दर वर प्राप्ति की प्रार्थना सुनते हैं। राम बड़ी अभिलाषा के साथ उसकी इस वर प्रार्थना का समर्थन्न करते हैं। वे कहते हैं कि बाल्यावस्था के बीत जाने पर, तरूणिमा के आने पर, रसिकता उत्पन्न होने पर चन्द्रवदनी नायिका का यह शरीर कामदेव के निवास का उत्कृष्ट भवन है।[38] यहाँ पर नायक राम के द्वारा सीता को साभिप्राय देखना और उसके अलौकिक सौन्दर्य की भूरि–भूरि प्रशंसा करना आरम्भ है और बीज तथा आरम्भ को मिलाकर यह मुख सन्धि का उदाहरण है।

इस उपवन में नायक और नायिका परस्पर सौन्दर्य को देखकर एक दूसरे से अत्यधिक आकर्षित होते हैं। राम और सीता क्रमशः एक दूसरे से आकर्षित होते हुये अपने–अपने निवास स्थान चले जाते हैं। सीता भी श्रीराम से बहुत आकर्षित है। नीलकमल के समान नेत्रों वाले उस राम को वह शृंगार का रहस्य ही मानती है। सीता के वहाँ से चले जाने पर राम को खेद होता है और वे कहते हैं कि–विधाता की सृष्टियाँ मधुर और विधुर होती हैं। नायक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये मन ही मन चेष्टाशील है। श्रीराम सीता की प्राप्ति के लिये अपने मन में प्रयत्न का भाव रखते हैं। यहाँ पर बिन्दु और यत्न को सम्मिलित कर प्रतिमुख सन्धि प्रतीत होती है।

राम सीता स्वयंवर में पहुँचते हैं जहाँ अनेक राजागण पहले से ही बैठे हुये हैं। कोई भी राजा धनुष को उठाने में समर्थ नहीं हैं। राम शिवधनुष के भंजन

की इच्छा रखते हैं। इतने में प्रतिहारी सूचना देता है कि परशुराम के शिष्य आये हुये हैं। साथ में परशुराम का सन्देश लाये हैं। परशुराम के शिष्य जनक से कहते हैं कि—इसी राजकुमार को अपनी कन्या का दान कीजिये और दीर्घायुष्य प्राप्त कीजिये। शिवधनुष के कर्षण रूप हमारे अप्रिय पाप से हट जाइये नहीं तो आपके पाप रूप मसिपंक को क्षालित करने में हमारे विस्तीर्ण परशु की धार के जल प्रवाह में आपको अवगाहन करना पड़ेगा।[39] यह प्राप्त्याशा में विघ्न—बाधा उपस्थित हो जाती है किन्तु इस विघ्नबाधा का परित्याग जनक के इस निवेदन से हो जाता है कि—हे जामदग्न्य परशो ! तुम मेरे मित्र हो जिससे मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि मैं अभी—अभी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार इस कन्या का दान कर रहा हूँ। इसलिये यहाँ स्वयं आकर शिव—धनुष को धारण करने में समर्थ जामाता के आगे तुम चिरकाल पर्यन्त धाराजल का परित्याग कर देना।[40]

इसके पश्चात् गुरूवर विश्वामित्र राम को शिव—धनुष भंजन करने के लिये आदेशित करते हैं। राम जाते हैं और अनायास ही शिवधनुष का भंजन कर देते हैं। सभी लोग यह सब बड़े कौतुक से देखते हैं। विश्वामित्र कहते हैं कि बालक होकर भी रामचन्द्र ने इस शिव—धनुष को अनायास ही उठा लिया है जिसकी प्रत्यंचा की ध्वनि आकाश में दूर—दूर तक फैल रही है।[41] उधर राजा जनक कंचुकी को आदेश देते हैं कि वह सीता को कमल माला के साथ स्वयंवर स्थल पर लाने की व्यवस्था करे। शिवधनुष के राम के द्वारा भंजित कर दिये जाने पर जनक

की प्रतिज्ञा पूरी होती है और उनका मनोरथ भी पूर्ण होता है।[42] इसके बाद जनक विश्वामित्र से सीता और राम के पाणि-ग्रहण की अनुमति माँगते हैं। यहाँ पर नियताप्ति नाटकीय अवस्था दिखायी देती है।

यद्यपि जनक के गुरू शतानन्द कहते हैं कि तत्क्षण विघटित होने वाले शिवधनुष ने ही सीता और राम के हाथों को संगठित कर दिया है। अब केवल औपचारिकता मात्र अवशिष्ट है। यहाँ पर विमर्श नामक नाटकीय सन्धि विद्यमान है किन्तु कुछ क्षण पश्चात् वहाँ जमदग्नि पुत्र परशुराम का प्रवेश होता है जिससे यह नियताप्ति संदिग्ध प्रतीत होने लगती है।

परशुराम कहते हैं कि जनक की धृष्टता को धिक्कार है जो कि वह शिवधनुष को उठाने के बाद कन्यादान की प्रतिज्ञा करते हैं। वे बड़े क्रोध के साथ कहते हैं कि– सकल राजाओं के कठोर कण्ठ स्थानों से पर्याप्त गिरे हुये रूधिर समूह से जिसका अग्रभाग धुल गया है, परशुराम का वह प्रसिद्ध परशु इस लोक को जनक शून्य बना देगा।[43] परशुराम इतने क्रुद्ध हैं कि वे कहते हैं कि–जिसने नर्मदा के जल–प्रवाह को अपने सहस्र बाहुओं से रोक दिया था और जिसने संग्राम में रावण को भी बाँध लिया था, ऐसे कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन की वृक्ष के सदृश बाहुओं का वह समूह मेरे परशु में डूब गया था और जिस परशु की कीर्तियाँ क्षत्रिय–नारियों के अश्रुप्रवाह के बहाने विश्व–विदित हैं, विश्वप्रसिद्ध मेरा यह परशु अपनी दिव्य धारा जल का अभी प्रदर्शन करता है।[44] यहाँ पर नायक की नियताप्ति में पुनः

बाधा स्फुरित होती हुई प्रतीत होती है।

जामदग्न्य परशुराम पुनः कहते हैं कि देवता, सिद्ध और किन्नर तथा मनुष्यों से अनतिक्रमणीय तीनों पुरियाँ भाग्य के समान जिस धनु के वक्र होने पर एक ही बार में जल गयीं, महादेव के उस धनुष को बालक राम ने यदि बल से तोड़ दिया है तो यह समझना चाहिये कि मेरे शस्त्र की जलधारा में सम्पूर्ण रघुवंश ही डूब जायेगा।[45]

इसके पश्चात् जमदग्नि–पुत्र परशुराम तथा राम में परस्पर संवाद होता हैं। परशुराम राम से पूँछते हैं कि–क्या शिवधनुष सुरक्षित है ? इस पर राम उत्तर देते हैं कि नहीं। हे भगवन्! मैने शिवधनुष का स्पर्श किया है अथवा नहीं किया है, यह तो अपने आप ही टूट गया क्या कहूँ ?[46] किन्तु राम का यह उत्तर सुनकर परशुराम अति क्रुद्ध होते हैं और अपने तीक्ष्ण धार वाले कुठार को उठा लेते हैं। यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि नायक के द्वारा नायिका की प्राप्त्याशा बहुविघ्नों से भरी हुई है। अति क्रुद्ध परशुराम से महान् विघ्न आता हुआ प्रतीत होता है। श्रीराम बड़ी विनम्रता के साथ परशुराम से कहते हैं कि–या तो मुक्ताहार अथवा तीक्ष्णधार वाला आपका कुठार कण्ठ में प्रवेश करें, नारियों के नेत्रों में कज्जल रहे अथवा जल (अश्रु) रहे, हम लोग इस लोक में अधिक कालिक स्थायी आनन्द का उपभोग करें या यमराज का मुख देखें, जो होना हो, वह हो परन्तु हम लोग ब्राह्मणों में शौर्य का प्रदर्शन नहीं करते हैं।[47]

राम की इस विनम्रता से प्राप्त्याशा नियताप्ति की ओर बढ़ने लगती हैं। वे मुनि भार्गव से प्रार्थना करते हैं कि–आप पवित्र गोत्र वाले हैं और यह अमंगल परशु आपके हाथ में शोभा नहीं देता है। आपका वंश शील आदि उन्नत गुणों के लिये प्रसिद्ध है किन्तु यह धनुष शोभा नहीं देता है। आप कुशों और पल्लवों से विलसित पर्णशाला के निवासी हैं, फिर भयंकर युद्ध में कठोर बाण वर्षा आपको शोभा नहीं देती है।[48] राम इसके आगे परशुराम से कहते हैं कि–हे भार्गव वंश भूषण! आप प्रसन्न हो जाइये, क्रोध से विरत हो जाइये और चित्त में मेरी बात को धारण कीजिये। आपने चिर काल तक अनेक प्रयत्नों से जो अपने चरित्र और यश को सुरक्षित रखा है, उसे जुआंड़ी की भाँति एक ही बार में धन की तरह विनष्ट मत कीजिये।[49]

जमदग्नि पुत्र परशुराम विष्णु के धनुष को राम के द्वारा आकृष्ट किये जाने का निवेदन करते हैं। राम तत्काल उस वैष्णव धनुष का सन्धान कर देते हैं, जिससे परशुराम को यह विदित हो जाता है कि यह राम साक्षात् विष्णु के अवतार हैं और इस धरा का भार हरण करने के लिये ही उन्होंने श्रीराम के रूप में अवतार ग्रहण किया है। वे विष्णु के साक्षात् अवतारी श्रीराम को प्रणाम करके तपस्या हेतु वनगमन करते हैं। इस प्रकार परशुराम के प्रणत हो जाने पर तथा क्रोध शान्त कर वहाँ से चले जाने पर एक बार पुनः नायक श्रीराम के द्वारा नायिका की नियताप्ति प्रकट हो जाती है।

नायक श्रीराम नायिका सीता के साथ अयोध्या गमन करते हैं। नायक को नियताप्ति के बाद फलागम का लाभ होता है किन्तु यह फलागम भी विघ्नों से भरा हुआ है। अयोध्या में कैकेयी राजा दशरथ से दो वरदान माँगती है जिसमें प्रथम वरदान यह है कि कौशल्यापुत्र श्रीराम वन–गमन करें और द्वितीय में भरत युवराज पद पर आसीन हों। व्याकुल मति पिता के चरणों में प्रणाम करके मुदित हृदय श्रीराम वन चले जाते हैं।[50] साथ में सीता और लक्ष्मण जी भी वन जाते हैं। वन में राम के द्वारा सुवर्ण मृग का अनुसरण करने पर और लक्ष्मण के भी उनका अनुसरण करने पर भिक्षुवेष धारी रावण के द्वारा सीता का हरण हो जाता है। इस प्रकार फलागम पुनः विघ्नों के द्वारा विशीर्ण हो जाता है। सीता हे राम! हे रमण! हे संसार के एक मात्र वीर! हे नाथ! हे रघुपते! आप मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ? इस प्रकार बार–बार विलाप करती हुई, रावण के द्वारा बलात् आकाशमार्ग से ले जायी जाती है।[51]

इस प्रकार नियताप्ति और फलागम में पुनः महान् विघ्न उपस्थित हो जाता है और सीता के वियोग से फलागम छिन्न–भिन्न हो जाता है। नायक नियताप्ति हेतु सीता–प्राप्ति के लिये पुनः प्रयत्न करता है। मार्ग में हनुमान् से मिलन होता है। सुग्रीव से मैत्री होती है। हनुमान् सीता की खोज में जाते हैं। वे सीता को राम नामांकित मुद्रिका देते हैं और वापस आकर नायक से सीता खोज का सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाते हैं। कपि सेना के साथ राम लंका जाते हैं। वहाँ रावण

से युद्ध होता है। राम के द्वारा रावण मारा जाता है। अन्त में, पुनः सीता के मिलन से राम को फलागम होता है। राम, सीता–लक्ष्मण आदि अनेक लोगों के साथ पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर अयोध्या आते हैं।

राम ने अपने इस लोकव्यापी चरित्र के द्वारा अनेक वस्तुयें प्राप्त की हैं। इन्होंने पिता की आज्ञापालन का यश प्राप्त किया है, गुणों का अतिशय उत्कर्ष प्राप्त किया है, सुग्रीव और विभीषण को अपने–अपने देश का राजा बनाया है, देवशत्रु रावण को युद्ध में कीर्तिशेष कर दिया है और भरतादि बन्धुओं का साक्षात्कार भी प्राप्त किया है।[52] इस प्रकार राम को फलागम की प्राप्ति होती है जो विविध प्रकार की है। प्रथम फलागम तो नायिका की प्राप्ति मुख्य है। इसके अतिरिक्त नायक को उपर्युक्त अनेक आनुषंगिक फलागम भी प्राप्त होते हैं। यहाँ प्रसन्नराघवम् नाटक के अन्त में, अर्थप्रकृति कार्य और फलागम मिलकर उपसंहृति सन्धि यथारूप सम्पन्न होती है।

दोनों ही नाटकों में पंच सन्धियाँ, पंच अवस्थायें और पंच अर्थ प्रकृतियों का यथा सम्भव निर्वाह किया गया है।

उभय नाटकों में नाटकीय अर्थोपक्षेपक :

कथावस्तु के कुछ अंश सूच्य होते हैं और कुछ अंश दृश्य होते हैं। कथावस्तु के जो अंश नीरस होते हैं तथा जिनमें रस प्रवर्तन नहीं होता है, जिनका मंच पर दिखाया जाना नैतिकता आदि के योग्य नहीं होता है, वे संसूच्य या सूच्य

कहलाते हैं तथा मधुर, उदात्त, नैतिक, रस तथा भाव से निष्यंदित वस्त्वंश जिनका मंच पर दिखाया जाना नाटककार के लिये नाटक में प्रभावोत्पादकता तथा रसमयता लाने के लिये अनिवार्य होता है, उन्हें दृश्य कहा जाता है।[53]

सूच्य कथावस्तु की सूचना पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों के द्वारा दी जाती है। अर्थोपक्षेपक शब्द का अर्थ है– अर्थ अर्थात् कथावस्तु के उपक्षेपक (सूचक)। यह अर्थोपक्षेपक नाटक में पाँच प्रकार के होते हैं– विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार तथा प्रवेशक।[54]

विष्कम्भक के अन्तर्गत रूपक में घटित घटनाओं या भविष्य में होने वाली घटनाओं की सूचना दी जाती है। यह मध्यम पात्रों के द्वारा प्रयोजित होता है। यह दो प्रकार का होता है– शुद्ध विष्कम्भक और मिश्र विष्कम्भक। जब एक अथवा दो मध्यम श्रेणी के पात्रों का प्रयोग होता है तो उसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं और जब मध्यम श्रेणी तथा अधम श्रेणी के पात्रों का प्रयोग होता है तो उसे संकीर्ण विष्कम्भक कहते हैं।[55]

इसी प्रकार प्रवेशक भी विष्कम्भक की तरह अतीत और भावी कथांशों की सूचना देने वाला होता है। इसकी योजना दो अंकों के मध्य प्राप्त होती है और यह शेष अंकों का सूचक होता है।[56] इसी प्रकार कुछ नाटकों में चूलिका, अंकास्य और अंकावतार आदि अर्थोपक्षेपकों के द्वारा नाटकीय कथावस्तु की सूचना दी जाती है।

अनर्घराघवम् में नाटकीय अर्थोपक्षेपक :

अर्थोपक्षेपकों की दृष्टि से अनर्घराघवम् का अनुशीलन करने के पश्चात् विदित होता है कि अनर्घराघवम् नाटक के द्वितीय अंक में, विष्कम्भक के द्वारा शुनः शेप और पशुमेढ्र नामक दो वटुओं के मध्य होने वाले वृत्तान्त से भूतकालीन और भविष्यत् कालीन घटनाओं की सूचना प्राप्त होती है। पशुमेढ्र शुनः शेप से कहता है कि–कुछ अद्‌भुत तथा भीषण बात हुई। शुनः शेप पूँछता है कि सखे पशुमेढ्र! क्या अद्‌भुत तथा भीषण बात हुई ? पशुमेढ्र कहता है कि आज राम नामक कोई क्षत्रिय कुमार आया है––––। ऐसा सुनकर मैं उत्सुकता वश दौड़ता हुआ उन्हें देखने गया, जाते ही तपोवन की सीमा पर वर्तमान पत्थर की शिला सचमुच एक नारी बनकर मेरे सामने आ खड़ी हुई। उसे देखकर मैं उत्तरीय और वल्कल को छोड़कर भाग खड़ा हुआ। वह शिला गौतम की पत्नी अहिल्या थी और जनक वंश के पुरोहित शतानन्द की माता है। इन्द्र ने उसका पातिव्रत्य खण्डित कर दिया था। तपस्वी मुनि के क्रोध से वह अपने इन्द्रिय–दौर्बल्य का फल भोग रही थी। आज रघुराज राम के प्रताप से वह प्रस्तर भाव रूप अन्धकार से मुक्त हो गयी।[57]

इसके पश्चात् इसी विष्कम्भक में ताड़का वृत्तान्त की भी सूचना दी जाती है। यह बताया जाता है कि एक हजार हाथियों के तुल्य बल वाली ताड़का के वध के लिये राम लक्ष्मण के साथ तपोवन में आये हुये हैं। इस सब कथानक की सूचना विष्कम्भक के द्वारा प्राप्त होती है। इसके पश्चात् तृतीय अंक के प्रारम्भ में भी कंचुकी और कलहंसिका की परस्पर बातचीत से राम–लक्ष्मण के मिथिलापुरी

आने और सीता आदि को दुर्गा पूजन हेतु जाने की सूचना प्राप्त होती है। यह इस नाटक का दूसरा विष्कम्भक है।[58]

इसके पश्चात् चतुर्थ अंक में, माल्यवान् और शूर्पणखा के परस्पर संलाप से मिथिला में घटित धनुष भंजन की कथा की सूचना प्राप्त होती है। यह इस नाटक का तीसरा विष्कम्भक है।[59] पंचम अंक में जटायु और जाम्बवान् के मध्य हुआ वार्तालाप भी विष्कम्भक के अन्तर्गत है जिसमें दशानन रावण के द्वारा सीता हरण की बात सूचित की गयी हैं।[60]

इसके बाद छठे अंक में भी शुक और सारण के मध्य हुआ वार्तालाप भी विष्कम्भक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इस नाटक में चार–पाँच बार विष्कम्भक नामक नाटकीय अर्थोपक्षेपक का प्रयोग किया गया है। इस नाटक में प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य और अंकावतार के उदाहरण नहीं मिलते हैं। वैसे नाट्यशास्त्र के निर्देशानुसार यह कोई आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक नाटक में सभी पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाये।

इसी प्रकार इस नाटक में जनान्तिकम्, अपवारितम् और आकाश–भाषितम् आदि नियत श्राव्य नाट्यधर्मों का प्रयोग नहीं किया गया है।

प्रसन्नराघवम् नाटक में भी नाटक की पाँच अर्थ प्रकृतियाँ, पाँच अवस्थायें और पाँच सन्धियाँ प्राप्त होती है। नाटकीय कथावस्तु की प्रथम अवस्था प्रारम्भ है। इस अवस्था के अन्तर्गत नायक में किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा होती है, यह

दूसरी बात है कि उसका प्रकाशन कोई दूसरा पात्र करे। नाटक के प्रारम्भ में कवि सूत्रधार के द्वारा रघुकुल तिलक श्रीराम की कथा के प्रति अपनी तथा पारिषदों की रूचि प्रकट करता है। नूपुरक और मंजीरक के परस्पर संलाप से यह विदित होता है कि जनक ने मिथिला पुरी में सीता स्वयंवर के लिये एक बड़ा महोत्सव आयोजित किया है जिसमें उन्होंने यह प्रतिज्ञा की है कि जो व्यक्ति शिव धनुष का भंजन करेगा उसी के साथ सीता का विवाह सम्पन्न होगा।

द्वीप–द्वीप के राजा लोग इस स्वयंवर में आये हुये हैं। जनक नन्दिनी सीता सुवर्ण के सदृश कान्तिवाली है जिसकी प्राप्ति के लिये तथा शिवधनुष-भंजन के द्वारा यश की प्राप्ति के लिये राजाओं का समूह एकत्रित हुआ है किन्तु मंजीरक भारी मन से यह सूचना देता है कि–खेद है कि किसी ने भी इस धनुष को न तो उठाया है और न ही उससे किसी प्रकार की ध्वनि को प्रकट किया है, न झुकाया है, न स्थान से हटाया ही है। वह प्रश्नवाचक शब्दावली में कहता है कि– आश्चर्य है कि इस समय भूतल क्या वीरों से शून्य हो गया है ?[61]

इसी समय वहाँ रावण और बाणासुर आते हैं जो शिवचाप-भंजन हेतु अपने–अपने बल का वर्णन करते हैं और आपस में वाद–प्रतिवाद करते हैं। यह नायक की प्राप्त्याशा में बाधक स्वरूप प्रतीत होते हैं लेकिन हर–चाप गौरव को देखकर यह दोनों ही योद्धा किसी बहाने से वहाँ से चले जाते हैं और यह बाधा दूर हो जाती है।

सीता–स्वयंवर का बीज अब बिन्दु की तरह ऊपर प्रकट हो जाता है और सीता–स्वयंवर की वार्ता का विस्तार होता है।[62] इधर पुष्प–वाटिका में पुष्प चयन हेतु राम और लक्ष्मण का प्रवेश होता है और उधर सखियों के साथ सीता वाटिका में स्थित मन्दिर में दुर्गा पूजन हेतु आ रही है। नायक प्रथम बार नायिका सीता को देखकर आकर्षित होता है और उनकी प्राप्ति हेतु नायक के मन में अभिलाषा का उदय होता है। सखियों के वार्तालाप से जब सीता के परिणय की बात नायक श्रीराम को विदित होती है तब उनके मन में सीता–प्राप्ति की कामना का उदय होता है। नायिका सीता भी राम की श्यामल छवि को देखकर मुग्ध हो जाती है और दुर्गाजी से मन ही मन राम को वर के रूप में प्राप्त करने की प्रार्थना करती है। नायक और नायिका दोनों ही एक दूसरे की प्राप्ति हेतु प्रयत्न–तत्पर हैं। यहाँ पर यत्न नामक नाटकीय तत्त्व विद्यमान है। यत्न के इस तारतम्य में गुरूवर विश्वामित्र से प्रेरित श्रीराम जनक की प्रतिज्ञा के अनुसार शिव–धनुष का भंजन कर देते हैं। इसके बाद विश्वामित्र जनक से कहते हैं कि मेरे रामभद्र, जनक की अन्य कन्याओं से भाइयों के विवाह के साथ सीता के पाणिग्रहण की इच्छा रखते हैं।[63]

यहाँ पर नायक की प्राप्त्याशा पूर्ण होती हुई प्रतीत होती है। नायक श्रीराम की इच्छा गुरूवर विश्वामित्र के मुख से प्रकट हो जाती है। नायक श्रीराम का यत्न सफलता की ओर अग्रसर प्रतीत होता है किन्तु तभी सहसा विघ्न का उदय होता हुआ दिखायी देता है। स्वयंवर स्थल पर जमदग्निपुत्र परशुराम आते हैं। वे

बडे गर्व के साथ कहते हैं कि–महादेव के उस धनुष को बालक राम ने यदि बल से तोड़ दिया है तो फिर मेरे परशु के अग्रभाग की जल धारा में सम्पूर्ण रघुवंश ही डूब जायेगा। यह मंगल कार्य में विघ्न उपस्थित दिखायी देता है किन्तु जिस प्रकार थोड़ी देर में आकाश से बादल हट जाते हैं उसी प्रकार श्रीराम के अनुनय–विनय से यह विघ्न भी समाप्त हो जाता है। श्रीराम परशुराम के द्वारा दिये हुये वैष्णव धनुष का सन्धान करते हैं तो परशुराम के मन से यह सन्देह दूर हो जाता है कि राम एक साधारण बालक हैं। उनके मन में यह विश्वास हो जाता है कि विष्णु का नूतन अवतार हो गया है और वे भू–भार हरण करने के लिये अवतरित हुये हैं।

परशुराम श्रीराम को अनेक शुभ कामनायें देते हुये वहाँ से चले जाते हैं। सभी विघ्न दूर हो गये हैं और नायक के द्वारा सीता की प्राप्ति नियताप्ति में परिणत हो गई है। नायक और नायिका विवाह के होने के पश्चात् अपने बन्धुजनों के साथ अयोध्या लौट आते हैं किन्तु नायक श्रीराम का जीवन विघ्नों से भरा हुआ प्रतीत होता है।

नाटक के पंचम अंक में नदी पात्रों गंगा और यमुना के परस्पर वार्तालाप से विदित होता है कि कैकेयी ने राजा दशरथ से अपने प्रतिज्ञात दो वरदानों में, कौशल्यापुत्र श्रीराम को वनवास और भरत को युवराज बनाने का आग्रह किया था, जिससे मुदित हृदय श्रीराम पिता का चरण स्पर्श कर वन चले जाते हैं। साथ में सीता और लक्ष्मण भी जाते हैं।[64] कुछ समय पश्चात् साधु वेषधारी रावण सीता का

हरण कर लेता है। नायक श्रीराम का जीवन वियोग से व्यथित हो जाता है। राम–सीता मिलन विघ्नों से भरा हुआ है। राम लक्ष्मण से कहते हैं कि–यह चक्रवाक पक्षी चन्द्रोदय होने पर अपनी प्रिया से बिछुड़ता है और सूर्य के उदय होने पर प्रिया के संगम को पा लेता है परन्तु सीता से बिछुड़े हुये मेरे सैकड़ों दिन–रात बीत चुके हैं।[65]

इस प्रकार सीता-प्राप्ति पुनः बाधित हो जाती है और नायक श्रीराम उसकी प्राप्ति के लिये पुनः प्रयत्न करता है। मार्ग में हनुमान् से मिलन, सुग्रीव के साथ मैत्री और हनुमान् के नेतृत्व में वानर सेना द्वारा सीता की खोज, राम के द्वारा लंका में आक्रमण और लंकेश्वर के वध के पश्चात् श्रीराम का सीता से पुनर्मिलन होता है। तत्पश्चात् अयोध्या आगमन और राम का राज्याभिषेक होने से सम्पूर्ण रूप से फल प्राप्ति हो जाती है जिसे वास्तविक रूप में फलागम कहा जा सकता है।

प्रस्तुत नाटक में क्रमशः पाँच अर्थ प्रकृतियाँ, पंचावस्थायें और पंचसन्धियाँ यथावत् मिलती हैं। अन्त में, कार्य और फलागम मिल जाने से उपसंहृति सन्धि सम्पन्न होती है।

प्रसन्नराघवम् में अर्थोपक्षेपक :

प्रसन्नराघवम् के प्रथम अंक में प्रस्तावना के पश्चात् दालभ्यायन और करालक के मध्य होने वाले वार्तालाप से महाराज जनक की कन्या का स्वयंवर होने की सूचना प्राप्त होती है। यह प्रथम विष्कम्भक है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में,

तापस और भिक्षु–संवाद विष्कम्भक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह द्वितीय विष्कम्भक है। तृतीय अंक के प्रारम्भ में कुब्जक और वामनक के मध्य होने वाले वार्तालाप को प्रवेशक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रवेशक भी एक नाटकीय अर्थोपक्षेपक है जो विष्कम्भक की भाँति प्रयुक्त होता है।

इस प्रकार दोनों ही नाटकों में नाट्यशास्त्र के नियमानुसार अर्थोपक्षेपक प्राप्त होते हैं जिनमें से विष्कम्भक और प्रवेशक ही मुख्य रूप से प्रयुक्त हुये हैं। प्रसन्नराघवम् में भी चूलिका, अंकास्य, जनान्तिकम् और अपवारितम् आदि अर्थोपक्षेपकों का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। दोनों ही नाटक दशरूपक के निर्देशानुसार नाट्य लक्षणों से समलंकृत हैं।

पाद टिप्पणी
अध्याय- 3

1. काव्येषु नाटकं रम्यम्।
   दशरूपक–भूमिका पृ0 2
   डॉ0 भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा प्रकाशन, संस्करण 1962।
2. नाटकान्तं कवित्वम्,
   संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय पृ0 478
3. चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
   साहित्यदर्पण, मोतीलाल बनारसीदास 1961 पृ0 07 ।
4. आनन्द निष्यन्दिषु रूपकेषु, व्युत्पत्तिमात्र फलमल्प बुद्धिः ।
   दशरूपक, चौखम्बा प्रकाशन, 1962, पृ0 03 ।
5. न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं, न सा विद्या न सा कला ।
   न संयोगो न तत्कर्म, नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।। नाट्यशास्त्र, 1.117 ।।
6. नाट्य भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् । मालविकाग्निमित्रम् 1.4
   चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी 1962 । पृ0–14 ।।
7. अवस्थानुकृर्ति नाट्यम् । दशरूपक 1.7 ।।
8. रूपम् दृश्यतयोच्यते, रूपकम् तद्समारोपात् । दशरूपक 1.7 ।।
9. दशधैव रसाश्रयम् । दशरूपक पृ0, 04 ।।
10. वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः । दशरूपक 1.11 ।।
11. तत्राधिकारिकम् मुख्यम् अंगम् प्रासंगिकम् विदुः ।
    दशरूपक 1.11, पृ0, 07, चौखम्बा प्रकाशन– 1967 ।।
12. अधिकारः फल स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ।
    तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ।। दशरूपक 1.12 पृ0–08 ।।
13. जेतारं दशकन्धरस्य जितवानेवार्जुनं भार्गव–
    स्तं रामो यदि काकपक्षकधरस्तत्पूरितेयं कथा।
    ऊर्ध्व कल्पयतस्तु बालचरितात्तत्प्रक्रिया गौरवा–
    दन्येयं कविता तथापि जगतस्तोषाय वर्तिष्यते ।। अनर्घराघवम्, 7.146 ।।
14. तदिदं रघुसिंहानां सिंहासनमलंकुरू ।
    राजन्वन्तः प्रतन्वन्तु मुदमुत्तरकोशलाः ।। अनर्घराघवम्, 7.147 ।।
15. प्रासंगिकम् परार्थस्य स्वार्थोयस्य प्रसंगतः ।
    सानुबन्धम् पताकाख्यम् प्रकरी च प्रदेशभात् ।। दशरूपक, 1.13 ।।
16. भुजविटपमदेन व्यर्थमन्धंभविष्णु ।
    धिंगपसरसि चौरंकारमाक्रुश्यमानः ।
    त्वदुरसि विदधातु स्वामपस्कारकेलिं,
    कुटिलकरजकोटिक्रूरकर्माजटायुः । अनर्घराघवम्, 5.11 ।।

17. कुले वा शौर्ये वा भुजसमुदये वा तपसि वा,
बभूवुर्न प्रांचस्त्वमिव भवितारो न चरमे ।
अहो दिंगमोहस्ते समजनि चिरादेष न खलु,
प्रवीराणां पन्था दशवदन येनासि च्चलितः ।। अनर्घराघवम्, 5.13 ।।

18. इयमविरलश्वासा शुष्यन्मुखी भिदुरस्वरा,
तनुरवयवैः श्रान्तस्रस्तैरूपैति विवर्णताम् ।
स्फुरति जडता बाष्पायेते दृशौ गलति स्मृति–
र्मयि रसतया शोको भावश्चिरेण विपच्यते ।। वही, 5.22 ।।

19. बिभ्रतीं कैशिकीं वृत्तिं सौरभोद्‌गारिणीं गिरः ।
दूराध्वानोऽपि कवयो यस्य रीतिमुपासते ।। अनर्घराघवम्, 7.102 ।।

20. समुन्मीलत्सूक्तस्तबकमकरन्दैः श्रवणयो–
रविश्रम्यद्धारा सवनमुपचिन्वन्तु कवयः ।
न शब्दब्रह्मोत्थं परिमलमनाघ्राय च जनः,
कवीनां गम्भीरे वचसि गुणदोषौ रचयतु ।। वही, 7.151 ।।

21. कन्दर्पज्वरवेदनापरिपतद्बाष्पसुतिक्षालितं,
स्वर्गस्त्रीकुचकुम्भकुंकुमरजस्तेयापराधोज्ज्वलम् ।।
एतत्त्वां सुरदन्तिदन्तशिखरोल्लेखांकविख्यापित–
प्रस्फूर्जचतुरन्तविश्वविजयं वक्षःस्थलं याचते ।। प्रसन्नराघवम्, 6.24 ।।

22. सीता–अपिखद्योतभासापि समुन्मीलति पद्मिनी ? वही, पृ0, 332 ।।

23. सुनु रावण खद्योत प्रकासा । कबहुँ कि नलिनी करै बिकासा ।।
रामचरितमानस– सुन्दरकाण्ड– 8.7 ।।

24. उदर्क भूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते ।
चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका ।। प्रसन्नराघवम्, 7.1 ।।

25. आबालाद् वदनाम्बुजे तनुभृतां सारस्वतं जृम्भतां
देवे कौस्तुभधाम्नि चन्द्रमुकुटेऽद्वैता मतिः खेलतु ।
वाग्देव्या सह मुक्तवैशसरसा देवीव दीव्यादियं
शेषस्येव फणांचलेषु सततं लक्ष्मीः सतां सद्मसु ।। वही 7.94 ।।

26. जायन्तामविरामरामचरितक्रीडाभिरामाः सता–
मुन्मीलन्नवमल्लिकाविरचितस्रग्दामरम्या गिरः ।
याः कण्ठेऽपि निवेश्य पेशलधियो रोमांचलीलांचिताः,
कान्ताबाहुलताविलासमहिमाश्लेषांस्तृणं मन्वते ।। प्रसन्नराघवम्, 7.95 ।।

27. कदली कदली, करभः करभः,
करिराजकरः, करिराजकरः ।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्त्ति तुला–
मिदमूरूयुगं न चमूरूदृश ।। प्रसन्नराघवम्, 1.37, एवम् साहित्य दर्पण,पृ0–72।।

28. बीजबिन्दुपताकाख्य प्रकरीकार्य लक्षणाः ।
अर्थप्रकृतयः पंच ताः एताः परिकीर्तिताः ।। दशरूपक 1.18 पृ0–14 ।।
29. रत्नावली–भूमिका, साहित्य भण्डार, मेरठ 1967 संस्करण पृ0 46 ।।
30. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय पृ0 508–509 ।
31. रामः– (सहर्ष स्वगतम् ।) कथमलीकविकल्पैरात्मानं प्रमोहयामि । नन्वयं ममैव कौतुकं पूरयितुमैश्वरं धनुरभ्यर्थयते भगवान् । (जनकं च दृष्टवा सविमर्शम् ।) अहह।
बालेन सम्भाव्यमिदं च कर्म ब्रवीति च प्रत्ययितो महर्षिः ।
इति ध्रुवं मन्त्रयते नृपोऽयं दत्ते किमत्रोत्तरमाकुलोऽस्मि।। अनर्घराघवम्,3.29 पृ0,158।।
32. दातव्येयमवश्यमेव दुहिता कस्मैचिदेनागरौ,
दोर्लीलामसृणीकृतत्रिभुवनो लंकापतिर्याचते ।
तत्किं मूढवदीक्षसे ननु कथागोष्ठीषु नः शासति,
त्वद्वृत्तानि परोरजांसि मुनयः प्राच्या मरीच्यादयः ।। वही 3.44 ।।
33. शतानन्दः– शाम्भवं चापमारोप्य योऽस्मानानन्दयिष्यति ।
पूर्णपात्रमियं तस्मै मैथिली कल्पयिष्यते ।। वही, 3.45 ।।
34. विश्वामित्रः– (व्यथमानौ राम लक्ष्मणौ च दृष्ट्वा विहस्य।) वत्स रामभद्र, धनुर्गृहोपसर्पणमभ्यनुजानाति ते जनकान्वय पुरोधाः ।
रामः– यदादिशन्ति गुरवः । (इति सविनयलज्जाकौतुकं परिक्रम्य लक्ष्मणेन सह निष्क्रान्तः।) अनर्घराघवम्, 177 तृतीय अंक ।
35. इयमात्मगुणेनैव क्रीता रामेण मैथिली ।.अनर्घराघवम्, 3.56 ।।
36. केयं श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखा–
लग्नैरंगैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः ।
हारिद्राम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरंवहद्भिः
कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति ।। प्रसन्नराघवम् 2.7 ।।
37. कान्तंमिन्दुमणिदामकोमले ! कोमलेन्दुमुकुटांकशायिनि ! ।
इन्दुचारूमचिरेण विन्दतामिन्दुसुन्दरमुखी सखी मम ।। वही, 2.10 ।।
38. अपक्रान्ते बाल्ये, तरूणिमनि चागन्तुमनासि,
प्रयाते मुग्धत्वे, चतुरिमणि चाश्लेषरसिके ।
न केनापि स्पृष्टं यदिह वयसा मर्म परमं
तदेतत्पंचेषोर्जयति वपुरिन्दीवरसदृशः ।। प्रसन्नराघवम्, 2.11 ।।
39. कस्मैचिद्देहि कन्यां नरपति शिशवे, दीर्घमायुर्लभस्व,
व्याक्र्त्तस्वाप्रियान्नः पुरमथनधनुःकर्षणालापपापात् ।
नो चेदन्योऽस्त्युपायस्तव कलुषमसीपंकसंक्षालनाया–
मस्मद्विस्तारिधारांचलबहलपयः पूरदूरावगाहः ।। प्रसन्नराघवम्, 3.38 ।।

40. जनकः– त्वं मित्रं मम जामदग्न्यपरशो ! येनैतदाभाष्यसे,
सम्प्रत्येव यथाप्रतिश्रुतमियं कन्या मया दीयते ।
तेनेह स्वयमेत्य धूर्जटिधनुर्धौरेयदोःसम्पदो,
जामातुः पुरतश्चिराय भवता धाराजलं त्यज्यताम् ।। प्रसन्नराघवम्, 3.39 ।।

41. राघवेण शिशुनापि किलायं लीलयैव नमितो हर चापः ।
दूरमुल्लसति यस्य समन्तादम्बरेऽपि गमितो गुण घोषः ।। प्रसन्नराघवम्, 3.41 ।।

42. जनकः– आः ! किमुच्यते, दिशः पूर्णा इति ? ननु
एतैः श्रीकण्ठकोदण्डचंचन्मौर्वीभवै रवैः ।
चिरात्प्रतिज्ञया साकं पूर्णो मम मनोरथः ।। वही, 3.43 ।।

43. सकलनृपकठोर कण्ठपीठीबहलगलद्रुधिरौघधौतधारः ।
तदिदमजनकं जगद्विधत्ते परशुरयं जमदग्निनन्दनस्य ।। प्रसन्नराघवम्, 4.3 ।।

44. येनाबध्यत नर्मदाम्बुनिवहः संख्ये च लंकेश्वर–
स्तद्यस्मिन्नरमज्जदर्जुनभुजक्षोणीरूहां मण्डलम् ।
क्षत्रस्त्रीनयनाम्बुपूरमिषतः खेलन्ति यत्कीर्तय–
स्तत्तादृक्परशुर्ममायमधुना धाराजलं मुंचति ।। वही, 4.6 ।।

45. दुर्धर्षाः सुरसिद्धकिन्नरनरैस्त्यक्तक्रमं वक्रतां,
प्राप्ते यत्र विधातरीव तरसा तिस्रोपि दग्धाः पुरः ।
तद्भग्नं यदि राघवेण शिशुना चण्डीपतेः कार्मुकं,
तन्मग्नं कुलमेव तर्कय रघोर्मच्छस्त्रधाराम्भसि ।। प्रसन्नराघवम् 4.13 ।।

46. मया स्पृष्टं न वा स्पृष्टं, कार्मुकं पुरवैरिणः ।
भगवन्नात्मनैवेदमभज्यत, करोमि किम् ? ।। प्रसन्नराघवम् 4.21 ।।

47. हारः कण्ठं विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः,
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु वः कज्जलं वा जलं वा ।
सम्पश्यामो ध्रुवमिव सुखं प्रेतभर्त्तुर्मुखं वा,
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः ।। प्रसन्नराघवम् 4.23 ।।

48. क्वपरशुरशुभस्ते ? कुत्र गोत्रं पवित्रं, ?
क्व धनुरिदमुदग्रं ? निर्मलं कुत्र शीलम् ? ।
घनसमरकराला कुत्र नाराचहेला ?
कुशकिसलयलीला कुत्र वा पर्णशाला ? ।। प्रसन्नराघवम् 4.32 ।।

49. प्रसीद त्वं रोषाद्विरम, कुरू मे चेतसि गिरं,
चिरं यच्चायासैर्बहुभिरिह वारैर्जितमभूत् ।
यशोवृत्तं, वित्तं कितव इव विक्षोभतरलं,
तदेतस्मिन्वारे भृगुतिलक ! मा हारय मुधा ।। प्रसन्नराघवम् 4.35 ।।

50. सरयूः—त्वयादेयं यन्मे द्वयमभिहितं, देहि तदिदं—
वनं कौशल्येयो विशतु, युवराजोऽस्तु भरतः ।
इतीदं कैकेय्या वचनमधिगम्याऽऽकुलमतेः,
पितुः पादौ नत्वा मुदितहृदयोऽसौ वनगमात् ।। प्रसन्नराघवम्, 5.04 ।।

51. 'हा राम ! हा रमण ! हा जगदेकवीर !
हा नाथ ! हा रघुपते ! किमुपेक्षसे माम् ।'
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती—
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम ।। प्रसन्नराघवम् 5.45 ।।

52. प्राप्ता निर्भरमुन्नतिर्निजगुणैराज्ञा पितुः पालिताः
सुग्रीवश्च विभीषणश्च परमां राज्यश्रियं प्रापितौ ।
संग्रामे दशकन्धरः सुररिपुर्नीतो यशःशेषतां
दृष्टो बन्धुगणश्च हर्षविगलद्वाष्पोल्लसल्लोचनः ।। वही 7.93 ।।

53. नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः ।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभाव निरन्तरः ।। दशरूपक— प्रथम प्रकाश—57 ।।

54. अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत् ।
विष्कम्भचूलिकांकास्यांकावतार प्रवेशकैः ।। वही, 1.58 ।।

55. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्र प्रयोजितः ।।
एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः । दशरूपक, 1.59,60 ।।

56. तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्र प्रयोजितः ।
प्रवेशोंऽकद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ।। वही, 1.60 ।।

57. (प्रविश्य सम्भ्रान्तो बटुः)
बटुः— (आर्य शुनः शेप, किमप्याश्चर्यं भीषणं च वर्तते ।)
शुनः शेपः— (सचमत्कारं परिवृत्य।) सखे पशुमेढ्र, किमाश्चर्यं भीषणं च वर्तते ।
पशुमेढ्रः— (अद्य राम इति कोऽपि क्षत्रियकुमार आगत इति श्रुत्वा कुतूहलेन धावतस्तपोवन—पर्यन्तपरिस्थिता प्रस्तरपुत्रिका सत्यमानुषीभूय ममैव सम्मुखं परापतिता । तां प्रेक्ष्य उत्तरासंगवल्कलमप्युज्झित्वा पलायितोऽस्मि .... ।
अनर्घराघवम्—2, पृ0, 62 ।।

58. वही, तृतीय अंक, पृ0, 128—140 ।

59. अनर्घराघवम्, चतुर्थ अंक पृ0, 188—212 ।

60. वही, पंचम अंक पृ0, 275—278 ।

61. मंजीरकः– (सविषादम्)
आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः,
कन्येयं कलधौतकोमलरूचिः, कीर्तिश्च लाभास्पदम् ।
नाकृष्टं, न च टात्कृतं, न नमितं स्थानांच न त्याजितं,
केनापीदमहो धनुः किमधुना निर्वीरमुर्वीतलम् ।। प्रसन्नराघवम्, 1.32 ।।

62. वार्ता च कौतुकवती, विमला च विद्या,
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरंगनाभेः ।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार–
मेतत्त्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ ।। प्रसन्नराघवम्, 2.2 ।।

63. पाणींजनककन्यानां पीडयद्भिः सहानुजैः ।
सीताया रामभद्रो मे पाणिपीडनमिच्छति ।। प्रसन्नराघवम्, 3.51 ।।

64. सरयूः–त्वयादेयं यन्मे द्वयमभिहितं, देहि तदिदं–
वनं कौशल्येयो विशतु, युवराजोऽस्तु भरतः ।
इतीदं कैकेय्या वचनमधिगम्याऽऽकुलमतेः,
पितुः पादौ नत्वा मुदितहृदयोऽसौ वनगमात् ।। प्रसन्नराघवम्, 5.04 ।।

65. अयमुदयति चन्द्रे विप्रयोगं प्रियायाः
श्रयति, तपति सूर्ये संगमंगीकरोति ।
मम तु जनकपुत्री–विप्रयुक्तस्य यातं
शतमधिकमपीदं चन्द्रसूर्योदयानाम् ।। वही 6.7 ।।

चतुर्थ अध्याय

पात्रों का तुलनात्मक चरित्र-चित्रण

चतुर्थ अध्याय

पात्रों का तुलनात्मक चरित्र-चित्रण

नायक –

कथावस्तु के बाद रूपकों का दूसरा भेदक तत्व नेता या नायक होता है।[1] नेता शब्द के साथ नायक का पूरा परिवार आ जाता है। नायक, नायक के साथी, नायिका और उसकी सखियाँ, प्रतिनायक और उसके साथी इत्यादि सभी नेता के अंग माने जाते हैं। नाटक इत्यादि के इतिवृत्त का नायक वही बन सकता है जो विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगों को प्रसन्न करने वाला, पवित्र मन वाला, वाग्मी, कुलीन, स्थिर मनवाला और युवक होता है। वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा वाला तथा मान से युक्त होता है। वह शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्र ज्ञाता तथा धार्मिक होता है।[2]

नाट्य शास्त्र के अनुसार नायक चार प्रकार के होते हैं। यह भेद नायक की प्रकृति के आधार पर किया गया है। भरत मुनि ने पात्रों को प्रकृति के अनुसार तीन वर्गों में विभाजित किया है– (1) उत्तम प्रकृति (2) मध्यम प्रकृति और (3) अधम प्रकृति। यहाँ पर प्रकृति का अर्थ है स्वभाव। स्वभाव के अनुसार ही पात्रों के यह भेद किये जाते हैं। प्रकृति के अनुसार ही पात्रों के व्यापार होते हैं। उत्तम प्रकृति वाला व्यक्ति सदा उदात्त व्यापारों में ही अनुरक्त होता है। वह ऐसा कोई भी कार्य नहीं करता हैं जिससे उसकी गम्भीरता तथा सहानुभूति को कभी धक्का लगे। मध्यम प्रकृति वाले व्यक्ति का कार्य साधारण लोगों का व्यापार होता है। अधम प्रकृति वाला पुरूष स्वभाव से ही नीचे की ओर जाने वाला होता है। एक बार

जिस पात्र की जो भी प्रकृति स्वीकृत कर ली जाती है उसे नाटक में उसी प्रकार निर्वाह करना पड़ता है। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार पात्रों का बोल चाल, व्यवहार, संगीत और भाषण, वचन इत्यादि सब उसकी प्रकृति के अनुकूल होने चाहिये।

दशरूपक के अनुसार नायक चार प्रकार के होते हैं।[3] ये चारो प्रकार के नायक "धीर" तो होते ही हैं, धीरत्व के अतिरिक्त इनमें अपनी–अपनी प्रकृतिगत विशेषता भी पायी जाती है। नायक का पहला प्रकार धीर ललित है। दूसरा धीर प्रशान्त, तीसरा धीरोदात्त और चौथा धीरोद्धत है। उपर्युक्त इन चारो नायकों के उदाहरण क्रमशः वत्सराज उदयन, चारूदत्त, राम तथा भीमसेन हैं।

(1) धीर ललित :

धीर ललित वह नायक है जो सर्वथा निश्चिन्त रहता है। वह कोमल स्वभाव का होता है, सुखी रहता है तथा नृत्य,गीतादि कलाओं में आसक्त रहता है।[4] धीर ललित नायक राज्यपाट की या दूसरी चिन्ताओं से मुक्त होता है। वह कला का प्रेमी और रसिक वृत्ति का होता है। प्रेम उसका उपास्य होता है, वह भोग विलास में लिप्त रहता है तथा प्रायः अनेक पत्नी वाला होता है। धीर ललित नायक अधिकतर राजा ही होता है। इसका राज्य कार्य मन्त्री सम्हाले रहते हैं और वह अन्तःपुर की चहारदीवारी में प्रेम–क्रीड़ा किया करता है। वह नवयुवतियों और सुन्दरियों के प्रति अपने प्रेम का प्रदर्शन करता रहता है। अपने इस व्यापार में वह अपनी महारानी से सदैव डरता हुआ सशंकित रहता है। स्वप्नवासवदत्तम् और

तापसवत्सराजम् नाटकों का नायक वत्सराज उदयन ऐसा ही 'धीर ललित' नायक हैं।[5]

(2) धीर प्रशान्त :

धीर प्रशान्त प्रकृति का नायक धीर प्रकृति से सर्वथा भिन्न होता है। कुल की दृष्टि से शान्त प्रकृति का होता है। शान्त प्रकृति प्रायः ब्राह्मण या वैश्य में होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि धीर प्रशान्त नायक या तो ब्राह्मण होता है या वैश्य होता है। शूद्रक के मृच्छकटिक का नायक 'चारूदत्त' तथा भवभूति के मालतीमाधव का नायक 'माधव' धीर प्रशान्त है। ये दोनों ही नायक कुल से ब्राह्मण हैं।[6]

(3) धीरोदात्त :

धीरोदात्त प्रकृति का नायक भी प्रायः राजा या राज्य कुलोत्पन्न होता है। वह निरभिमानी, अत्यन्त गम्भीर, स्थिर तथा अविकत्थन होता है। वह जिस व्रत को धारण कर लेता है, उसे छोड़ता नहीं है। धीरोदात्त नायक, नायक के सम्पूर्ण आदर्शों से युक्त होता है। उत्तररामचरितम् नाटक के नायक श्रीराम धीरोदात्त नायक हैं।[7]

(4) धीरोद्धत्त :

धीरोद्धत नायक घमण्डी, ईर्ष्यापूर्ण, आत्म श्लाघी और छली होता है। 'परशुराम' अथवा 'भीमसेन' धीरोद्धत नायक हैं।

नाट्यशास्त्र में नायक का एक दूसरे प्रकार का वर्गीकरण पाया जाता है। यह वर्गीकरण उसके प्रेम व्यापार एवं तत्सम्बन्धी व्यवहार के अनुरूप होता है। प्रेम की अवस्था में नायक के दक्षिण, शठ, घृष्ट तथा अनुकूल यह रूप देखे जा सकते हैं। ये रूप अपनी परिणीता पत्नी के प्रति किये गये उसके व्यवहार में पाये जाते हैं। दक्षिण नायक एक से अधिक प्रियाओं को एक ही तरह से प्यार करता है। स्वप्नवासवदत्तम्, तापसवत्सराजम्, और रत्नावली नाटिका का नायक वत्सराज उदयन दक्षिण नायक है।

शठ नायक अपनी ज्येष्ठ नायिका के साथ बुरा व्यवहार तो नहीं करता है परन्तु उससे छिप–छिपकर दूसरी नायिकाओं से प्रेम करता है। घृष्ट नायक धोखेबाज होता है। वह ज्येष्ठा नायिका की चिन्ता नहीं करता है। अनुकूल नायक सदैव एक ही नायिका के प्रति आसक्त रहता है। उत्तररामचरितम् नाटक के नायक श्रीराम अनुकूल नायक हैं जो केवल सीता के प्रति ही आसक्त हैं।[8]

नाट्यशास्त्र के अनुसार, नायक में आठ प्रकार के सात्विक गुणों का होना पाया जाता है —

(1) शोभा (2) विलास (3) माधुर्य (4) गम्भीरता (5) स्थैर्य (6) तेज (7) लालित्य एवं (8) औदार्य।[9]

नायक का शत्रु प्रतिनायक होता है और नायक के साथी पताका नायक तथा पीठमर्द कहलाते हैं। नायक के राज्य कार्य तथा धर्मकार्य देखने वाले उसके

सहायक मन्त्री, सेनापति आदि होते हैं। प्रेम के समय नायक के सहयोगी और सहकारी विदूषक तथा विट आदि पात्र होते हैं। नाटककार अपनी आवश्यकतानुसार अपने नाटकों के पात्रों का संयोजन करता है।

राम :

अनर्घराघवम् नाटक के नायक श्रीराम हैं। दशरूपक के वर्णनानुसार श्रीराम धीरोदात्त नायक है। धीरोदात्त प्रकृति का नायक प्रायः राजा या राजकुलोत्पन्न होता है। वह निरभिमानी, अत्यन्त गम्भीर, स्थिर और अविकत्थन होता है। जिस व्रत को वह धारण कर लेता है उसे वह छोड़ता नहीं है। धीरोदात्त नायक, नायक के सम्पूर्ण आदर्शों से युक्त होता है। विचार करने पर विदित होता है कि अनर्घराघवम् नाटक के नायक श्रीराम में उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान हैं। वे प्रसिद्ध रघुवंशी राजाओं के कुल में उत्पन्न हुये हैं। वे अभिमानी नहीं हैं। वे अत्यन्त गम्भीर हैं। स्थिर प्रज्ञ और आत्मश्लाघा से परे हैं।

श्रीराम में नायक के सम्पूर्ण आदर्श विद्यमान हैं। वे दृढ़ प्रतिज्ञ, व्रती, धीर और वीर है। श्री राम देहयोगी और ऋष्यश्रृंगचरू की ब्रह्म ज्योति के प्रथम विवर्त है।[10] जिनके पुरोहित वशिष्ठ जी हैं जो प्रसिद्ध मनुवंश में उत्पन्न हुये हैं, उन रघुवंशियों में राजा दशरथ के यहाँ इक्ष्वाकुवंशी ऋष्यश्रृंग के तप के प्रभाव से श्रीराम का जन्म हुआ है।[11]

श्रीराम आज्ञाकारी हैं। जब विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिये राजा

दशरथ के यहाँ राम को लेने आते हैं तो दशरथ की आज्ञा से वे शीघ्र ही विश्वामित्र के साथ चल पड़ते हैं। मार्ग में एक शिलाखण्ड अहिल्या नाम की नारी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इससे प्रतीत होता है कि श्रीराम के पाद रज में कोई दिव्य शक्ति है। यह कार्य राम की दिव्यता का परिचायक है।

राम प्रकृति के प्रेमी प्रतीत होते हैं। वे गाधिनन्दन विश्वामित्र के आश्रम के पवित्र वातावरण की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। वहाँ के यज्ञ–याग आदि देखकर उनका मन प्रसन्न हो जाता है। ऋषियों का समूह उन्हें प्रसन्न करता है। तपस्या से कृश ऋषियों के अंग उनके आकर्षण का विषय हैं। ये मुनिगण जब सायं–प्रातः पवित्र अग्निहोत्र करते हैं तो राम का मन अति प्रसन्न होता है।[12]

राम को प्रकृति से विशेष प्रेम है। आश्रम में यज्ञवेदी के समीप नव प्रसूता हिरणी तृण चर रही है। तपस्वी कुमार उसके बच्चों को निवार खिला रहे हैं। हरिणी के द्वारा उनको भावपूर्ण दृष्टि से देखना बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। ऋषि कुमार मृगशावकों को श्यामाक तन्दुल दे रहे हैं। यह दृश्य उन्हें बहुत आकर्षित करता है। आश्रम के वृक्षों के आलवालों में पानी भरा हुआ है। अधिक पानी होने के कारण वह वक्र गति से नालियों में पहुँच रहा है जो श्रीराम को केरली नारियों के केशपाश की तरह अनमोल प्रतीत होता है।

राम आश्रम के पास से प्रवाहित कौशिकी नदी को देखकर अभिभूत हो जाते हैं। आश्रम वाहिनी सरिता का नीरकुसुमजन्मा परिमल उन्हें आकर्षित करता

है। श्रीराम तपोवन की विहार भूमियों को बहुत देर तक देखते रहते हैं। इससे उनका प्रकृति प्रेम ध्वनित होता है। उन्हें आश्रम का जीवन भी प्रभावित करता है। वहाँ के मुनिगण तीन बार स्नान करते हैं, वन के कन्दमूलों से शरीर–यात्रा चलाते हैं, मृगचर्म पर सोते हैं तथा वृक्ष की छाल धारण करते हैं। ये मुनिगण चर्म चक्षुओं से न देखने वाले, ब्रह्मतेज का साक्षात्कार करते हैं। यह तपोमय और त्यागमय जीवन राम को रूचिकर प्रतीत होता है।[13]

विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञ प्रारम्भ होने वाला है। राम उनकी रक्षा में खड़े हैं। उसी समय यज्ञ में विघ्न पैदा करने वाली, भीषणाकृति वाली, गृद्ध की तरह मँडराने वाली ताड़का क्रीडा करती है। अग्निहोत्र के कुण्डो को रूधिर से भर देने वाले सुबाहु–मारीच आदि हिंसक राक्षस यज्ञ–वेदी को घेर रहे हैं। विश्वामित्र राम को ताड़का का वध करने के लिये आदेशित करते हैं। राम के मन में, किसी नारी का वध अधर्म और लज्जा का भाव पैदा करता है। राम लज्जाभीरू और अधर्म भीरू हैं किन्तु गुरूदेव की आज्ञा और धार्मिक यज्ञों की रक्षा उनका व्रत हैं। इसलिये स्त्रीवध रूपी दुर्यश और लज्जा को वह गौण समझते हैं। वे ताड़का का वध कर देते हैं, किन्तु नारी वध उन्हें आनन्दित नहीं करता है।[14]

वे यज्ञ भूमि से अन्य राक्षसों को भी मार भगाते हैं। राक्षसों का भय समाप्त हो जाता है जिससे आश्रम में चल रहे धार्मिक अनुष्ठान और यज्ञ–यागादि पूरे हो जाते हैं। राम के उक्त कार्यों से विदित होता है कि वे नारी वध से लज्जालु

और संकोची हैं किन्तु राक्षसों का वध करने के कारण वे वीर के रूप में उदित होते हैं। वे धर्म–रक्षक और यज्ञ–यागादि के संरक्षक हैं। धर्म और वेद की रक्षा करना यह विष्णु का मुख्य कार्य था जो राम में प्रकट होता हुआ दिखायी देता है।

श्रीराम महाकुल प्रसूत हैं इसलिये उनमें धीरोदात्त नायक के सभी गुणों का होना स्वभाविक है।[15] विश्वामित्र के अनुसार सूर्यवंशी क्षत्रियों की वंश परम्परा रूप मल्लिका माल्य के अम्लान स्तवक रूप जो चार पुत्र दशरथ राजा के यहाँ उत्पन्न हुये हैं, उनमें सबसे ज्येष्ठ तथा ताड़का रूप रात्रि के प्रातः काल के समान एवं सुचरित कथा रूप अंकुर के मूल कन्द तुल्य यही रामचन्द्र हैं।

रामवीर वर हैं। मिथिला में आयोजित सीता–स्वयंवर के अवसर पर धनुर्भंग करने के लिये जब अनेक राजा परास्त हो जाते हैं, तब निराश जनक का विनोद करते हुये विश्वामित्र राम को, जनकवंश के पुरोहित शतानन्द की इच्छानुसार धनुर्गृह में जाने की आज्ञा प्रदान करते हैं जिसे राम विनय, लज्जा और कौतुक के साथ स्वीकार कर धनुर्गृह की ओर प्रस्थान करते हैं।[16] वहाँ जाकर श्रीराम भगवान् शंकर के गुरूगम्भीर धनुष को आकृष्ट करते हैं और अन्ततः धनुष का खण्डन कर देते हैं। जनक को जब यह समाचार मिलता है कि राम ने शिव धनुष का खण्डन कर दिया है तो वे हर्ष, विषाद और आश्चर्य में डूब जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन युग में भारोत्तोलन और शर–सन्धान वीरता का लक्षण रहा है।

इसके बाद वहाँ जमदग्नि पुत्र परशुराम का आगमन होता है। वे दशरथ

पुत्र राम के द्वारा शिव धनुर्भंग का समाचार सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं और विदेह से पूँछते हैं कि वह दशरथ पुत्र राम कहाँ हैं ? परशुराम और राम का वार्तालाप होता है जिसमें बड़ी विनम्रता के साथ राम कहते हैं कि भगवन्! बाल स्वभाव सुलभ, कुतूहल वश मैने शिव–धनुष चढ़ा दिया। उसी से यह अमंगल अनायास उपस्थित हो गया है। मैने इस प्रसंग में आपका विचार ही नहीं किया।[17]

यह राम की अतिशय विनम्रता ही है जो क्रुद्ध परशुराम के सामने अपना क्रोध प्रकट नहीं करती है। श्रीराम परशुराम से कहते हैं कि–स्त्रियों में वीर जननी आपकी ही माता हैं। आपके द्वारा पराजित कार्तिकेय के मुख को देखकर लज्जा से विदीर्ण ह्रदया होकर स्वयं देवी पार्वती ने आपकी माता के प्रति अपनी स्पृहा प्रकट की थी।[18] क्रोध का अवसर होने पर भी राम क्रोध नहीं करते। यह धीरोदात्त नायक की विशेषता है। परशुराम के कुपित हो जाने पर भी राम कहते हैं कि सूर्यवंश के क्षत्रियों से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। भगवान् विश्वामित्र ने मुझे अस्त्रकला की शिक्षा दी है। लोग हमारे वंश को यश दें या अयश। ब्राह्मण के ऊपर शस्त्र ग्रहण रूप साहस कार्य से मैं डरता हूँ।[19]

जब जामदग्न्य परशुराम राम के गुरू वशिष्ठ और विश्वामित्र के प्रति भी अधिक्षेप वचनों का प्रयोग करते हैं तो राम को कुछ क्रोध आ जाता है। वे क्रोधपूर्वक जामदग्न्य की बातों का प्रतिवाद करते हुये कहते हैं कि आः जामदग्न्य! यह क्या वचन विभीषिका दिखा रहे हैं ? बात के अधिक बढ़ जाने पर कदाचित्

इक्ष्वाकु वंशी भी कुपित हो सकते हैं।[20]

जामदग्न्य के द्वारा अपनी भूतकालीन यशः पताका का बार–बार बढ़कर व्याख्यान करने पर राम कहते हैं कि–आपकी कीर्ति पताका अब जीर्ण–शीर्ण वस्त्र बन गयी है।[21] इसके बाद परशुराम श्रीराम से वैष्णव धनुष के सन्धान का प्रस्ताव रखते हैं जिसका राम अनायास ही सन्धान कर देते हैं। राम के वैष्णव तेज को देखकर परशुराम का सम्पूर्ण क्रोध विगलित हो जाता है। वह लज्जा के कारण अति संकोच का अनुभव करते हैं। विष्णु के अवतारी राम के व्यक्तित्व का अभिनन्दन करते हैं और उन्हें अनेक स्वस्ति वचनों और आशीर्वचनों से अलंकृत कर वन की ओर गमन करते हैं।

उक्त सभी प्रसंगों से यह ध्वनित होता है कि राम क्रोध को जीतने वाले, विनयी, मधुर, चतुर, प्रियम्वद, लोगों को प्रसन्न करने वाले, पवित्र मन वाले, बातचीत करने में कुशल, कुलीनवंश में उत्पन्न, स्थिर, युवा, बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला, मान से युक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक व्यक्तित्व के धनी नायक हैं।

जनकात्मजा मैथिली सीता से विवाह के अवसर पर मिथिला में ही कैकेयी मन्थरा के हाथ से एक पत्रिका प्रेषित करती है जिसमें वह पहले स्वीकृत किये गये अपने दो वरों की चर्चा करती है, जिनमें से प्रथम वरदान में भरत का राज्याभिषेक माँगती है और द्वितीय वरदान के अन्तर्गत लक्ष्मण और सीता के साथ

राम को चौदह वर्ष पर्यन्त दण्डकवन में रहने की बात कहती है[22] किन्तु राम हर्ष के अवसर पर इस विषादजनक स्थिति के उदय होने पर तनिक भी दुखी नहीं होते हैं। यद्यपि कैकेयी के द्वारा मिथिला में ही वन–गमन का प्रसंग उठा देना बहुत अनुचित है लेकिन माता कैकेयी के आदेश को राम शिरोधार्य करते हैं। वे कैकेयी की पत्रिका को अपने मस्तक से लगाते हैं और वहीं से वन–गमन करने का उपक्रम करते हैं।[23]

दशरथ और जनक मूर्च्छित हो जाते हैं। राम उन्हें आश्वस्त करते हैं। वे जनक से निवेदन करते हैं कि मेरे पिता दशरथ, जिस प्रकार स्वस्थ हो जायें आप वैसा ही प्रयास करेगें। इस घटना से यह प्रतीत होता है कि राम बड़े धीर व्यक्तित्व के धनी हैं। ऐसे मांगलिक अवसर पर वन के लिये भेजे जाने पर भी उनके मन में किसी प्रकार का आकृति–परिवर्तन नहीं होता है।

श्रीराम दूसरों के गुणों के प्रशंसक हैं। बहुत कम ऐसे लोग होते हैं जो दूसरों के गुण परमाणुओं को पर्वत के समान समझते हुये अपने हृदय में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं किन्तु राम रावण के गुणों की भी भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। वे रावण को लक्ष्य कर कहते हैं कि–कुल गौरव में, शौर्य में, बाहुशालिता में, तपस्या में न कोई तुम्हारे समान हुआ है और न आगे चलकर होगा। न जाने क्यों तुम्हें इस प्रकार का दिङ्मोह हो गया है कि तुम परदारापहरण रूप पापकर्म में प्रवृत्त हो गये हो ? हे रावण ! तुमने जिस मार्ग से चलना प्रारम्भ किया है, यह मार्ग वीरों का नहीं है।[24]

उक्त कथन से प्रतीत होता है कि राम दूसरे के गुणों के प्रशंसक हैं, उदार हैं और सहिष्णु हैं। सीता का अपहरण हो जाने के पश्चात् राम किसी प्रकार अपने शोक को रोक लेते हैं किन्तु अपनी प्रियतमा सीता की रक्षा करने में चूक जाने के कारण लज्जा का अनुभव करते हैं।[25] श्रीराम जटायु के द्वारा वज्र कठोर नखांकुर प्रहार से भग्न रावण के रथ को देखकर भाव–विह्वल हो जाते हैं और विदेह–पुत्री का स्मरण करते हुये कहते हैं कि दशकण्ठ रूपी गज पर सिंह की तरह आक्रमण करने वाले उस तात जटायु को तुमने देखा था इसलिये तुम धन्य हो।[26] इससे प्रतीत होता है कि श्रीराम संवेदनशील और परदुखकातर भी हैं।

राम अपने मन में कहते हैं कि रावण ने जान बूझकर ही मेरी प्रियतमा का अपहरण किया है। उसको शिरच्छेद का भय नहीं है क्योंकि उसने शिव की आराधना में स्वयं अपने मस्तक काट दिये थे। खेद है कि चन्द्रहास द्वारा काटे गये उन शिरों को मुझे अपने बाणों के द्वारा पुनः काटना पड़ेगा।[27] इससे प्रतीत होता है कि राम वह कार्य पुनः नहीं करना चाहते जो किसी दूसरे के द्वारा किया जा चुका है। वे नवीन कार्य के पक्षधर प्रतीत होते हैं। वे सीता का स्मरण कर बड़े भावुक हो जाते हैं और उनकी आँखों में आँसू छलक पड़ते हैं। वे कहते हैं कि जब मैं मारीच के शिकार में वन की ओर चला गया था और कुटी में रावण आ गया था तब हे सीते! तुम्हारी आँखे भी हरिणियों के समान चंचल और कातर हो गयी होंगी।[28]

इससे प्रतीत होता है कि श्रीराम में मानव सुलभ कारूण्य विद्यमान है। वे करूणा वरूणालय हैं। श्रीराम वीरवर हैं। वे सप्त ताल वृक्षों को एक साथ भेदकर बालि का वध कर देते हैं।[29] उनकी वीरता का प्रमाण राक्षसेन्द्र रावण का वध है। वे वास्तव में वीर हैं। राम विनम्र व्यक्तित्व के धनी हैं। वे बन्धुजनों के अत्यन्त प्रिय हैं। वे जब लंका से पुष्पक विमान के द्वारा अयोध्या पहुँचते हैं तो सबसे पहले गुरूवर वशिष्ठ का अभिवादन करते हैं। यह उनकी अतिशय विनम्रता का परिणाम है।[30] वे अपने बन्धुओं से भी बड़े प्रेम से मिलते हैं और ऐसा कोई पुरवासी भी नहीं है जिससे वे न मिले हों।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनर्घराघवम् में राम का चित्रण आदर्श वीर के रूप में किया गया है। वे विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष और प्रियम्वद हैं। उनमें बुद्धि, उत्साह, शूरता विद्यमान है। वे विनयादिगुण सम्पन्न, अति गम्भीर, क्षमाशील दृढव्रती, धीरोदात्त नायक हैं।

प्रसन्नराघवम् के अनुसार भिक्षु से यह बात ज्ञात होती है कि विश्वामित्र के आश्रम से राम और लक्ष्मण कौशिक मुनि के साथ मिथिला आ गये हैं। राम, लक्ष्मण के साथ पुष्प वाटिका आकर उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। वे वहाँ पर स्थित मधुमास लक्ष्मी की रमणीयता का मनोहारी वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि उस उपवन में मल्लिका के फूल का रस पीने वाली भ्रमरियों का सूक्ष्म मधुर ध्वनि का सम्प्रदाय सुशोभित हो रहा है। यहाँ दाक्षिणात्य वायु से प्रति शब्द अथवा

पग–पग में उपदिष्ट अशोक की मंजरी विलास के साथ नृत्य कर रही है।[31] वे वासन्ती वायु की सुन्दरता का भी वर्णन करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि राम प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी हैं।

राम उपवन में थोड़ा आगे चलकर चण्डिका मन्दिर देखते हैं। वे देवी चण्डिका को प्रणाम करते हैं। वहाँ पर स्थित मद से मधुर, अस्फुट शब्द से युक्त, हंसों से विभूषित, श्वेत कमलों की पंक्ति से प्रकाशित सरोवर श्रीराम के चित्त को सरस बना रहा है। वहाँ हंस शावक कमलिनी के वन में विहार करने वाली अपनी सहचरी को भी छोड़कर आम्रवृक्ष की शाखा से मध्यभाग का अनुसरण करता हुआ राम को आकर्षित कर रहा है। वहाँ पर विलास के साथ चलने वाले चरणों से मणि खचित नूपुरों की ध्वनि राम को आकर्षित करती है। वे अनुमान करते हैं कि चण्डिका मन्दिर में आने वाली यह कोई नगर सुन्दरी होगी। इसलिये वे उधर देखना नहीं चाहते हैं क्योंकि–क्या यह पर नारी है ? ऐसी शंका भी रघुवंशी राजाओं के मन में संकोच की सृष्टि करती है।[32]

इससे प्रतीत होता है कि राम का चित्त अति सरस है और प्रकृति की सुन्दरता उन्हें बहुत प्रिय है। कल हंस की मधुर ध्वनि के समान नूपुरों की ध्वनि उन्हें आकर्षित करती है किन्तु वे परनारी दर्शन के संकोच से अपने चित्त को वहाँ से परावर्तित करते हैं किन्तु उसी क्षण जनक नन्दिनी राजकुमारी सीता वहाँ प्रवेश करती है और राम उसे देखे बिना नहीं रहते हैं। वे उसे देखकर कहते हैं कि श्याम

निकषोपल पर खचित सुवर्ण की अद्वितीय रेखाओं के समान और कनक कदली के भीतरी भाग के समान पीतवर्ण, हल्दी के रस के सदृश शोभा प्रवाह को धारण करने वाली, अंगों से उपलब्ध एवं कामक्रीड़ा के भवन की वलभी में दीपिका के सदृश यह कौन सुन्दरी मुझे आकर्षित कर रही है ?[33]

राम सीता के अनवद्यांगों की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। वे कहते हैं कि इसके ओष्ठ बन्धूक पुष्प के सदृश, नेत्र सफेद केतकी पुष्प के समान, कपोल मधूक के कोरक के तुल्य, दाँतों की पंक्ति दाड़िम के बीजों को जीतने वाली और मुख कमल को भी दास बनाने वाला है। इसके चरण विकसित रक्त कमलों की कान्ति को पराजित कर रहे हैं। इसके हाथ नव पल्लवों की लालिमा को ग्रहण कर रहे है। ओष्ठों के अग्रभाग में प्रवालों की कान्ति विद्यमान है और मन्द हास्य के कान्ति–प्रवाह चन्द्रमा की कान्ति का उपहास करते हैं।

कमल नयनी सीता हर प्रकार से राम को सर्वोत्कृष्ट प्रतीत होती है। इससे प्रतीत होता है कि प्रसन्नराघवम् के राम ललित और रसिक हैं। राम का ऐसा चित्रण अनर्घराघवम् में दिखायी नहीं देता है। सीता जब सहकार वृक्ष के बहाने उस ओर पुनः जाती है तब राम बड़े हर्ष के साथ कह उठते हैं कि मेरे चित्त रूप कुमुद के आनन्द के लिये शरद् ऋतु की पूर्णिमा रात्रि के समान यह सीता मुझे आनन्दित कर रही है।[34] सीता की चंचल शृंगारिक चेष्टायें राम के आकर्षण का केन्द्र हैं।

श्रीराम इस नाटक में सर्वप्रथम सुन्दरता के प्रेमी के रूप में चित्रित किये

गये हैं। उन्हें सीता नव यौवन का सर्वस्व भोग का भवन, नयनों का भाग्य, मद विभ्रम का सौभाग्य, संसार का सार, जन्म लेने का फल, कामदेव का कौतुक, राम का हृदय, रति क्रीडा की पराकाष्ठा, श्रृंगार का रहस्य है। कमलनयनी सीता का दर्शन उन्हें कुछ इस प्रकार प्रतीत होता है।[35] राम अपने मन में सोंचते हैं कि सीता अपने चंचल नेत्रों से, अमृत से भरे हुये समुद्र के दूध के समान, महातरंगों से युक्त चंचल दृष्टिपातों से उन्हें मानो स्नान करा रही है। उनकी इच्छा है कि यह मुहूर्त सदा ही बना रहे किन्तु जब वे विचार करते हैं तो खेद पूर्वक कहते हैं कि यह बात कैसे हो सकती है ? क्योंकि विधाता की रचनायें संयोग और वियोग से मिश्रित होती हैं।[36]

यहाँ पर धीरोदात्त नायक राम में धीर ललित नायक की भाँति कुछ विशेषतायें प्रकट होती हुई दिखायी देती हैं। वे कोमल स्वभाव के तो हैं ही सुखादि में निमज्जन करने की भी उनकी इच्छा बलवती दिखायी देती है।

अनर्घराघवम् नाटक में राम का इस तरह का चित्रण दिखायी नहीं देता है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से अनर्घराघवम् नाटक में पूर्णता दिखायी नहीं देती है.। मुरारि का चरित्रांकन सजीव और प्रभावी नहीं है।

प्रसन्नराघवम् के भी श्रीराम वीरतर हैं। शिव–धनुष भंग करने के लिये द्वीप–द्वीपान्तरों से आये हुये राजा लोग जब असमर्थ हो जाते हैं, रावण और बाणासुर भी जिस शिवधनुष को टस से मस नहीं कर पाते हैं तब उस धनुष को

राम अनायास ही खण्ड–खण्ड कर देते हैं। यह उनकी वीरता का परिचायक है। राम जनक के शोक को दूर कर सीता का पाणिग्रहण करते हैं और सबको आनन्दित कर देते हैं। इसके पश्चात् जब परशुराम वहाँ पहुँचते हैं तो राम के साथ उनका वाद–प्रतिवाद होता है। जहाँ एक ओर परशुराम क्रोधाग्नि से जल रहे हैं और अपने कठोर कुठार का भय दिखा रहे हैं वही राम अपनी अतिशय विनम्रता का परिचय देते हैं। वे तपस्वी जमदग्नि पुत्र परशुराम के आगे नतमस्तक हो जाते हैं और विनयावनत होकर उनसे निवेदन करते हैं कि चाहे मोतियों का हार कण्ठ में प्रवेश करे या आपकी तीक्ष्ण धार वाला कुठार कण्ठ मे प्रवेश करें, नारियों के नेत्रों में कज्जल वास करें या अश्रुजल वास करे, चाहे हम यहाँ सुख का अनुभव करें या प्रेताधिक यमराज का मुख देखें, चाहे जो भी हो। हम लोग ब्राह्मणों में शौर्य का प्रदर्शन नहीं करते हैं।[37]

श्रीराम अनेक प्रकार से परशुराम से अनुनय–विनय करते हैं और कहते हैं कि–आप से मेरा संग्राम किसी भी प्रकार उचित नहीं प्रतीत होता है। आप दो विरोधी गुणों से युक्त हैं। एक ओर आपका अमंगल परशु है और दूसरी ओर आपका पवित्र गोत्र है। एक ओर आपका यह उन्नत धनुष और दूसरी ओर निर्मल शील। एक ओर भयंकर युद्ध में कठोर बाण वर्षा की क्रीड़ा और दूसरी ओर कुशों और पल्लवों के विलास से सम्पन्न पर्णशाला। इन दोनों में कोई साम्य नहीं हैं।[38] वे जमदग्निपुत्र परशुराम से निवेदन करते हैं कि हे भार्गव वंश भूषण ! आप प्रसन्न

हो जाइये, क्रोध से विरत हो जाइये और चित्त में मेरी बातें धारण कर लीजिये। चिरकाल तक अनेक प्रयत्नों से अनेक बार आपने जिस यश से युक्त चरित्र की रक्षा की है उसे जुआंड़ी के द्वारा धन की तरह चंचलता से विनष्ट मत कीजिये।[39]

जब राम परशुराम द्वारा प्रदत्त वैष्णव धनुष का शर–सन्धान कर देते हैं, तो परशुराम को उनके अवतारी होने की बात विदित हो जाती है। वे कहते हैं कि वे ही पुराण पुरूष विष्णु इस धनुष को उठाने के लिये बाल रूप में अवतरित हुये हैं।[40] अन्त में, परशुराम श्रीराम की वन्दना करते हुये वहाँ से वन की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। इस प्रसंग से राम की धीरता, वीरता, उदारता और विनम्रता आदि गुण अपने सौन्दर्य के साथ प्रस्फुटित होते हैं।

कैकेयी के निर्देशानुसार राम जब सीता के साथ वनगमन करते हैं और वहाँ रावण के द्वारा सीता का अपहरण कर लिया जाता है तब राम साधारण मानव की तरह अपनी प्रियतमा के वियोग में आकुल और व्याकुल हो जाते हैं। उनका वियोग इतना तीव्रतर हो जाता है कि वे रात्रि में भी चन्द्रमा को देखकर सूर्योदय की बात करते हैं। वे चन्द्रवदनी मृगनयनी अपनी प्रेयसी जानकी के लिये अनेक प्रकार से अपनी व्यथा को व्यक्त करते हैं।[41]

वे सामान्य जन की तरह विलाप करते हैं और कहते हैं कि यह चक्रवाक चन्द्रोदय होने पर प्रिया से बिछुड़ जाता है और सूर्योदय होने पर पुनः प्रिया का संगम प्राप्त कर लेता है किन्तु मैं ऐसा भाग्यहीन हूँ कि सीता से बिछुड़े हुये मेरे

सैकड़ों चन्द्रोदय और सूर्योदय व्यतीत हो चुके हैं।[42] वे जब गोदावरी नदी के तट और वहाँ पर स्थित आश्रमों को देखते हैं तो उन्हें वहाँ सीता के साथ घूमते हुये पूर्ववर्ती दिनों की याद आ जाती है जिससे वे भाव–विह्वल हो जाते हैं और वे कहते हैं कि सदैव प्रसन्न रहने वाली सीता अपने वचनामृतों से मुझे गोदावरी के कमलों और तरंगो की चेष्टाओं को दिखाया करती थी।

कवि ने यहाँ पर राम का विप्रयुक्त साधारण मानव के रूप में सफल चित्रण किया है। उनके इस रूप में कहीं भी अवतारी पुराण–पुरूष के रूप का आरोप प्रतीत नहीं होता है। कवि का यह चित्रांकन उसकी सफलता का परिचायक है। राम एक साधारण मनुष्य की तरह प्रिया के वियोग में रोते बिलखते हैं जिससे नाटक के दर्शक जनों के मन में अनायास ही करूण रस की सृष्टि हो जाती है।

क्रूर रावण ने जब विभीषण पर शक्ति का प्रयोग किया था तो विभीषण को पीछे कर लक्ष्मण ने उसे अपने वक्ष–स्थल से ग्रहण किया था। राम ने अपनी बाण–वर्षा से रावण को लौटने के लिये बाध्य कर दिया था और दूसरी ओर मूर्च्छित अपने अनुज लक्ष्मण को अंक में लिये हुये शोकाकुल हो गये। वे विलाप पूर्वक कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! तुम अपने नेत्र कमल विकसित करो, तुम सूर्यवंश के भाग्य हो, राम के जीवन हो और उर्मिला के नेत्रांजन हो, तुम्हारा असमय में अस्तमित होना ठीक नहीं है।[43] वे आगे कहते हैं कि मैं अपनी छोटी माता सुमित्रा के अश्रु–प्रवाहों को कैसे रोक पाऊँगां ? लक्ष्मण के बिना मैं कैसे जीवित रहूँगा और

फिर भाई लक्ष्मण के बिना मैं अयोध्या में कैसे प्रवेश करूँगा ?[44]

उपर्युक्त कथन से राम की सहृदयता, भ्रातृ प्रेम और माता सुमित्रा के प्रति उनका उत्तरदायित्व बड़ी चारूता के साथ प्रस्फुटित हुआ है। नाटककार जयदेव राम के उक्त रूप का चरित्रांकन करने में अत्यन्त सफल हुये हैं। अन्त में जब राम रावण का वध कर देते हैं तो उनकी वीरता सहसा प्रकट हो जाती है। सज्जनों का परित्राण,दुष्टों का विनाश, धर्म की संस्थापना यही तो राम के जीवन के उद्देश्य हैं।

राम जब अयोध्या लौटते हैं तब अपने पूज्य गुरूवशिष्ठ, माताओं, भ्रातृजनों, परिजनों और पुरवासियों सभी से मिलते हैं। यह उनकी विनम्रता का चित्रण है जिसे कवि ने बडी सुन्दरता के साथ नाटक में प्रदर्शित किया है। राम का चरित्र अनुपम है। उन्होंने अपने माता और पिता की आज्ञा का पालन किया है। अपने गुणों से अपनी यशः पताका फहराई है। उन्होंने सुग्रीव और विभीषण को राजा बना दिया है। देव शत्रु रावण को युद्ध में कीर्ति शेष बना दिया है और हर्ष के अश्रुओं से भरे हुये नेत्रों वाले भरतादि बन्धुओं का साक्षात्कार किया है।

चरित्रांकन की दृष्टि से उभयनाटकों का अनुशीलन करने के पश्चात् विदित होता है कि अनर्घराघवम् के प्रणेता कविवर मुरारि चरित्र–चित्रण के सन्दर्भ में उतने सशक्त हस्ताक्षर नहीं है जितने प्रसन्नराघवकार कविवर जयदेव हैं। जयदेव का चरित्र–चित्रण सबल और बिम्बग्राही है जबकि मुरारि कृत चरित्र चित्रण

वर्णनात्मक और शक्तिहीन है। मुरारि के नाटक में भाव–संवेदना की तीव्रानुभूति का अभाव है। पाण्डित्य प्रदर्शन के कारण रसानुभूति में कुछ बाधा होती हुई प्रतीत होती है किन्तु इनकी तुलना में जयदेव सरस, कोमल, काव्य–कौशल–कला में प्रवीण नाटककार हैं जिसके कारण उन्हें अधिक सफलता मिली है। इस प्रकार दोनों ही नाटककार अपनी क्षमता के अनुसार धीरोदात्त नायक राम के चरित्र–चित्रण में अपने प्रयासों और प्रयत्नों को प्रदर्शित करने में सफल हुये हैं।

नायक के सहायक पात्र :

नाटक में नायक के अनेक साथी और सहायक उपनिबद्ध किये जाते हैं। इनमें सर्वप्रथम पताका नायक होता है। उसे पीठमर्द भी कहते हैं। पताका नायक चतुर तथा बुद्धिमान होता है। यह प्रधान नायक का अनुचर तथा भक्त होता है। यह प्रधान नायक की अपेक्षा गुणों में कुछ न्यून होता है।[45]

उभयनाटकों अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् में रामायण की भाँति राम का सहायक सुग्रीव है जिसे पीठमर्द भी कहा जाता है। इसे पताका नायक भी कहते हैं। सुग्रीव चतुर तथा बुद्धिमान है, राम का अनुचर और भक्त है। दोनों ही नाटकों में सुग्रीव का कोई विशेष चरित्रांकन प्राप्त नहीं होता है। नाटक के अन्त में, सुग्रीव राम के साथ विमान में आरूढ़ होकर अयोध्या आते हैं। मार्ग में परिचित स्थानों का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार नायक के अन्य प्रमुख सहायक लक्ष्मण, हनुमान्, जाम्बवान् आदि हैं किन्तु इन पात्रों का कोई सारगर्भित चरित्र–चित्रण

नहीं प्राप्त होता है। दोनों ही नाटक सबल चरित्रांकन हेतु उदासीन हैं।

नायिका :

नाट्य–शास्त्र तथा दशरूपक के अनुसार नाटकों में नायिका का भी उतना ही महत्व है जितना नायक का होता है। स्थूल रूप से नायिका के तीन भेद माने जाते हैं–

(1) स्वकीया (2) परकीया और (3) सामान्या या साधारण स्त्री।[46]

1- स्वकीया :

यह नायक की स्वयं की विवाहिता पत्नी होती है यथा अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् नाटकों की नायिका सीता है।

2- परकीया :

यह नायिका नायक की पत्नी नहीं होती है। यह तो किसी व्यक्ति की अविवाहिता नारी हो सकती है या तो किसी की विवाहिता पत्नी। पर नारी या पर पत्नी का नाटकों में नायिका के रूप में प्रयोग नीति और धर्म के विरूद्ध होता है। इसलिये नाटकादि में परकीया नायिका का प्रयोग नहीं किया जाता है।

3- सामान्या :

इसे साधारण स्त्री या गणिका कहते हैं। अनेक रूपकों में विशेष रूप से प्रकरण आदि में इसका प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये–मृच्छकटिकम् की नायिका वसन्तसेना गणिका है।

हम देखते हैं कि अवस्था और प्रकृति के अनुसार नायिका के आठ भेद होते हैं।[47]

नायक के गुणों की भाँति नायिका में भी गुणों की स्थिति मानी जाती है। नायिका के ये गुण उनके आभूषण या अलंकार कहे जाते हैं। ये अलंकार गणना में बीस हैं। इन बीस अलंकारों में प्रथम तीन शारीरिक गुण हैं, दूसरे सात अयत्नज गुण हैं तथा शेष दस स्वभावज गुण हैं जो निम्नवत् हैं–

भाव, हाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य, क्रीड़ा, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किल्किंचत् मोहायित, कुट्टमित्, विब्बोक, ललित तथा विहृत आदि।[48]

सीता :

जनक पुत्री सीता अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् दोनों ही नाटकों की नायिका है। वह नायक श्रीराम की स्वकीया पत्नी है। उसके पिता विदेह राज जनक सीता के विवाह के लिये स्वयंवर आयोजित करते हैं जिसमें उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो शिव–धनुष का भंजन कर देगा, उसी के साथ का सीता का परिणय होगा। नायक राम ने जनक की यह प्रतिज्ञा पूर्णकर दी थी इसलिये नायक राम के साथ सीता का विवाह हो जाता है। सीता उनकी स्वकीया नायिका है। सीता में शील, लज्जा और आर्जवादि गुण विद्यमान हैं। श्रीराम उनके अनुकूल नायक है। जो नायक एक ही नायिका के प्रति आसक्त रहता है और स्वप्न में भी दूसरी नायिका

के प्रेम की बात नहीं सोंचता है वही अनुकूल नायक होता है। श्रीराम में यह गुण दृढ़ता के साथ विद्यमान है।

सीता का प्रेम सुख और दुःख दोनों ही अवस्थाओं में एक सा है। सीता का यह प्रेम हृदय को शान्ति देने वाला है। प्रौढ़ावस्था के आने पर भी उसकी समरसता में कमी नहीं होती है। आदर्श नायिका का ऐसा सच्चा कल्याणकारी अद्वैत प्रेम जो समय के व्यतीत होने पर परिपक्व स्नेह में स्थित है, जिसमें समय ने बीच के आवरण को हटा दिया है, किसी तरह ही प्राप्त किया जा सकता है। सीता और राम का प्रेम ऐसा ही अद्वैत प्रेम है।

अनर्घराघवम् के नाटककार कविवर मुरारि ने अपने नाटक में सीता के चरित्र का प्रकाशन अत्यल्प मात्रा में ही किया है। कहीं भी इस तरह का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है जिससे सीता की चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन हो सके। सप्तम अंक में रावणवध के पश्चात् जब श्रीराम सीता तथा अन्य लोगों के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हैं; उस समय सीता राम से युद्ध के भिन्न–भिन्न स्थानों और घटनाओं के बारे में अनेक प्रश्न पूँछती है। मार्ग में सागर, सेतुबन्ध, मैनाक पर्वत, पुष्पक विमान से आकाश–यात्रा, हिमालय पर्वत, कैलाश पर्वत, चन्द्रोदय, लोपामुद्रा और अगत्स्य मुनि का आश्रम, जनस्थान, दण्डकवन, काँजीवरम्, गंगा–यमुना, प्रयाग, सरयू, अयोध्या, गुरूवर वशिष्ठ, कौशल्यादि माताऐं भरतादि बन्धुजन और पुरवासी जनों से मिलकर तथा देखकर सुख–दुख, हर्ष और

विषाद आदि भावों का प्रकटीकरण दिखायी देता है।

कविवर मुरारि का चरित्र–चित्रण अत्यन्त दुर्बल है। एक नाटककार को नायिका के चरित्र–चित्रण में जितना कौशल दिखाना चाहिये उसे मुरारि प्रदर्शित नहीं कर सके हैं। एक सफलनाटक में सबल चरित्राँकन अत्यन्त आवश्यक होता है। अनर्धराधवम् नाटक में आद्योपान्त सीता लगभग मौन और शान्त है। विभिन्न अवसरों पर होने वाली मार्मिक घटनाओं के सन्दर्भ में सीता का चरित्रांकन कवि को करना चाहिये लेकिन उसने अपनी ऊर्जा अनावश्यक वर्णनों में ही खर्च कर डाली है।

प्रसन्नराघवम् नाटक में जब सीता चण्डिकायतन में दुर्गापूजन हेतु अपनी सखियों के साथ आती है तो मनोहर पुष्पवाटिका में उसका सौन्दर्य वहाँ पहले से ही विद्यमान राम के चित्त में कौतूहल पैदा कर देता है। वहाँ सरोवर में श्वेत कमल विकसित हैं और मद से मधुर हंसों की ध्वनि चित्त में हल–चल पैदा कर देती है। सीता के नूपुरों की ध्वनि विलास के साथ चलने के कारण राम को बरबस अपनी ओर आकर्षित करती है।[49] राम कहते हैं कि–क्या यह राजकुमारी है तो मैं उसे अवश्य देखूँगा ? राम सीता को देखकर हर्ष और कौतुक के साथ उसकी रमणीयता की प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि श्याम निकषोपल पर खचित सुवर्ण की रेखाओं के सदृश, सुवर्ण कदली के आभ्यन्तर भाग के सदृश पीतवर्ण, हल्दी के रस के सदृश शोभा-प्रवाह को धारण करने वाले अंगों से उपलक्षित एवं

काम—क्रीडा के भवन की वलभी में दीपशिखा के समान यह कौन सुन्दरी प्रादुर्भूत हो रही है ?[50]

राम सीता की सुन्दरता का वर्णन करते हुये कहते हैं कि सीता अपने चरणों से विकसित रक्त कमलों की कान्ति को पराभूत कर रही है, अपने हाथों से नव किसलयों की अरूणिमा को ग्रहण कर रही है, ओष्ठों के अग्रभाग से प्रवालों की कान्ति का पान कर रही है और मन्द हास्य के कान्ति प्रवाहों से चन्द्रमा की कान्ति का उपहास कर रही है।[51]

सीता बड़े धार्मिक विचारों वाली है। उसमें भारतीय संस्कृति के गुण कूट—कूट कर भरे हुये हैं। वह चण्डिका मन्दिर में जाकर दुर्गा के चरणों में प्रणाम करती है और कहती है कि हे चन्द्रशेखर महादेव की अर्द्धांगिनी ! त्रिभुवन रूपी घर में निवास करने वाली ! आपको बारम्बार प्रणाम है। साथ में विद्यमान सखी दुर्गा जी से प्रार्थना करती है कि मेरी सखी सीता आपकी कृपा से शीघ्र ही सहज सुन्दर वर को प्राप्त कर ले। सखी के द्वारा की गयी इस वर प्रार्थना को राम भी बड़ी अभिलाषा के साथ सुनते हैं। वे कहते हैं कि बाल्यावस्था के बीत जाने पर युवावस्था के आने की इच्छा करने पर, मुग्धावस्था के बीतने पर और चातुर्य के अलिंगन करने में रसिक होने पर सुन्दरी सीता के जिस शरीर को किसी भी अवस्था ने स्पर्श नहीं किया है, वैसा यह कामदेव का श्रेष्ठ मर्म होता हुआ इस संसार में उत्कर्ष पूर्वक रह रहा है।[52] सखी दुर्गा जी से प्रार्थना करती है कि वह

उसका मनोरथ शीघ्र पूर्णकर दे जिससे यह सखी दुखी न हो। इस पर सीता प्रणय पूर्ण कोप के साथ कहती है कि मैं क्यों दुखित होऊँगी ? लक्ष्मण सीता की इस मानसिक स्थिति को समझते हुये अपने मन में कहते हैं कि–हे राजहंस कन्यके ! तुम्हें दुखित होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा यह प्रियतम आम्रवृक्ष की शाखा में व्यवहित खड़ा है।

सीता राम की कण्ठ ध्वनि को सुनती है और उसकी खोज के लिये सखियों को प्रेरित करती है। सीता लताओं की ओट में इधर–उधर देखती है। राम की व्याकुलता बढ़ने लगती है। सीता उस सहकार वृक्ष को देखना चाहती है क्योंकि उसकी माताएँ वासन्ती लता से उसका विवाह कर देने की इच्छा रखती हैं। वहाँ पर सीता को खड़े हुये राम दिखायी देते हैं। राम सीता को ही वासन्ती लता समझ बैठते हैं। सखी सीता से कहती है कि यह वासन्ती लता स्वयं ही आम्रवृक्ष का आलिंगन करने के लिये आगे बढ़ रही है। इस पर सीता बनावटी क्रोध के साथ आगे चले जाने की बात कहती है। राम को देखकर सीता कहती है कि विकसित कोमल नील कमलों के पत्र समूह के समान नीलवर्ण महादेव के सौम्य शेखर में प्रकाशित चन्द्र के समान कोमल, कामदेव के रूप को पराभूत करने वाला लता गृह में अवस्थित यह कौन पुरूष मेरे नयनों को सुख दे रहा है।[53]

सीता लता की ओर बिल्कुल नहीं देख रही है। वह राम की ओर अन्यमनस्क हो गयी है। राम की अनुपम झाँकी सीता के हृदय में अवतरित हो गयी

है। सखी के इन वचनों से सीता लज्जित हो जाती है और कृत्रिम कोप का भी अभिनय करती है। सखी और सीता का परस्पर मधुरालाप होता है। राम सीता को आकाश यमुना के तरंग–समूह के समान गहन चित्र करते हैं। सखियाँ राम के प्रति सीता की कामासक्तता को समझ जाती हैं। सीता मन ही मन राम के मुख कमल के मकरन्द का पान भरपूर कर लेना चाहती है। राम के लिये सीता नवयौवन का सर्वस्व है, भोग का भवन है, लोचनों का भाग्य है, यौवनमद के विलास का सौभाग्य है, संसार का सार है, जन्म का सत्परिणाम है, कामदेव का प्रिय स्थान है, राम का हृदय है, राग की पराकाष्ठा है, शृंगार का रहस्य है, कुवलयलोचना सीता का यह अनिर्वचनीय दर्शन इस प्रकार का है।[54]

राम इस मुहूर्त के सदैव विद्यमान रहने की कल्पना करते हैं। सीता वहाँ से जाने वाली है। इससे वह समझ जाते हैं कि यह बात कैसे हो सकती है क्योंकि ब्रह्मा की रचनायें संयोग और वियोग से मिश्रित होती हैं[55] किन्तु सीता का मन नायक के प्रति इतना अनुरक्त है कि वह भी नायक की भाँति वहाँ से घर जाने का मन नहीं करती है।

प्रस्तुत अवसर पर नाटककार जयदेव ने सीता के मन का मार्मिक चित्रण किया है। नायिका का नायक से प्रथम मिलन पुष्प वाटिका में दुर्गा पूजन के व्याज से होता है। प्रस्फुटित कमल, सरोवर, चन्द्रोदय, विकसित नाना प्रकार के पुष्प, हंसो का कलरव, सहकार और वासन्तीलता, सम्पूर्ण पुष्पवाटिका नायक–नायिका

के मन में शृंगार रस निष्पत्ति हेतु उद्दीपन विभाव का काम करते हैं। प्रस्तुत अवसर पर नियन्त्रित होते हुये भी शृंगार रस छलकता हुआ सा प्रतीत होता है। नाटककार जयदेव नायिका के मनोभावों का सांगोपांग चित्रण करने में अत्यन्त सफल हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में वर्णित पुष्प वाटिका प्रसंग की प्रेरणा यहीं से प्राप्त की है। नाटककार मुरारि इस प्रकार का चित्रण अपने नाटक में नहीं कर पाये हैं।

नायिका की सहायिकाएं:

उभय नाटकों में नायिका की सहायिका का वर्णन किया गया है। अनर्घराघवम् में नायिका की सहायिका कलहंसिका है और प्रसन्नराघवम् में त्रिजटा है। अन्य नदी पात्र भी प्रसन्नराघवम् में नायिका की सहायिका के रूप में चित्रित किये गये हैं। इन नदी पात्रों का मानवीकरण किया गया है। नदी पात्रों में प्रमुख हैं– गंगा, यमुना, सरयू, गोदावरी और तुंगभद्रा आदि। वनवास काल में ये नदी पात्र सीता के साथ सहयोग करते हैं और उनके दुख से दुखी होते हैं। अनर्घराघवम् नाटक में मुरारि ने नदी पात्रों का संयोजन नहीं किया है। चरित्र–चित्रण की दृष्टि से अनर्घराघवम् की अपेक्षा प्रसन्नराघवम् श्रेष्ठ है किन्तु यदि सत्य पूँछा जाये तो चरित्र–चित्रण के क्षेत्र में दोनों ही नाटक दुर्बल प्रतीत होते हैं। दोनों नाटकों में हास्यकृत् विदूषक आदि का प्रयोग नहीं किया गया है।

प्रतिनायक :

प्रतिनायक नायक का शत्रु होता है और नायक की फल प्राप्ति में विघ्न

पहुँचाता है। यह प्रतिनायक लोभी, धीरोद्धत, घमण्डी, पापी तथा व्यसनी होता है।[56] दोनों ही नाटकों में प्रतिनायक के रूप में रावण का वर्णन किया गया है। सीता स्वयंवर के अवसर पर प्रसन्नराघवम् नाटक में रावण और बाणासुर आते हैं और अपने-अपने बल का वर्णन करते हैं। एक समय ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनों ही सीता स्वयंवर में विघ्न पैदा करेंगे किन्तु असमर्थता देखकर ये दोनों वहाँ से चले जाते हैं। अनर्घराघवम् के वर्णनानुसार इस अवसर पर रावण स्वयं नहीं आता है प्रत्युत वह इस स्वयम्वर में अपने राज पुरोहित शौष्कल को भेजता है जो जनक से रावण की शक्ति का वर्णन करता है और रावण के लिये सीता की याचना करता है।

कालान्तर में वनवास काल में रावण एक साधु का वेष बनाकर सीता का हरण करता है। मार्ग में जटायु से उसका संग्राम होता है। वह जटायु का वध कर देता है और सीता को लंका ले जाकर अशोक वाटिका में ठहरा देता है। वह सीता से अपना प्रणय निवेदन करता है लेकिन सीता उसे ठुकरा देती है। विभीषण रावण को बहुत समझाता है कि विपुल सम्पत्ति चाहने वाले और अपना कल्याण चाहने वाले को चतुर्थी की चन्द्रलेखा की भाँति पर नारी के ललाट का दर्शन नहीं करना चाहिये किन्तु रावण क्रोध वश विभीषण की बात पर ध्यान नहीं देता है और पाद प्रहार कर उसे वहाँ से भगा देता है। रावण, श्रीराम और लक्ष्मण के साथ अनेक प्रकार से युद्ध करता है किन्तु अन्ततः पराजित होता है और मारा जाता है।

रावण में प्रतिनायक के सभी गुण विद्यमान हैं किन्तु उभय नाटकों में चरित्रांकन की दुर्बलता विद्यमान है। यद्यपि प्रसन्नराघवम् नाटक में रावण के चरित्र का चित्रण करने का भरपूर प्रयास किया गया है। रावण अन्त तक घबराता नहीं है और अपने दर्प के कारण अन्तिम समय तक राम से लड़ता है। वह शकुन–अपशकुन की चिन्ता नहीं करता है। वह सर्वदा विजय के लिये उत्कण्ठित रहता है। वह अपनी तलवार के लिये कहता है कि मेरी तलवार अहिरावत आदि देवगजों के मस्तकों से निकली हुई मोतियों से अधिष्ठित आकाश में विचरण करने वाले राक्षसों के हर्ष को बढ़ाने वाली अब प्रादुर्भूत होगी।[57]

विद्याधरों के वर्णन से प्रतीत होता है कि रावण वीरवर था। वे कहते हैं कि अपनी सेना की रक्षा के लिये कपाट के समान वक्ष स्थल में पड़ने वाले कठोर वज्र प्रहारों में भी मुस्कुराने वाले रावण के विषय में क्या कहा जाये ? विस्तीर्ण आकाश रूप तालाब में क्रीड़ा करने वाले जिसके कर–कमलों के वन में चोटी पर चन्द्रशेखर को रखने वाले कैलाश ने भी हंस के समान आचरण किया था,[58] वह रावण अनायास ही शिव पर्वत कैलाश को उठा लेता है, तीनों लोकों को आपद्ग्रस्त कर देता है, लंका के सन्ताप को अनायास ही दूर कर देता है। स्वर्ग स्थित देव ललनाओं को बन्दी बना लेता है। वह पंचानन के समान अपने पराक्रम से त्रिलोकी को अविभूत कर लेता है। वह निश्चय ही वीर है किन्तु अधर्म पथ में प्रवृत्त होने के कारण श्रीराम की पतिव्रता पत्नी सीता का बलात् अपहरण कर लेता है

जिससे उसकी विजय के सभी मनोरथ विफल हो जाते हैं। जिस प्रकार अन्ततः खलों के मनोरथ पूर्ण नहीं होते हैं और अन्त में उन्हें पराजय का मुख देखना पड़ता है उसी प्रकार रावण भी अन्त में श्रीराम के बाणों से व्यथित होता है और पराजित होता है।

रावण अधर्म और दुष्टता का प्रतीक है। रावण शब्द का शाब्दिक अर्थ है– 'रावयति इति रावणः अर्थात् जो सबको रूलाता है उसे रावण कहते हैं। वह अन्धकार के पथ में जीवनभर भटकता रहता है। उसे कभी शान्ति नहीं मिली फिर भी उसने अपनी वीरता के दम्भ में कभी पराजय स्वीकार नहीं की। वह वीर था और शास्त्रज्ञ भी था किन्तु कुपथगामी था। यह निश्चित सिद्धान्त है कि प्रचुर धन–सम्पत्ति चाहने वाले सज्जनों के द्वारा चतुर्थी के चन्द्रमा के समान पर नारी के ललाट पटल का दर्शन नहीं किया जाना चाहिये[59] किन्तु रावण इस सिद्धान्त की सदैव अवहेलना करता रहा है। उसका सिद्धान्त था कि परनारियों के कुच कलशों पर और शत्रुओं के गजों के कुम्भों पर भीरू पुरूषों की दृष्टियाँ और बाण वृष्टियाँ नहीं पड़ती है।[60]

रावण परनारी से प्रेम करने की आतुरता वाला चरित्र है। वह परनारी प्रणय–प्रसंग को वीरता का प्रमाण मानता है। विभीषण ने रावण से कहा था कि–महादेव के सिर में क्रीड़ा करने वाली, निर्मल आकाश गंगा का अनायास ही जिसका यश चारो दिशाओं में फैल गया हो, ऐसे होकर भी आप सीता में अनुरक्त

होकर इस प्रकार पुलत्स्य ऋषि की सन्तति परम्परा के यश रूपी चन्द्र के कलंक क्यों हो रहे हैं ? किन्तु विभीषण की ये बातें सुनकर रावण क्रोध से लाल और चंचल नेत्रों वाला हो जाता है और अन्त में, नीति और धर्म की बात कहने वाले विभीषण के वक्ष–स्थल पर चरण प्रहार करता है।[61]

लंकेश्वर रावण नीति और धर्मरूप अलंकारों से सम्पन्न जब विभीषण के वक्षस्थल पर पाद–प्रहार करता है तो इसके साथ ही वह अपने विपुल वैभव को भी चरणों से प्रताड़ित कर देता है।[62] रावण कामी और क्रोधी है। कामी को सदैव नारी प्रिय होती है इसलिये वह कहता है कि सीता कामदेव के बाणों की तरह उसके हृदय में प्रविष्ट कर गयी है। रावण का मन अपनी पत्नी मन्दोदरी के प्रति भी उतना आकर्षित नहीं होता है जितना पर नारी सीता के प्रति आकर्षित है। यही उसके चरित्र की दुर्बलता है। जहाँ श्रीराम एकनारी व्रत धारी हैं वहीं रावण परनारी प्रेमाकर्षण का दास है। यही बात उसके पराजय और पराभव का कारण बनती है। शास्त्रों का गुरू गम्भीर पण्डित होते हुये भी अपनी चारित्रिक दुर्बलता के कारण वह उपहास का पात्र बनता है और अन्त में पराभूत होकर दिवंगत हो जाता है किन्तु उसकी कलंकमयी कीर्ति बनी रहती है।

दोनों ही नाटकों में लगभग समान रूप से रावण के चरित्र–चित्रण का अंकन किया गया है। धर्म से अधर्म पराजित होता है, प्रकाश से अन्धकार दूर होता है, नीति से अनीति पराजित होती है, सन्मार्ग से कुमार्ग विनष्ट होता है और

चारित्रिक बल से दुश्चरित्रता का अन्त होता है।

दोनों ही नाटककारों ने प्रतिनायक रावण के चरित्र–चित्रण का गुम्फन अपनी सामर्थ्य और क्षमता के अनुसार किया है। इस चरित्रांकन में पूर्ववर्ती ग्रन्थों तथा अनेक रामकथा प्रधान नाटकों की छाया विद्यमान है। प्रतिनायक रावण के सहायक माल्यवान् शुकसारण, करालक इत्यादि हैं जिनका चरित्र–चित्रांकन विस्तारभय से यहाँ अपेक्षित नहीं है।

पाद टिप्पणी
अध्याय – 4

1. वस्तुनेता रसस्तेषां भेदकः ।
   दशरूपक 1.11 पृ0, 07 ।।
2. नेताविनीतोमधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
   रक्तालोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशस्थिरोयुवा ।।
   बुद्ध्युत्साहस्मृति– प्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
   शूरोदृढश्चतेजस्वी शास्त्रज्ञश्चधार्मिकः ।। दशरूपक, 2.12 पृ0, 75 ।।
3. भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतेरयम् । दशरूपक 2.3 पृ0, 79 ।।
4. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखीमृदुः ।। दशरूपक, 2.3 पृ0, 79 ।।
5. राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवैन्यस्तः समस्तोभरः,
   सम्यक् पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।
   प्रद्योतस्यसुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं,
   कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ।। रत्नावली–1.9 पृ0, 13 ।।
6. सामान्यगुण युक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः । दशरूपक 2.3 पृ0–80 ।।
7. महासत्वोऽतिगम्भीरः, क्षमावानविकत्थनः ।
   स्थिरो निगूढाहंकारो, धीरोदात्तो दृढ़ व्रतः ।। दशरूपक, 2.4 पृ0, 81 ।।
8. दशरूपक 2.6,7 पृ0, 87–91 ।
9. शोभाविलासो माधुर्य, गाम्भीर्य स्थैर्यतेजसी ।
   ललितोदार्यमित्यष्टो, सात्विकाः पौरूषागुणाः ।। दशरूपक, 2.10 पृ0, 94 ।।
10. ब्रह्मज्योतिर्विवर्तस्य चतुर्धा देहयोगिनः ।
    ऋष्यशृंगचरोरंशः प्रथमोऽयं महाभुजः ।। अनर्घराघवम् 1.50 ।।
11. ये मैत्रावरूणिं पुरोहितवतो वंशे मनोर्जज्ञिरे,
    तास्ता वैनयिकीः क्रिया विदधिरे येषां च युष्मादृशः ।
    तेषामंचलमेष ते दशरथः संप्रत्यमी ये पुन–
    र्जातास्ते ध्रुवमृष्यशृंगतपसामैश्वर्यमिक्ष्वाकवंः ।। अनर्घराघवम्, 1.15 ।।
12. तपः कृशतरैरंगैः स्रष्टुमाकारितैरिव ।
    सायं प्रातरमी पुण्यमग्निहोत्रं प्रयुज्यते ।। अनर्घराघवम्, 2.19 ।।
13. अनर्घराघवम्, 2.29 ।।
14. पूषा वशिष्ठः कुशिकात्मजोऽयं त्रयस्त एते गुरवो रघूणाम् ।
    महानुरेरस्य गिरा कृतोऽपि स्त्रैणो वधो मां न सुखा करोति ।। वही, 2.67 ।।
15. कलहंसिका– (कथं महाकुलप्रसूता एतेऽपि कुमारकाः ।)
    अनर्घराघवम्, 3, पृ0 सं0, 131 ।।

16. विश्वामित्रः— वत्स रामभद्र, धनुर्गृहोपसर्पणमभ्यनुजानाति ते जनकान्वय पुरोधाः ।
    रामः— यदादिशन्ति गुरवः । (इति सविनयलज्जाकौतुकं परिक्रम्य लक्ष्मणेन सह निष्क्रान्तः ।) अनर्घराघवम्, 177 तृतीय अंक ।

17. रामः— बालस्वभावसुलभेन कुतूहलेन,
    कृष्टं धनुर्भगवतो वृषभध्वजस्य ।
    तत्रानुषंगिकममंगलमीदृशं तु,
    संवृत्तमत्र न मया गणितस्त्वमासीः ।। अनर्घराघवम्, 4.31 ।।

18. रामः— स्त्रीषु प्रवीरजननी जननी तवैव,
    देवी स्वयं भगवती गिरिजापि यस्यै ।
    त्वद्दोर्वशीकृतविशाखमुखावलोक—
    व्रीडाविदीर्णह्वदया स्पृहयांबभूव ।। वही, 4.33 ।।

19. रामः— जातः सोऽहं दिनकरकुले क्षत्रियश्रोत्रियेभ्यो,
    विश्वामित्रादपि भगवतो दृष्टदिव्यास्त्रपारः ।
    अस्मिन्वंशे कथयतु जनो दुर्यशो वा यशो वा,
    विप्रे शस्त्रग्रहणगुरूणः साहसिक्याद्विभेमि ।। वही, 4.49 ।।

20. रामः— (सरोषम्!) आः जामदग्न्य, केयं वाग्विभीषिका । दूरमतिक्रामति प्रसंगे कदाचिदिक्ष्वाकवोऽपि दुर्मनायन्ते ।
    अनर्घराघवम्, पृ0, 241 (चतुर्थ अंक)

21. ऋषे जामदग्न्य, पटच्चरीभूता खल्वियं पुरातनी कीर्तिपताका ।
    अनर्घराघवम्, पृ0, 245 ।।

22. तन्मे वरद्वयमुरीकृतपूर्वमेव,
    याचे बिभर्तु भरतस्तव राज्यलक्ष्मीम् ।
    वर्षाणि तिष्ठतु चतुर्दश दण्डकायां,
    सौमित्रिमैथिलसुतासंहितश्च रामः ।। अनर्घराघवम्, 4.66 ।।

23. रामः— यदादिशत्यम्बा । (इति शिरसि पत्रिकां दत्त्वा ।) वत्सं लक्ष्मण, निजामस्मदाराधनसहाध्यायिनीं प्रजावतीमादाय पुरो भव ।।
    वही, पृ0 256 ।।

24. कुले वा शौर्ये वा भुजसमुदये वा तपसि वा,
    बभूवुर्न प्रांचस्त्वमिव भवितारो न चरमे ।
    अहो दिंगमोहस्ते समजनि चिरादेष न खलु,
    प्रवीराणां पन्था दशवदन येनासि चलितः ।। अनर्घराघवम्, 5.13 ।।

25. सहज धैर्यवशंवदवृत्तयो ह्वदि रूषश्च शुचश्च नियन्त्रिताः ।
    इह तु किं करवै यदपत्रपा किमपि मामवमत्य विजृम्भते ।। वही, 5.16 ।।

26. हा सीरध्वजराजपुत्रि स तदा दृष्टस्त्वया धन्यया ।
पक्षीन्द्रो दशकण्ठकुंजरशिरःसंचारिपंचाननः ।। अनर्घराघवम्, 5.17 ।।

27. जानन्नेव दशाननोऽपहरते नः प्रेयसीमस्ति वा
चन्द्रापीडमुपासितुं स हि शिरोदाम स्वयं कृत्तवान् ।
तत्त्रासो रजनीचरस्य न पुनः कण्ठाटवीकर्तना–
द्विग्बाणैर्मम चन्द्रहासहतकक्षुण्णोऽयमध्वा वृतः ।। अनर्घराघवम्, 5.26 ।।

28. मारीचमृगयाव्यग्रे मयि प्राप्ते च रावणे ।
आसामिव कुरंगीणां तवोत्पश्यामि लोचने । अनर्घराघवम्, 5.30 ।।

29. सप्त तालानयं भित्वा बालिप्रहरणीकृतान् ।
हत्वा च बालिनं बाणो रामतूणीरमागतः ।। अनर्घराघवम्, 5.52 ।।

30. आदाय प्रतिपक्षकीर्तिनिवहान्ब्रह्माण्डमूषान्तरे,
निर्विघ्नं धमता नितान्तमुदितैः स्वैरेव तेजोग्निभिः ।
तत्तादृक्पुटपाकशोधितमिव प्राप्तं गुणोत्कर्षिणा
पिण्डस्थं च महत्तरं च भवता निःक्षारतारं यशः ।। वही, 7.137 ।।

31. इह मधुपवधूनां पीतमल्लीमधूनां,
विलसति कमनीयः काकली सम्प्रदायः ।
इह नटति सलीलं मंजरी वंजुलस्य,
प्रतिपदमुपदिष्टा दक्षिणेनानिलेन ।। प्रसन्नाघवम् 2.3 ।।

32. तदलमस्माकमितोऽवलोकनेन परस्त्रीति शंकापि संकोचाय रघूणाम् ।
।। प्रसन्नराघवम् पृ० 99, द्वितीय अंक ।।

33. केयं श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखा–
लग्नैरंगैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः ।
हारिद्राम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरंवहद्भिः
कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति ।। प्रसन्नराघवम् 2.7 ।।

34. मन्मनः कुमुदानन्दशरत्पार्वणशर्वरी ।
अहो ! इयमितो नूनं पुनरप्यभिवर्तते ।। प्रसन्नराघवम् 2.15 ।।

35. सर्वस्वं नवयौवनस्य, भवनं भोगस्य, भाग्यं दृशां,
सौभाग्यं मदविभ्रमस्य, जगतः सारं, फलं जन्मनः ।
साकूतं कुसुमायुधस्य, हृदयं रामस्य, तत्त्वं रतेः,
शृंगारस्य रहस्यमुत्पलदृशस्तत् किंचिदालोकितम् ।। वही, 2.26 ।।

36. अमृतमयपयोधिक्षीरकल्लोललोलैः

स्नपयति तरलाक्षी यत्र मां नेत्रपातैः ।

अपि भवतु सदाऽयं सन्मुहूर्तः ....

(विमृश्य सविषादम्)

................कुतो वा ?

मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयो हा ! विधातुः ।। प्रसन्नराघवम् 2.28 ।।

37. हारः कण्ठं विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः,

स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु वः कज्जलं वा जलं वा ।

सम्पश्यामो ध्रुवमिव सुखं प्रेतभर्त्तुर्मुखं वा,

यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः ।। प्रसन्नराघवम् 4.23 ।।

38. क्वपरशुरशुभस्ते ? कुत्र गोत्रं पवित्रं, ?

क्व धनुरिदमुदग्रं ? निर्मलं कुत्र शीलम् ? ।

घनसमरकराला कुत्र नाराचहेला ?

कुशकिसलयलीला कुत्र वा पर्णशाला ? ।। प्रसन्नराघवम् 4.32 ।।

39. प्रसीद त्वं रोषाद्विरम, कुरू मे चेतसि गिरं,

चिरं यच्चायासैर्बहुभिरिह वारैर्जितमभूत् ।

यशोवृत्तं, वित्तं कितव इव विक्षोभतरलं,

तदेतस्मिन्वारे भृगुतिलक ! मा हारय मुधा ।। प्रसन्नराघवम् 4.35 ।।

40. बालात्मना परिणतः पुरुषः पुराणः ।। वही 4.45 ।।

41. रामः – सौमित्रे ! ननु सेव्यतां तरूतलं, चण्डांशुरूज्जृम्भते,

लक्ष्मणः – चण्डांशोर्निशि का कथा रघुपते ! चन्द्रोऽयमुन्मीलति ।

रामः – वत्सैतद्विदितं कथं नु भवता ?

लक्ष्मणः – धत्ते कुरंगं यतः ,

रामः – क्वासि प्रेयसि ! हा कुरंगनयने ! चन्द्रानने ! जानकि ! ।।

।। प्रसन्नराघवम् 6.1 ।।

42. अयमुदयति चन्द्रे विप्रयोगं प्रियायाः

श्रयति, तपति सूर्ये संगमंगीकरोति ।

मम तु जनकपुत्री–विप्रयुक्तस्य यातं

शतमधिकमपीदं चन्द्रसूर्योदयानाम् ।। वही 6.7 ।।

43. हा वत्स ! लक्ष्मण ! विकासय नेत्रपद्मे

मा गादिदं युगपदेव समस्तमस्तम् ।

भाग्यं दिवाकरकुलस्य च, जीवितं च

रामस्य, किंच नयनांजनमूर्मिलायाः । वही 7.30 ।।

44. कनीयस्या मातुः कृतचरणपातः कथमहं
        सहिष्ये मत्पार्श्वे विफलपरिवर्त्तं नयनयोः ।
    अये ! शान्तं पापं कठिन इव चेज्जीवितुमना
        विना वत्सं रामः पुनरयमयोध्यां प्रविशति ।। प्रसन्नराघवम् 7.32 ।।

45. पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः ।
    तस्यैवानुचरोभक्तः किंचिदूनश्चतद्गुणैः ।। दशरूपक, 2.8 पृ0, 92 ।।

46. स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा । दशरूपक– 2.15 पृ0, 98 ।।

47. आसामष्टाववस्थाः स्युः स्वाधीन पतिकादिकाः ।। दशरूपक, 2.23 पृ0, 113 ।।

48. यौवने सत्वजाः स्त्रीणामलंकारास्तु विंशति ।
    भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः ।।
    शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता ।
    औदार्यं धैर्यमित्येते सप्तभावा अयत्नजाः ।।
    लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिंचितम् ।
    मोहायितं कुट्टमितं विब्बोकोललितं तथा ।। दशरूपक, 2.30––32, पृ0, 121 ।।

49. राम– (कर्णं दत्वा) अये ! क एष मदकलकरिकनकशृंखलामणिरणितानुकारी मनोहारी कोऽपि कलकलः समुल्लसति ? (विमृश्य) नूनं राजहंसशिंजितहारि मंजीरगुंजितमेतत् । तदवश्यमिह सलीलचलन्चरणन्मणिनूपुरया–पुरांगनया कयाचन चण्डिकायतनमागच्छन्त्या भवितव्यम् ।
    प्रसन्नराघवम्, द्वितीय अंक–पृ0 98–99 ।।

50. प्रसन्नराघवम् 2.7 ।

51. वही, 2.9 ।

52. प्रसन्नराघवम्, 2.11 ।

53. सीता–(विलोक्य, सकौतुकम्)
        विकसितपेशलोत्पलपलाशपुंजश्यामलो,
            महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोम–कोमलः ।
        लतागृहे कोऽयमनंगरूप–खण्डनो
            विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः ।। वही, 2.21 ।।

54. वही, 2.26 ।

55. मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयोः हा ! विधातुः ।। वही, 2.28 ।।

56. लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः ।। दशरूपक, 2.9 पृ0,93 ।।

57. भिन्नप्रभिन्नसुरकुंजरकुम्भमुक्तमुक्ताफलैर्विचलितैःकलिताधिवासः ।
    अद्यैव खेचरनिशाचरलोचनानामुन्मीलयन्मुदमुदंचति चन्द्रहासः ।। प्रसन्नराघवम् 7.25 ।।

58. किं ब्रूमो दशकन्धरं निजचमूरक्षाकपाटी भव–
        द्वक्षःपीठपतत्कठोरकुलिशाघातेषु जातस्मितम् ?
    व्योमाभोगसरोविलासिनि वने यत्पाणिपंकेरूहां,
        कैलासेन शिरःस्थितेन्दुकलिकोत्तंसेन हंसायितम् ।। प्रसन्नराघवम्, 7.36 ।।

59. उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते ।
चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका ।। प्रसन्नराघवम् 7.1 ।।

60. परस्त्रीकुचकुम्भेषु, कुम्भेषु परदन्तिनाम् ।
निपतन्ति न भीरूणां, दृष्टयः शरःवृष्टयः ।। वही, 7.2 ।।

61. कोपपाटलितलोलदृष्टिना किंचिदुन्नमितखड्गयष्टिना ।
रावणेन नयधर्मभूषणस्ताडितो हृदि पदा विभीषणः ।। प्रसन्नराघवम् 7.4 ।।

62. लंकेश्वरेण दुष्टेन नयधर्मविभूषणः ।
विभीषणश्च न, परं विभवोऽपि पदाहतः ।। वही, 7.5 ।।
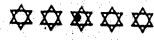
पंचम अध्याय

संवाद-योजना

पंचम अध्याय

संवाद-योजना

संवाद-योजना के सन्दर्भ में भरत मुनि के विचार

नाटकों में संवादों का अतिशय महत्व है। पात्रों के संवादों के द्वारा ही नाटक का कथानक आगे बढ़ता है और अपनी सिद्धि को प्राप्त करता है। संवाद के विषय में नाट्याचार्यों ने बड़ी महत्वपूर्ण बातें बतायी हैं। कौन सा नाटक दर्शकों के लिये आकर्षक और उपयोगी हो सकता है ? इसके उत्तर में नाट्याचार्य भरत मुनि का कथन है कि नाटक मृदु तथा ललित पदों से युक्त, स्पष्ट शब्द और अर्थ से संवलित होना चाहिये। बुद्धिमानों को सुख देने वाला, चतुर लोगों के द्वारा खेला जा सकने वाला, बहुत से रसों को व्यक्त करने का मार्ग उद्घाटित करने वाला, नाट्य–सन्धियों से सधा हुआ नाटक दर्शकों के लिये परमोपयोगी होता है।[1]

आचार्य भरत मुनि के उपर्युक्त कथन का आशय यह प्रतीत होता है कि उन्होंने संवाद–योजना के विषय में तीन बातें स्पष्ट रूप से प्रतिपादित की हैं। संवाद कहीं भी ऐसा नहीं होना चाहिये जिससे अर्थ को समझने में श्रोताओं को कठिनाई का अनुभव करना पड़े। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि संवाद के श्रवण–गोचर होते ही वक्ता का भाव स्पष्ट हो जाना चाहिये। संवाद ऐसे होने चाहिये जिससे दर्शकों को शीघ्र रसानुभूति हो सके। संवाद न तो नीरस होना चाहिये और न केवल सूचना देने वाला होना चाहिये बल्कि उनका रस से संयुक्त होना अत्यन्त आवश्यक है।[2]

भरतमुनि का सुस्पष्ट अभिमत है कि संवाद की योजना करते समय

नाटककार को अलंकार के प्रपंच में नहीं पड़ना चाहिये। उसे सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि संवाद श्रोताओं की समझ के परे न हों, अस्वाभाविक प्रतीत न होते हों अथवा औचित्य की सीमा का उल्लंघन न किया गया हो जिससे अभिनय करने में किसी प्रकार की असुविधा प्रतीत न हो।

अन्य विद्वानों के अनुसार संवाद–योजना के लिये औचित्य का बहुत अधिक महत्व होता है। पात्र को क्या कहना उचित है, किस समय क्या कहना चाहिये, कैसे कहना चाहिये ? इन प्रश्नों के आधार पर विरचित संवाद ही प्रेक्षकों के हृदय को आकर्षित करते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नाटककार को काव्य–शास्त्र का अध्ययन नहीं करना चाहिये । कवि कर्म के लिये काव्य–शास्त्र का अनुशीलन कवि के लिये नितान्त आवश्यक होता है, परन्तु कवि को चाहिये कि वह अपने नाटक में बल पूर्वक खोजकर इन अलंकारों का बलात् प्रयोग कदापि न करे अन्यथा नाटक की भाषा, दुरूह, अस्वाभाविक, कठिन और दुर्बोध हो जाती है, जिससे रसानुभूति में बाधा उत्पन्न होती है।

संवाद–योजना के लिये भाषा का अच्छा ज्ञान होना परमावश्यक है। संस्कृत के नाटकों में संवाद संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में रहते हैं। पात्रों की सामाजिक और सांस्कृतिक योजना के अनुसार ही संवाद की योजना की जाती है। विद्वानों का कथन है कि संवाद–रचना के लिये काव्य के समस्त गुण आवश्यक होते हैं जिनमें एक है प्रसाद गुण और दूसरा गुण है संवादों में कौतूहल। प्रसाद

गुण के द्वारा वक्ता की बात श्रोता के हृदय तक सरलता से पहुँच जाती है। वह उसे भली भाँति समझ लेता है और उसका मन आनन्द लेने की ओर प्रवृत्त हो जाता है।[3]

संवाद का दूसरा गुण कौतूहल है जिसके द्वारा दर्शक की प्रवृत्ति नाटक देखने की ओर स्वयं प्रवृत्त होती है। यदि नाटकों के संवादों में कौतूहल नहीं होगा तो वह फीका, निस्तेज, अरूचिकर तथा आकर्षण विहीन होगा। संवाद में आकर्षण का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी आकर्षण से दर्शक नाटक के संवादों से सम्बद्ध रहा है। नाटककार को संवाद की रचना करते समय उसके दोषों से बचना चाहिये। संवाद के दोष वही हैं जो सामान्य रूप से काव्य के दोष होते हैं यथा—क्लिष्ट, अश्लील, अमांगलिक और संदिग्धार्थ इत्यादि।

नाट्य—शास्त्रियों ने पात्रों के लिये उच्चारण हेतु विशेष नियमों का निर्धारण किया है। उच्चारण करने वाले या पढ़ने वाले पात्र के छह गुण होते हैं जो निम्नांकित हैं— माधुर्य, अक्षर की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति, पदच्छेद, सुस्वरता, धैर्य और लय समर्थता।[4]

उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि शब्दों का उच्चारण मधुर होना चाहिये कर्णकटु नहीं। अक्षरों का उच्चारण बहुत स्पष्ट और पृथक्—पृथक् होना चाहिये। उच्चारण में स्वरों का उचित उतार—चढाव भी आवश्यक है। सुस्वरता बहुत ही महत्वपूर्ण गुण माना जाता है। रसों के अनुसार स्वर परिवर्तन होता है।

श्रृंगार रस के प्रतिपादन में कोमल स्वरों का प्रयोग करना चाहिये और रौद्र रस के प्रतिपादन में उग्र स्वरों का प्रयोग करना चाहिये। विषय और प्रसंगानुसार स्वरों में उतार–चढ़ाव करना चाहिये। सही वक्ता का प्रभाव श्रोता पर ठीक से होता है और श्रोता का ध्यान उस ओर आकर्षित होता है। बोलने में उचित लय का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नाटक की संवाद–योजना इस प्रकार की होनी चाहिये कि श्रोतागण आकर्षित हो जायें तथा नाटक के पात्रों के कथनोपकथन में रस ग्रहण करते हुये उसे ध्यान से सुनने के लिये प्रवृत्त हों और इस प्रकार उक्त नियमों के अनुसार पात्रों के संवादों से आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। जो पात्र गाकर वाक्यों का उच्चारण करते हैं, अतिशीघ्र बिना रूकावट के ही कथनोपकथन करते हैं, अनावश्यक संवादों को पढ़ते हैं, ऐसे पाठक अधम कहलाते हैं।[5]

आचार्य भरत मुनि ने संवाद के दोनों तत्वों, भाषा–तत्व और काव्य–तत्व पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जिनका अनुकरण आज भी नाटक को रोचक बनाने के लिये उपयोगी है। विद्वानों का कथन है कि भारतीय संस्कृत नाटक न केवल आदर्शवाद पर प्रतिष्ठित रहता है और न केवल यथार्थवाद पर ही प्रतिष्ठित रहता है प्रत्युत उसमें दोनों का मंजुल समन्वय और सामंजस्य घटित होता है। यही कारण है कि आज भी वैज्ञानिक रंग मंच के युग में भी संस्कृत नाटकों का अभिनय उतना ही आकर्षक और मनोरंजक सिद्ध हो रहा है। विदेशों में

अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मृच्छकटिकम् और स्वप्नवासवदत्तम् नाटकों के अभिनयों की सफलता इस बात का प्रमाण है।[6]

आचार्य भरत ने अभिनय के चार प्रकार माने हैं– (1) आंगिक (2) वाचिक (3) आहार्य (4) सात्विक। इन चारों अभिनयों के द्वारा प्रस्तुत कथा–वस्तु ही दर्शकों के सामने अभिनेय पदार्थ तथा यथार्थ रूप का दर्शन करा सकती है तथा उनका मनोरंजन कर सकती है। वाचिक अभिनय में नटों तथा पात्रों के संवाद का विधान बना रहता है। संवाद के द्वारा ही कोई पात्र अपनी भावना की अभिव्यक्ति करता है तथा अन्य पात्रों के साथ कथनोपकथन में प्रवृत्त होता है इसलिये भरत मुनि ने वाचिक अभिनय को नाट्य का शरीर कहा है तथा इस कार्य में पात्रों को विशेष प्रयत्न करने के लिये निर्देशित किया है।[7]

संवादों की भाषा :

नाटककार भाषा के प्रयोग में अपने मानसिक साक्षात्कार से वस्तु के सार बिन्दु को आत्मिक रूपों में ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। वह वस्तुओं तथा परिरिस्थितियों को, उनके तार्किक सम्बन्धों को, स्थिति से अलग–अलग कर वास्तविक संवेदनात्मक प्रतिछवियों में वर्णित करता है। नाटककार भी एक कलाकार है। वह अपने पात्रों के सम्भाषणों में तार्किक स्थितियों के स्थान पर अभिव्यक्ति तथा वस्तुओं की संवेदनात्मक प्रतिछवियों को व्यंजित करना चाहता है इसलिये विद्वानों का कथन है कि उसकी भाषा जीवन के सजीव भावात्मक सन्दर्भों को व्यंजित करने

वाली होनी चाहिये। अभिनेताओं द्वारा अपने सम्भाषण में सहज रूप से स्पष्ट तथा कुशल संगति उत्पन्न करनी चाहिये। इस प्रकार भाषा निहितार्थ को प्रकाशित करती है और प्रत्येक भाव–बोध के अन्तर्निहित अर्थ को निर्दिष्ट तथा व्यंजित करती है।

नाटकीय सम्भाषण में भाषा के प्रयोग के दो स्तर होते हैं। भाषा तो वास्तव में वाणी ही है। लिखित रूप से कुछ प्रतीकों के सहारे और नियमों के आधार पर चलती है। नाटक की रचना में नाटककार जीवन की भाषा को यथा सम्भव ऐसे संकेतों तथा प्रतीकों के माध्यम से लिपिबद्ध करता है, जिनमें उसकी सजीवता तथा जीवन के सन्दर्भों को ग्रहण करने की अधिक से अधिक सम्भावना रहती है। इसके बाद सूत्रधार अथवा निर्देशक पूर्ण सम्भावनाओं तथा सन्दर्भों को लिपिबद्ध कर नाटकीय कथावस्तु से परिकल्पित करता है और अभिनेता इस आधार पर अपने कथनोपकथनों में कलात्मक वर्णन की सम्भावनाओं का आविष्कार करता है।[8]

प्रायः यह कहा जाता है कि भाव–प्रदर्शन संवेदन की भाषा है। सम्भाषण विचार की भाषा है परन्तु इस कथन में आंशिक सत्य प्रतीत होता है। विचारों की भाषा का प्रयोग भी भाव प्रदर्शन में निरन्तर देखा जा सकता है। केवल विचारों को प्रकट करने के लिये शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता है वरन् संवेगों को जागृत करने की शक्ति भी उनमें रहती है। कभी–कभी केवल एक वाक्यांश ही हमारे मन

में, उन शब्दों के सन्दर्भ के कारण ऐसा भाव जागृत कर देता है जो सम्पूर्ण विचार की संवेगात्मक स्थिति से कोई समता नहीं रखता है, फिर भी भाव–प्रदर्शन का सम्बन्ध अधिकतर इच्छा शक्ति से है। कथनोपकथन विचार–मूलक होते हैं। इस कारण भाव–प्रदर्शन के अध्ययन का सम्बन्ध संवेदनाओं से रहा है। वाणी के अध्ययन में अधिकतर विचारों की कोमल तथा तीव्र उच्चारणात्मक विभिन्नतायें महत्वपूर्ण होती हैं।[9]

लेखक या कवि को अपने अर्थ को पूर्ण रूप से बिम्बित करने के लिये सदा अधिक कथन के स्थान पर कम कथन करना चाहिये। इसी प्रकार अभिनेता को यह ध्यान में रखना चाहिये कि उसके लिये अपने भाव को व्यक्त करने के लिये समस्त उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करना ही आवश्यक नहीं है। उसको श्रोता तथा दृष्टा की स्मरण शक्ति पर विश्वास करके कुछ शब्दों को छोड़ देना चाहिये क्योंकि वे स्वयं सन्दर्भ और प्रसंग के सहारे उपदिष्ट अर्थ को ग्रहण करके अधिक सही व्यंजना कर सुन सकते हैं।

संवाद–योजना के अन्तर्गत प्रत्येक वाक्य में एक या दो शब्द विशेष महत्व के होते हैं। उनका स्थान भी निर्धारित होता है जिन पर सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ भी निर्भर रहता है। अभिनेता को इन शब्दों की स्थिति तथा अभिनय का अनुमान होना चाहिये। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वह ऐसे प्रत्येक शब्द या वाक्यांश पर बल ही दें, क्योंकि कुछ शब्द भारी और कुछ हल्के होने पर भी

विशिष्ट अर्थ की व्यंजना देते हैं। एक ही शब्द सामान्यतः प्रसंग तथा वाक्य में अपने स्थान के अनुसार कभी भारी और कभी हल्का प्रयुक्त हो सकता है। इस प्रकार के सन्तुलन का ज्ञान नाटककार को कथनोपकथन की शैली के अनुरूप शब्द–संचयन के लिये और अभिनेता को यथार्थ सम्भाषण में उसे उपयुक्त करने के लिये होना चाहिये।

संस्कृत नाटकों की परिकल्पना रस पर आधारित है और वे आनन्द निष्यन्दी होते हैं।[10] अतः उनमें वाचिक अभिनय की परिकल्पना रस और आनन्द को लेकर ही चलती है। भरत ने इसीलिये अलंकार, छन्द तथा गुण आदि की चर्चा इसी दृष्टि से की है।[11]

आचार्य भरत ने अपने नाट्य-शास्त्र में विस्तृत चर्चा के बाद नाटकीय उपकरण के सम्बन्ध में निश्चित नियमों की चर्चा की है। उन्होंने पाठ्य के विषय में सात स्वर, तीन स्थान, चार वर्ण, दो काव्य और छह अलंकारों का उल्लेख किया है। वस्तुतः वाचिक अभिनय के विषय में इन्हीं को विशिष्ट निर्देशों के रूप में माना जा सकता है। सप्त स्वरों में षड़ज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद होते हैं। हास्य तथा शृंगार रस में मध्यम तथा पंचम स्वर, वीर, रौद्र तथा अद्भुत रसों में षड़ज तथा ऋषभ स्वर तथा करूण रस में गन्धार और निषाद स्वर एवम् वीभत्स तथा भयानक रसों में धैवत स्वरों का प्रयोग अपेक्षित माना जाता है।[12]

ध्वनि के उच्चारण के लिये तीन स्थानों में उर, कण्ठ तथा सिर माने गये

है। मुनिवर भरत का कथन है कि दूर के व्यक्ति को सम्बोधित करने के लिये सिर स्थान, निकट के व्यक्ति को सम्बोधित करने के लिये कण्ठ स्थान तथा बिल्कुल समीप के व्यक्ति से बात करने के लिये उर स्थान से ध्वनि निकालनी चाहिये।[13] मुनिवर भरत ने अपने नाट्य-शास्त्र में वाचिक अभिनय का विस्तृत विवेचन किया है। यहाँ पर यह बात स्पष्ट होनी चाहिये कि संस्कृत नाटकों में रस दृष्टि ही प्रधान है तथा इनमें पद्य का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है।[14]

नाटकों की भाषा के सम्बन्ध में सम्यक् दृष्टि यही है कि उसे जहाँ तक सम्भव हो, स्वाभाविक और सहज होना चाहिये तथा भाव स्थिति के अनुरूप अलंकरण से भी घृणा नहीं होनी चाहिये। नाटकों की भाषा को सरस और प्रसाद गुण से युक्त होना चाहिये, कठोर और नीरस नहीं होना चाहिये। नाटककार के पास अपनी बात कहने के लिये सीमित समय और अवकाश होना चाहिये। जब–जब वह अपनी भाषा का चयन नहीं करेगा, गागर में सागर नहीं भरेगा और स्वाभाविक अलंकरण नहीं करेगा तब–तब उसके हाथ से अवसर के चले जाने की आशंका बराबर बनी रहेगी। नाटक के लिये वही भाषा आदर्श मानी जाती है जो सरल दिखायी देते हुये भी अत्यन्त प्रभावशाली होती है। अभिनय की दृष्टि से भी भाषा की यही आदर्श स्थिति है, क्योंकि भाषा के सरल और साधारण होने से तो अभिनेता को उसके स्मरण और उच्चारण में सुविधा रहती है और प्रभावी होने के कारण भी वह उसके माध्यम से प्रेक्षक को रस–रज्जु से बाँधे रहता है।

अभिनेता को अपने संवाद रटना नहीं चाहिये अपितु हृदयंगम करना चाहिये। सम्भाषण को रट कर बोलने में यह भय बना रहता है कि उसने ध्वनि–समूह का उच्चारण सही–सही कर दिया है अथवा नहीं जो उसे उस सन्दर्भ में उच्चरित करना था। संवादों को रटने वाला अभिनेता यह भी सोंच सकता है कि उसके द्वारा उच्चरित ध्वनि समूह से सन्दर्भ का अर्थ प्रकट हुआ है अथवा नहीं, किन्तु वाचिक अभिनय तो उच्चारण मात्र है न कि अर्थ की अभिव्यक्ति मात्र। वह तो एक विशिष्ट भाव स्थिति का वाणीगत रूप है, अभिनय तो मूलतः भाव का ही होता है।[15]

अभिनेता को यह बिन्दु कदापि विस्मृत नहीं होना चाहिये कि उसे एक विशिष्ट भाव स्थिति का अभिनय करना है। संवादों को हृदयंगम करने के पश्चात् अभिनेता को भाव–स्थिति का ध्यान रखने में सुगमता रहती है और प्रत्येक शब्दों के उच्चारण से सम्बन्धित स्वर, बलाघात तथा अन्तराल का निर्णय स्वयं हो जाता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखने से वाचिक अभिनय में प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। अभिनेता को चाहिये कि वह संवादों के वाक्य या वाक्यांशों में शब्दों के सापेक्षिक महत्व को पहचान कर उनका उचित बलाघात और अन्तराल के साथ उच्चारण करे।[16]

संस्कृत नाटकों में पाठ्य दो प्रकार का होता है– संस्कृत तथा प्राकृत। उच्च कोटि के पात्रों की भाषा संस्कृत होती है और मध्यम तथा नीच श्रेणी के पात्रों

की भाषा प्राकृत होती है। नाट्य का पाठ्य कवित्वमय होना चाहिये। अतः संवादों की रचना करते समय नाटककार को चाहिये कि वह दोनों का परिहार कर ले और गुण तथा रूझानों का संग्रह करके प्रभावशाली संवादों की रचना करे। नाटक की संवाद–योजना में सदैव औचित्य का ध्यान रखना परम आवश्यक होता है और वैसे भी अभिनय का सर्वस्व औचित्य का विधान ही होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त कथन और सिद्धान्त के प्रतिपादन के प्रकाश में जब हम अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् नाटक में प्राप्त संवादों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो हमें दोनों कवियों के नाट्य-कौशल और संवाद–रचना चातुर्य का परिचय प्राप्त होता है। अनर्घराघवकार कविवर मुरारि सूत्रधार के मुख से यह बात कहलाते हैं कि अन्य द्वीप से आये हुये कलह कन्दल नामक नट ने रौद्र, वीभत्स तथा भयानक रस से ओत–प्रोत कोई प्रबन्ध नित्य–प्रति दिखलाकर यहाँ के लोगों को उद्वेजित कर दिया है।[17] इस उद्विग्नता को समाप्त करने के लिये सुचरित नाम कोई नट अभिमत रस वाले किसी रूपक का अभिनय करने की इच्छा करता है क्योंकि सदस्यों की प्रीति नाट्योपजीवी नटों की प्रियतमा हुआ करती है। इसलिये उस प्रीति रूप प्रियतमा को वह रंगकर्मी पुनः वापस लाना चाहता है।[18] मुरारि अपना परिचय 'बाल–वाल्मीकि' के रूप में देते हैं तथा अपनी कविता और वाक्य–विन्यासों को अमृत–बिन्दु–निष्यन्दी बतलाते हैं।[19]

अनर्घराघवम् नाटक के प्रारम्भिक संवाद सरल और प्रसाद गुण युक्त

है[20] किन्तु अग्रवर्ती संवादों में क्लिष्टता, दुर्बोधता और समास की बहुलता दिखायी देती है जिससे प्रतीत होता है कि कविवर मुरारि के नाटक अनर्घराघवम् के संवाद चुस्त–दुरूस्त, संक्षिप्त, सरल और सजीव नहीं हैं। जब हम उनके संवादों को संस्कृत श्लोकों में देखते हैं तब हमें कविवर मुरारि के पाण्डित्य प्रदर्शन के ही दर्शन होते हैं।[21]

एक सफलनाटक के संवाद संक्षिप्त, सरल, सजीव, प्रसाद गुण युक्त, अनायासपूर्ण, ललित और लघु होते हैं। एक सफल संवाद–योजना में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों का यथावश्यक समावेश होता है और सर्वोपरि उनके संवादों में प्रसाद गुण की भरमार होती है। पात्रों तथा भावों के अनुकूल शब्द–चयन और उनके परिमित प्रयोग किये जाते हैं। नाटक के पात्रों के संवादों में क्लिष्ट एवं समास–बहुला पदावली का सर्वथा अभाव होता है। एक आदर्श नाटक के संवादों में स्वाभाविक पद–विन्यास तथा भाव सौष्ठव के साथ प्रवाहमयी पदावली सभी को अपूर्व आनन्दातिरेक से भाव–विभोर कर देती है। सुन्दर नाटकों के संवादों में अनावश्यक वर्ण–विस्तार नहीं होता है। संवादों के अन्तर्गत पद्यों का समावेश नाटक के प्रवाह को गतिशील बनाये रखता है तथा आदर्श संवादों के माध्यम से घटनाओं तथा दृश्यों का यथोचित वर्णन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त आदर्श संवादों में अलंकारों का चयन भी अत्यधिक स्वाभाविक रूप से होता है। संवादों में प्रयुक्त शब्दों के साथ ही अलंकारों के

सुन्दर प्रयोग से श्रोता और दर्शक के हृदय में गूढ़ से गूढ़ भाव प्रविष्ट हो जाते हैं। आदर्श संवाद योजना की दृष्टि से स्वप्नवासवदत्तम् और अभिज्ञानशाकुन्तलम् अति रमणीय नाटक हैं।

अनर्घराघवम् में संवाद-योजना :

उक्त सन्दर्भ में जब हम अनर्घराघवम् नाटक की समीक्षा और परीक्षा करते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि कुछ स्थलों को छोड़कर इस नाटक में समास बहुला–पाण्डित्य–प्रदर्शनी क्लिष्ट पदावली से भरी हुई दुर्बोध संवाद–योजना है। साधारण पढ़ा–लिखा हुआ पाठक, श्रोता या दर्शक इसके श्लोकों में आये हुये संवादों को अनायास समझ नहीं सकता है।[22]

इसी प्रकार द्वितीयांक में भी श्लोकों में क्लिष्टता भरी हुई है।[23] भावों का प्रकटीकरण भी जटिल है। कविवर मुरारि का सूर्योदय और चन्द्रोदय वर्णन क्लेशपूर्ण समास–बहुला शैली का निदर्शन है। शुनः शेप और पशुमेद्र के मध्य होने वाले संवाद अति विस्तृत और अनाकर्षक हैं। लक्ष्मण के द्वारा किया गया मध्याह्न का वर्णन भी अति कठिन है।[24] इस अंक में स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित जैसे बड़े–बड़े छन्द पाठक, श्रोता और दर्शक को उद्विग्न करने के लिये पर्याप्त हैं।

तृतीय अंक में विश्वामित्र, शतानन्द और जनक–संवाद क्लिष्टता से भरे हुये हैं। इसमें भी बडे–बड़े छन्दों का प्रयोग किया गया है। यद्यपि कुछ श्लोकों में और संवादों में साहित्यिकता तथा प्रसाद गुण है किन्तु क्लिष्टता की अधिकता के कारण ये नगण्य हो जाते हैं।

चतुर्थ अंक भी शार्दूल विक्रीडित और समास–बहुला शैली से प्रारम्भ होता है। इस अंक में बड़े–बड़े संवाद और बड़े–बड़े छन्दों की भरमार, लम्बे लम्बे गद्य खण्ड बाणभट्ट की कादम्बरी के गद्य का स्मरण दिला देते हैं। राम–कथा अपने आप में सरस और सरल है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण में प्रसाद गुण से परिपूर्ण सरल और कोमल कान्त पदावली का प्रयोग किया है। रामकथा प्रधान अन्य नाटक भी प्रसाद गुण से ओत–प्रोत हैं किन्तु कविवर मुरारि ने इनसे कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की है। उन्होंने अपने नाटक में महाकाव्य और गद्य काव्य जैसे विस्तृत वर्णन किये हैं।

पंचम अंक जाम्बवान् और श्रवणा के संवाद से प्रारम्भ होता है। इस संवाद में श्रवणा स्रग्धरा छन्द में राम के द्वारा गंगा पार करने का वृत्तान्त बतलाती है। श्रवणा और जाम्बवान् साधारण पात्र हैं किन्तु इनके संवाद अतिकठिन हैं। साधारण जन सरल तथा अनायास रूप से इन संवादों को समझ नहीं सकते हैं.। स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित जैसे छन्दों का प्रयोग अनुचित प्रतीत होता है। यद्यपि राम के वृत्तान्तों में बड़े–बड़े छन्दों का प्रयोग किया गया है जिनमें प्रसाद गुण का अभाव पाया जाता है। बालि और राम के संवादों में भी वहीं कठिनता, स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित छन्दों की भरमार है।

षष्ठ अंक का प्रारम्भ माल्यवान् से होता है। इसमें माल्यवान् और सारण का संवाद देखने को मिलता है। इन दोनों के संवाद बहुत लम्बे–लम्बे हैं। इसमें भी कवि ने अधिकतर शार्दूल विक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है। शुक–सारण जैसे

पात्र बड़े–बड़े छन्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा कविवर मुरारि के प्रिय छन्द हैं। इसके आगे हेमांगद और रत्नचूड के संवाद आते हैं जिसमें भी बड़े–बड़े छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रसाद गुण और सरलता का अभाव है। वर्णन कीं भरमार है। षष्ठ अंक की समाप्ति स्रग्धरा छन्द से होती है। संवाद–योजना नाटकोचित नहीं है।

सप्तम अंक का शुभारम्भ शिखरिणी छन्द से होता है। सुग्रीव राम से शार्दूल विक्रीडित छन्द में सागर और लंका का परिचय देता है। इसके बाद राम और सीता के संवाद सामने आते हैं जिनमें अपेक्षाकृत प्रसाद गुण विद्यमान है किन्तु विभीषण और सुग्रीव के संवाद क्लिष्टता से भरे हुये हैं। इस अंक में भी अनेक बार स्रग्धरा छन्द का प्रयोग कविवर मुरारि ने किया है जो एक सफल नाटक के लिये उचित नहीं कहा जा सकता है। जिस प्रकार कादम्बरी जैसे गद्यकाव्य कानन में सबके प्रवेश करने की शक्ति नहीं होती है और नारिकेल–फल–सम्मित भारवि प्रणीत अलंकृत शैली के महाकाव्य किरातार्जुनीयम् के रसास्वाद के लिये प्रतिभा विशेष की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार अनर्घराघवम् नाटक दुरूह प्रतीत होता है।

राम–कथा जैसी सरस और सरल है तथा प्रसन्नता का सागर है वैसी सरस इस नाटक की भाषा नहीं है। इसमें कविवर मुरारि ने केवल पाण्डित्य का ही प्रदर्शन किया है और खोज–खोजकर व्याकरणात्मक पदावली के प्रयोग से नाटक

को साधारण जन से दूर कर दिया है। आश्चर्य यह है कि उनके सामने भास, कालिदास और भवभूति के विश्व–विश्रुत नाटक थे किन्तु उन्होंने उनसे सरस, सरल और प्रसाद गुण परिपूर्ण संवाद–योजना को ग्रहण नहीं किया है। यद्यपि वे अपने को बाल–वाल्मीकि कहते हैं[25] किन्तु वाल्मीकि की रामायण में प्रयुक्त सरल, प्रसादगुण युक्त और कोमल कान्त पदावली को उन्होंने स्वीकार नहीं किया है।

यह नाटक स्वप्नवासवदत्तम् और अभिज्ञान शाकुन्तलम् की भाँति अपने यथा रूप में मंचन करने योग्य नहीं है। नाटक इतना विपुल और दीर्घकाय है, संवाद इतने जटिल और क्लिष्ट हैं कि श्रोता और पाठक का हृदय बिना उद्विग्न हुए नहीं रहेगा। संवादों में कौतूहल का होना परमावश्यक है ताकि दर्शक, श्रोता या पाठक उनसे जुडे रहने की उत्सुकता बनाये रखें। ऐसा इस नाटक में दिखायी नहीं देता है। इसीलिये प्रसिद्ध पाश्चात्य आलोचक डॉ0ए0बी0कीथ कहते हैं कि– मुरारि महाकवि होने का दावा करते हैं और बाल वाल्मीकि कहलाने का अनुचित अधिकार जताते हैं।[26]

कीथ का यह भी कथन है कि 'अनर्घराघवम्' नाटक की प्रस्तावना में मुरारि ने यह घोषणा की है कि उनका उद्देश्य रौद्र, वीभत्स, भयानक और अद्भुत रस से ऊबे हुये लोगों को उदात्त, वीर और आद्योपान्त अद्भुत रस की रचना से आनन्दित करना है। मुरारि ने अपने नाटक में राम–सम्बन्धी पिष्ट–पेषित विषय–वस्तु के चुनाव का औचित्य भी सिद्ध किया है।' उनका चरित्र कवि की

रचना को उदात्तता और मनोहरता प्रदान करना है और उनके अनुसार इतने सुन्दर विषय का तिरस्कार करना मूर्खता है। इस पर डॉ0 ए0बी0कीथ का कथन है कि अनर्घराघवम् नाटक से कवि के वस्तु चयन–विषयक आत्म–विश्वास का औचित्य सिद्ध नहीं होता है। भवभूति जिस विषय–वस्तु का विस्तारपूर्वक निरूपण कर चुके थे, उसमें किसी महाकवि की ही सफलता की सम्भावना हो सकती है। डॉ0 ए0बी0कीथ के अनुसार मुरारि इस प्रकार के कवि नहीं थे और उनके अनुसार मुरारि संवाद–कला के तनिक भी मर्मज्ञ नहीं थे।[27]

डॉ0 कीथ का अग्रिम कथन है कि उनकी रचना में जो कुछ भी गुण है, वह केवल इस बात में है कि उन्होंने संस्कृत भाषा के प्रयोग और प्रभावशाली छन्दों के अनुरूप शब्द–विन्यास में सफलता दिखायी है। उनका शब्द–कोष सम्बन्धी ज्ञान अत्यधिक है, जो प्रत्यक्ष है। व्याकरण के दुर्बोध प्रयोगों के कारण उन्हें इतनी ख्याति मिली है कि सिद्धान्त–कौमुदी के लेखक भट्टोजि दीक्षित ने इस नाटक से अप्रसिद्ध रूपों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इन भाषा सम्बन्धी गुणों के कारण आधुनिक अभिरूचि के पाठकों ने उन्हें महत्व दिया है। यद्यपि नाटक के कतिपय श्लोकों में अभिव्यंजना शक्ति का चमत्कार भी दिखायी देता है और शृंगार रस से परिपूर्ण कुछ पद्य भी देखने को मिलते हैं।

वस्तुतः, मुरारि एक विद्वान् नाटककार हैं। उन्हें अपने पाण्डित्य पर गर्व है। वे कहते हैं कि सरस्वती की उपासना तो बहुत लोग करते हैं परन्तु वाणी के

तत्व को गुरूकुल में रहकर परिश्रम करने वाले मुरारि कवि ही भली–भाँति जानते हैं। वानर–वीरों ने समुद्र को अवश्य पार कर लिया था, किन्तु उसकी गहराई को पाताल तक निमग्न स्थूलकाय मन्दराचल ही जानता है।[28]

प्रसन्नराघवम् में संवाद–योजना :

प्रसन्नराघवम् नाटककार कविवर जयदेव जिन कवियों को अपना प्रेरणा स्रोत बताते हैं उनमें कविता–कामिनी के केश–कलाप रूप चोर नामक कवि, कर्ण भूषण स्वरूप मयूर कवि, हास रूप भास कवि और विलास रूप कविकुलगुरू कालिदास, हर्ष रूप श्री हर्ष, हृदय वासी पंचबाण कामदेव के समान बाणभट्ट आदि हैं। इससे स्पष्ट है कि कविवर जयदेव ने अपने संवादों की भाषा उक्त कवियों की कृतियों से प्रभावित की है।

प्रथम अंक के देखने से विदित होता है कि नाटककार जयदेव ने कविवर मुरारि की अपेक्षा प्रसाद गुण का अधिक प्रयोग किया है। श्लोकों और संवादों में सरसता, सरलता और प्रसादगुण दिखायी देता है। नूपुरक और मंजीरक के संवाद में प्रसाद गुण विद्यमान है। स्वयंवर के अवसर पर मंजीरक बड़े विषाद के साथ कहता है कि द्वीप–द्वीप से, दूर देशों से सब राजा लोग आये हुये हैं। यह कन्या सुवर्ण के सदृश कान्तिवाली है। यश ही प्राप्ति का विषय है। किसी ने भी इस धनुष को नहीं उठाया है। कुछ उठाकर शब्द तक प्रकट नहीं किया है, न झुकाया है। अधिक क्या ? इस स्थान से हटाया तक नहीं हैं। आश्चर्य है कि इस

समय भूतल क्या वीर शून्य हो गया है ?[29] यद्यपि यहाँ पर मंजीरक ने शार्दूल विक्रीडित छन्द का ही प्रयोग किया है लेकिन इसकी सरलता, सुबोधता और प्रसादगुण चमत्कारकारी है।

इस नाटक के संवादों में कौतुक और कौतूहल भी है। मंजीरक किसी पुरूष से कहता है कि–यह धनुष है और कन्या तो पीछे नेत्र मार्ग में अवतीर्ण होगी। पुरूष क्रोध के साथ कहता है कि रे मूर्ख! तुम्हें धिक्कार है। क्या तुमने ज्योतिषियों की सभा नहीं देखी ? वे भी पहले कन्या को ही प्रकट करते हैं बाद में धनुष को अर्थात् राशियों में पहले कन्या राशि आती है और बाद में धनुराशि।[30] पुरूष के द्वारा सीता की सुन्दरता का वर्णन भी अतिशय प्रसाद गुण से परिपूर्ण है[31] लेकिन जब रावण और बाणासुर का संवाद प्रारम्भ होता है तब संवादों में क्लिष्टता दिखायी देती है।

द्वितीय अंक के संवाद भी लघु और प्रसाद गुण से परिपूर्ण हैं। भिक्षु और तापस के संवाद में भी तापस का कथन सरल और अतिसुबोध है।[32] भिक्षु और तापस के मध्य होने वाले संवाद लघु और सुबोध हैं।

तापसः – क्व पुनः सम्प्रति ताटका ? ।

भिक्षुः – पुरीं प्रविष्टा।

तापसः – तत्किं दशरथस्य ?

भिक्षुः – नहि नहि, अन्तकस्य।

चण्डिका–मन्दिर में नायक और नायिका के मिलन में प्राप्त संवाद बड़े सुन्दर, प्रसाद गुण युक्त और कौतूहल वर्धक हैं। यद्यपि सूर्योदय और चन्द्रोदय वर्णन में शार्दूल–विक्रीडित छन्दों का प्रयोग हुआ है और समस्त पदावली भी देखने को मिलती है।

तृतीय अंक में, कुब्जक और वामनक, राम और विश्वामित्र, विश्वामित्र और शतानन्द, जनक और विश्वामित्र के संवाद भी सुबोध हैं, यद्यपि कहीं–कहीं संवादों में क्लिष्टता आ गयी है। कवि ने जहाँ शार्दूल– विक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया है वहाँ उन्होंने समास–बहुला शैली का प्रयोग किया है जिससे कुछ दुरूहता अवश्य आ गयी है किन्तु साहित्यिकता और कोमल–काव्य पटुता से नाटक की रमणीयता में कमी नहीं आयी है। इस नाटक में अनेक बार शार्दूल विक्रीडित जैसे बड़े छन्द का प्रयोग हुआ है जिससे दुर्बोधता कुछ बढ़ गयी है।

चतुर्थ अंक जमदग्नि पुत्र परशुराम के आगमन की सूचना से प्रारम्भ होता है जिसमें कवि ने स्रग्धरा छन्द का प्रयोग किया है जो परशुराम की तरह जटिल है। इस अंक में कवि ने ग्यारह बार शार्दूल विक्रीडित और स्रग्धरा छन्दों का प्रयोग किया है जिससे संवाद दुरूह हो गये हैं लेकिन मध्य–मध्य में छोटे –छोटे छन्दों का भी प्रयोग है और प्रसाद गुण भी विद्यमान है।

पंचम अंक में, नदी पात्रों के संवाद हैं, जो लगभग छोटे–छोटे,सुबोध और प्रभावोत्पादक हैं। इनमें नाटकोचित प्रसाद गुण विद्यमान है। सरयू गंगा से

कहती है कि–सीता अभी बालिका है, तुम दोनों चंचल हो, दक्षिण दिशा राक्षस समूह से भरी है इसलिये हे वत्स! हम लोग स्नेह पूर्वक यह कहते हैं कि नीति निपुण हे राम! दक्षिण दिशा की ओर मत जाओ। ऐसा अयोध्यावासियों ने कहा है। इसके बाद हंस और सरयू के संवाद क्लिष्टता से भरे हुये हैं फिर समास–बहुला शैली के साथ शार्दूल–विक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस अंक में कहीं–कहीं पर संवाद छोटे और सार्थक हैं।

षष्ठ अंक में राम और लक्ष्मण के संवाद कहीं सरल तो कहीं क्लिष्ट हैं। राम जब सीता के वियोग में विलाप करने लगते हैं तो वहाँ प्रसाद गुण देखने लायक है। वे लक्ष्मण से कहते हैं कि हे जानकी! तुम इस समय कैसे होगी ? हे भाग्य! तुम्हे धिक्कार है। तेरा परिणाम कितना भयंकर है ? हे पापी ! राक्षस कुल के अधम ! तुम अवश्य मारे जाओगे। हे लक्ष्मण! धनुष लाओ, धनुष लाओ। यह उसका समय है।[33] सीता और त्रिजटा के वृत्तान्त भी प्रसाद गुण युक्त हैं।

सप्तम अंक में, पुलत्स्य शिष्य करालक के मध्य में जो परस्पर संवाद प्राप्त होते हैं, उनमें कहीं पर प्रसाद–गुण और अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग हुआ है और कहीं पर शार्दूल विक्रीडित छन्दों का प्रयोग हुआ है। गद्यात्मक संवाद छोटे हैं किन्तु श्लोकों में शार्दूल विक्रीडित, वसन्त तिलका, शिखरिणी इत्यादि का प्रयोग हुआ है। लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर श्रीराम के विलाप के अवसर पर अति प्रांजल, सरल और प्रसाद गुण युक्त संवाद प्राप्त होते हैं किन्तु विद्याधर और

विद्याधरी के संवाद समास बहुल और लम्बे–लम्बे छन्दों में हैं। इन्होंने भी शार्दूल विक्रीडित छन्दों की भरमार कर दी है। इस अंक में लगभग (36) छत्तीस बार शार्दूल–विक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है। इससे नाटकीय संवादों का औचित्य सिद्ध नही होता है।

दोनों ही नाटकों अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् के संवादों का तुलनात्मक अध्ययन करने से विदित होता है कि अनर्घराघवम् की अपेक्षा प्रसन्नराघवम् नाटक के संवाद सरल और प्रसाद गुण युक्त हैं। मुरारि के नाटक में जहाँ एक ओर व्याकरणात्मक, क्लिष्ट, पाण्डित्यपूर्ण शैली युक्त संवादों का प्रयोग हुआ है, वहीं दूसरी ओर प्रसन्नराघवम् नाटक के संवाद सरल, प्रांजल और प्रसाद गुण युक्त कोमल काव्य से युक्त हैं। जयदेव की भाषा में कोमल काव्य कौशल तथा विलास दिखायी पड़ता है। उनकी वाणी के विलास में अमर रस का निष्यन्द भी झलकता है जो कुरंगाक्षी ललनाओं के अधरोष्ठों के मधुर भाव की तुलना करता है किन्तु फिर भी इन्होंने मुरारि की भाँति बड़े–बड़े शार्दूल–विक्रीडित और स्रग्धरा छन्दों का प्रयोग किया है जिससे यह नाटक भी मंचन योग्य नहीं रह गया है। एक अच्छे ललित काव्य–जातीय ग्रन्थ की भाँति यह अवश्य ही पठनीय और आनन्द का स्रोत दिखायी देता है किन्तु स्वप्नवासवदत्तम् और अभिज्ञानशाकुन्तलम् की भाँति प्रसन्नराघवम् नाटक भी मंचन के योग्य प्रतीत नहीं होता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यद्यपि दोनों ही नाटक अनर्घराघवम्

और प्रसन्नराघवम् राम–कथा से सम्बन्धित हैं तथा इन दोनों में नाट्य–कला की विशेषतायें भी पायी जाती है किन्तु समास–बहुला शैली और लम्बे–लम्बे छन्दों वाले संवादों के कारण इनमें मंचन योग्यता का अभाव है। पाश्चात्य विद्वान् डॉ0ए0बी0कीथ प्रसन्नराघवम् नाटक को नाटकों की अवनति का उदाहरण मानते हैं। वे कहते हैं कि जयदेव का नाटकीय व्यापार से कोई तालमेल नहीं है। परिपाटी के अनुसार, लम्बे–लम्बे छन्दों में लेखक की विशेष रूचि है। यद्यपि वसन्त तिलका उसका प्रिय छन्द है, उसके बाद शार्दूल विक्रीडित, शिखरिणी और स्रग्धरा छन्दों की भरमार है।[34] इससे नाटकीयता लुप्त प्राय सी हो गयी है।

अनर्घराघवम् के सम्बन्ध में डॉ0ए0बी0 कीथ का कथन है कि इसके दोष स्पष्ट हैं। परम्परागत कथा में सुधार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। पात्र रूढ़िबद्ध हैं। विषय को बोझिल बनाने और विस्तृत करने में लेखक ने बहुत रूचि ली है। इससे भाव में अतिशयोक्ति की विशेषता पायी जाती है। मुरारि के पुराण–कथा विषयक पर्याप्त ज्ञान के कारण कल्पनाओं और शब्द–क्रीड़ा का बाहुल्य है। जटायु–जाम्बवन्त संवाद की योजना शोचनीय है। मुरारि संवाद–कला के तनिक भी मर्मज्ञ नहीं हैं। उनकी रचना में जो कुछ भी गुण है वो केवल इस बात में हैं कि उन्होंने संस्कृत–भाषा के प्रयोग और प्रभावशाली छन्दों के अनुरूप शब्द–विन्यास में कुशलता दिखायी है। लम्बे–लम्बे छन्दों के प्रयोग उन्हें अधिक प्रिय हैं।

दोनों ही नाटककारों में समानता यह है कि दोनों ने ही अपने नाटकों का विषय राम–कथा को ही बनाया है। मुरारि ने अपने को बाल–वाल्मीकि कहा है और राम–कथा के प्रति अपनी पक्षधरता का उल्लेख किया है।[35] इसी प्रकार प्रसन्नराघवकार जयदेव ने भी रामकथा के प्रति अपनी पक्षधरता का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि अपनी काव्य सूक्तियों का पात्र एक मात्र रामचन्द्र जी को बनाने वाले कवियों का क्या दोष है ? वह दोष तो श्रीराम के गुण–गणों का है जिससे प्रेरित होकर कविजन रामकथा को ही अपनी कविता की विषय वस्तु बनाते हैं।[36]

दोनों ही नाटकों में नारी पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं और उच्च वर्ग के पुरूष पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं। संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का प्रयोग नियमानुकूल है किन्तु संवाद–योजना में अधिक विस्तार होने के कारण नाटकीय गुणों में न्यूनता प्रतीत होती है।
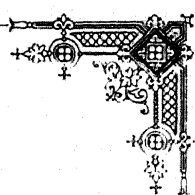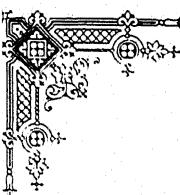
पाद टिप्पणी
अध्याय - 5

1. नाट्यशास्त्र–भरतमुनि, पृष्ठ– 25 ।
2. संस्कृत आलोचना–बलदेव उपाध्याय, चतुर्थ संस्करण 1991, पृष्ठ–133 ।
3. संस्कृत आलोचना–बलदेव उपाध्याय, चतुर्थ संस्करण 1991, पृष्ठ–133 ।
4. माधुर्यमक्षरभिव्यक्ति पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
   धैर्य लय समर्थनंच षडेते पाठका गुणाः ।। पाणिनीय शिक्षा, पृष्ठ–5 ।।
5. गीती, शीघ्री, शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
   अनर्थज्ञोल्प कण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ।। पाणिनीय शिक्षा, पृष्ठ–5 ।।
6. संस्कृत आलोचना–बलदेव उपाध्याय, चतुर्थ संस्करण 1991, पृष्ठ–134 ।
7. वाचि यत्नस्तु कर्त्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता ।
   अंगनेपथ्यतत्वानि वाक्यार्थं व्यंजयन्ति हि ।। नाट्यशास्त्र 15.2 ।।
8. नाट्यकला– डॉ0 रघुवंश–प्रथम संस्करण, 1961 पृष्ठ–162 ।
9. नाट्यकला– डॉ0 रघुवंश–प्रथम संस्करण, 1961 पृष्ठ–167 ।
10. (क) दशधैव रसाश्रयम्, दशरूपक 1.7
    (ख) आनन्द निष्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रम् फलमल्पबुद्धिः ।। दशरूपक, 1.6 ।।
11. नाट्यशास्त्र–अध्याय, 17 ।
12. वही–अध्याय, 19 ।
13. नाट्यशास्त्र–अध्याय, 19 ।
14. वही–अध्याय, 19 ।
15. नाटकों का विकास– डॉ0 सुन्दरलाल शर्मा संस्करण, 1977, पृ0, 157 ।।
16. वही– डॉ0 सुन्दरलाल शर्मा संस्करण, 1977, पृ0, 157 ।।
17. सूत्रधारः– कुतश्चिद् द्वीपादागतेन कलहकन्दल नाम्ना कुशीलवेन रौद्रबीभत्सभयानकाद्
    –भुतरसभूयिष्ठं कमपि प्रबन्धमभिनयता नित्यं किलायमुद्वेजितो लोकः ।
    अनर्घराघवम्, प्रथम अंक, पृ0–4.5 ।
18. प्रीतिर्नाम सदस्यानां प्रिया रंगोपजीविनः ।
    जित्वा तदपहर्तारमेष प्रत्याहरामि ताम् ।। वही, 1.3 ।।
19. तमृषिं मनुष्यलोकप्रवेशविश्रामशाखिनं वाचाम् ।
    सुरलोकादवतारप्रान्तरखेदच्छिदं वन्दे ।।
    धातुश्चतुर्मुखीकण्ठश्रृंगाटकविहारिणीम् ।
    नित्यप्रगल्भवाचालामुपतिष्ठे सरस्वतीम् ।। वही 1, (10–11) ।।

20. दशरथः– अहो, बहुधा श्रुतमपि भगवतो वसिष्ठस्यानुशासनं नवं नवमिव प्रमोदयति माम् । अनर्घराघवम्, प्रथम अंक पृ0, 15 ।

वामदेवः– महाराज, किमुच्यते । समानवृत्तेरपि क्वचिदेव कस्यचित्तारामैत्रकम् ।
वही, प्रथम अंक, पृ0, 17 ।

21. विश्वामित्र :– नमन्नृपतिमण्डलीमुकुटचन्द्रिकादुर्दिन–
स्फुरच्चरणपल्लवप्रतिपदोक्तदोः सम्पदा ।
अनेन ससृजेतरां तुरगमेधमुक्तभ्रम–
त्तुरंगखुरचन्द्रकप्रकरन्दतुरा मेदिना ।। अनर्घराघवम्, 1.23 ।।

22. मन्दोद्धूतैः शिरोभिर्मणिभरगुरूभिः प्रौढरोमांचदण्ड–
स्फायन्निर्मोकसंधिप्रसरदविगलत्संमदस्वेदपूराः ।
जिह्वायुग्माभिपूर्णाननविषमसमुद्गीर्णवर्णाभिरामं
वेलाशैलांकभाजो भुजगयुवतयरत्त्वद्गुणानुद्गृणन्ति ।।
अनर्घराघवम्, 1.56 ।।

23. प्राचीविभ्रमकर्णिकाकमलिनीसंवर्तिका संप्रति
द्वे तिस्रो रमणीयमम्बरमणेर्द्यामुच्चरन्ते रूचः ।
सूक्ष्मोच्छ्वासमपीदमुत्सुकतया संभूय कोषाद्बहि–
र्निष्क्रामद्भ्रमरौघसंभ्रमभरादम्भोजमुज्जृम्भते ।। अनर्घराघवम्, 2.4 ।।

24. वही, 2.30 ।

25. धातुश्चतुर्मुखीकण्ठशृंगाटकविहारिणीम् ।
नित्यप्रगल्भवाचालामुपतिष्ठे सरस्वतीम् ।। वही 1,11 ।।

26. संस्कृत नाटक– ए0बी0कीथ, अनुवादक– डॉ0 उदयभानुसिंह
द्वितीय संस्करण, 1971 पृ0 237 ।

27. संस्कृत नाटक– ए0बी0कीथ, अनुवादक– डॉ0 उदयभानुसिंह
द्वितीय संस्करण, 1971 पृ0 238–241 ।

28. देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतम्,
जानीते नितरामसौ गुरूकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः ।
अब्धिर्लंघित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता–
मापातालनिमग्नपीवर तनुर्जानातिमन्थाचलः ।।
संस्कृत नाटक– ए0बी0कीथ, पृष्ठ–243 पाण्डुलिपि से उद्धृत ।

29. आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः,
कन्येयं कलधौतकोमलरूचिः, कीर्तिश्च लाभास्पदम् ।
नाकृष्टं, न च टात्कृतं, न नमितं स्थानांच न त्याजितं,
केनापीदमहो धनुः किमधुना निर्वीरमुर्वीतलम् ।। प्रसन्नराघवम्, 1.32 ।।

0. मंजीरकः— इदं तावत्कार्मुकम्, कन्या तु चरमं लोचनपथमवतरिष्यति ।
पुरूषः— (संसरम्भम्) धिङ्.मूर्ख, कथं रे, राशिनक्षत्रपाठकानां गोष्ठीं न दृष्टवानसि ?
तेऽपि कन्यामेव प्रथमं प्रकटयन्ति, चरमं धनुः । प्रसन्नराघवम्, पृ0, 52 ।।

31. कदली कदली, करभः करभः,
करिराजकरः, करिराजकरः ।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्त्ति तुला—
गिदमूरूयुगं न चमूरूदृश ।। प्रसन्नराघवम्, 1.37 ।।

32. वार्ता च कौतुकवती, विमला च विद्या,
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरंगनाभेः ।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार—
मेतत्त्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ ।। प्रसन्नराघवम्, 2.2 ।।

33. हा जानकि ! त्वमधुनासि कथं भवित्री ,
(सविचिकित्सम्)
धिग्दैवतं तव सुदारूण एव पाकः ।
(सक्रोधम्)
आः पाप ! राक्षसकुलाधम, संहृतोऽसि
(ससंभ्रमम्)
हे वत्स, लक्ष्मण ! धनुर्धनुरेष कालः ।। प्रसन्नराघवम् 6.29 ।।

34. संस्कृत नाटक— ए0बी0कीथ, अनुवादक— डॉ0 उदयभानुसिंह
द्वितीय संस्करण, 1971 पृ0 238—241 ।

35. तमृषिं मनुष्यलोकप्रवेशविश्रामशाखिनं वाचाम् ।
सुरलोकादवतारप्रान्तरखेदच्छिदं वन्दे ।।
धातुश्चतुर्मुखीकण्ठशृंगाटकविहारिणीम् ।
नित्यप्रगल्भवाचालामुपतिष्ठे सरस्वतीम् ।। अनर्घराघवम्, 1, (10—11) ।।

36. स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयताम्,
कवीनां को दोषः, स तु गुणगणानामवगुणः ।
यदेतैर्निश्शेषैरपरगुणलुब्धैरिव जग—,
त्यसावेकश्चक्रे सतत सुखसंवास वसतिः ।।
प्रसन्नराघवम् चौखम्बा 1956 पृष्ठ—20—21, (1.12) ।

षष्ठ अध्याय

नाटकों में रस-निष्पत्ति

षष्ठ अध्याय

नाटकों में रस-निष्पत्ति

रस-निष्पत्ति :

नाटक में रस का महत्वपूर्ण स्थान होता है। रस संचार के बिना नाटक का कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है अतः रस-निष्पत्ति संस्कृत नाटककारों का मुख्य लक्ष्य होता है। आचार्य भरतमुनि के अनुसार रस के बिना नाटकों की कोई सार्थकता नहीं है।[1]

दशरूपककार धनिक धनंजय ने इसलिये नाटक को रसों पर ही आश्रित माना है।[2] रस एक प्रकार का विशेष आनन्द है जो काव्य के पठन, श्रवण अथवा नाटक के अभिनयादि के देखने से सामाजिक को प्राप्त होता है। रस-निष्पत्ति के सम्बन्ध में आचार्य भरतमुनि का एक प्रसिद्ध रस सूत्र-

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। धनिक धनंजय ने इसी बात को शब्दान्तर में कहा है कि विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव एवं व्यभिचारियों के द्वारा जब रति आदि स्थायी भाव आस्वाद्य अर्थात् चर्वणा के योग्य बना दिया जाता है तो वही रस कहलाता है।[3]

यह रस केवल शास्त्रीय वस्तु नहीं है प्रत्युत व्यावहारिक अनुभव गम्य वस्तु है। नाट्यशास्त्र में इसे स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि जिस प्रकार अनेक व्यंजनों, औषधियों और द्रव्यों से युक्त होने पर भोजन कर्ता भोजन में एक विशेष स्वाद का अनुभव करता है, उसी प्रकार रसिक जन अनेक भावों के अनुभवों से

युक्त स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं। यही नाटकों की रसानुभूति है। नाना प्रकार के भावों से संयुक्त होने पर भी स्थायी भाव अपने सामान्य नहीं, वरन् विशेष मानसिक आनन्द को प्रदान करते हैं। इस प्रसंग में एक बात ध्यातव्य है कि जिस प्रकार अनेक व्यंजनों से युक्त भोजन का पूर्ण आनन्द पाने के लिये भूख और स्वाद विशेष आवश्यक होते हैं उसी प्रकार रसानुभूति की पूर्णता के लिये सहृदयता, संवेदनशील आदि संस्कारों और विवेक की आवश्यकता होती है।

विभाव –

भरत के रस सूत्र में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि भावों का उल्लेख किया गया है। तदनुसार विशेष रूप से जो भावों को प्रकट करते हैं वे विभाव कहे जाते हैं। धनिक धनंजय के अनुसार विभाव वह है जिसका ज्ञान होता है। जिसे विभावित करके सामाजिक रसास्वाद करता है, वह विभाव है। विभाव स्थायी भाव को पुष्ट करने वाला होता है।[4] विभाव रसानुभूति के कारण होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–

(1) आलम्बन विभाव और (2) उद्दीपन विभाव। जिसका आलम्बन करने से रस की उत्पत्ति होती है उसे आलम्बन विभाव कहते हैं। उदाहरण के लिये–सीता को देखकर श्रीराम के मन में और श्रीराम को देखकर सीता के मन में रति की उत्पत्ति होती है तथा उन दोनों को देखकर सामाजिक के भीतर रस की अभिव्यक्ति होती है। इसलिये सीता और राम इत्यादि शृंगार रस के आलम्बन विभाव कहे जाते हैं।[5]

अनुभाव :

रति इत्यादि स्थायी भाव की सूचना करने वाले विकार जो नायक–नायिकादि के आश्रय में पाये जाते हैं उन्हें अनुभाव कहते हैं। शब्दान्तर में, कहा जा सकता है कि अपने–अपने आलम्बन अथवा उद्दीपन कारणों से नायक–नायिका के भीतर उद्‌बुद्ध रति आदि स्थायी भाव को बाह्य रूप में जो प्रकाशित करता है वह रति आदि का कार्य रूप काव्य और नाटक में अनुभाव के नाम से जाना जाता है। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि हृदय में स्थित भावों को प्रकट करने वाले अंग विकार, विभिन्न प्रकार की शारीरिक चेष्टायें इत्यादि अनुभाव हैं।[6]

भरतमुनि के अनुसार, जो वाचिक या आंगिक अभिनय के द्वारा रति इत्यादि स्थायी भाव की आन्तरिक अभिव्यक्ति रूप अर्थ का बाह्य रूप में अनुभव कराता है, उसे अनुभाव कहते हैं।[7] भरतमुनि के नाट्‌य शास्त्र के अनुसार अनुभावों का विशेष उपयोग अनुभव की दृष्टि से ही होता है। किसी रस की बाह्य अभिव्यक्ति के लिये अलग–अलग रस को प्रकाशित करने वाले स्मित इत्यादि बाह्य व्यापार अनुभाव कहलाते हैं और यह प्रत्येक रस में अलग–अलग होते हैं तथा अनुकार्य की दृष्टि से भी उसकी रसानुभूति के बाह्य प्रदर्शक होते है। भरत मुनि के द्वारा अनुभावों का यह जो विशेष रूप से अभिनय में प्रयोग दिखाया गया है उससे प्रतीत होता है कि अनुभाव वस्तुतः आन्तरिक रसानुभूति की बाह्य अभिव्यंजना के साधन

हैं और उनमें शारीरिक व्यापार की प्रधानता रहती है। नट कृत्रिम रूप से इन अनुभावों का अभिनय करता है परन्तु अनुकार्य राम और सीता आदि के हृदय में स्थित रसानुभूति की बाह्य अभिव्यक्ति इन साधनों के द्वारा होती है। अनुपश्चाद् भवन्ति इति अनुभावाः अर्थात् यह अनुभव रसानुभूति के बाद में होते हैं, रसानुभूति के कार्य होते हैं, इसलिये इन्हें अनुभाव कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, ये अनुकार्य राम–सीता आदि की रसानुभूति का अनुभव या अनुमान सामाजिकों को कराते हैं इसलिये इन्हें अनुभाव कहा जाता है।

अनुभावों की कोई निश्चित संख्या नहीं है परन्तु आठ अनुभाव जो सहज हैं और सात्विक विकारों के रूप में आते हैं, सात्विक भाव कहे जाते हैं। ये अनायास सहज रूप से प्रकट होते हैं। आठ सात्विक अनुभाव निम्नवत् हैं– स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, विवर्णता, कम्प, अश्रु, स्वरभंग और मूर्च्छा आदि। रति इत्यादि स्थायी भाव को प्रकट करने के लिये रोमांचित होना, मुस्कुराना, पास खड़े होकर देखना, स्तम्भवत् जड़ीभूत हो जाना इत्यादि अनुभाव के अन्तर्गत हैं।

व्यभिचारि भाव :

जो भाव विशेष रूप से अर्थात् आभिमुख्येन स्थायी भाव के अन्तर्गत कभी उठते और कभी गिरते, डूबते, उतराते नजर आते हैं वे व्यभिचारि भाव कहे जाते हैं। ये भाव स्थायी भाव में इसी तरह उन्मग्न तथा निमग्न होते हैं, जैसे समुद्र में तरंगें उठती हैं और विलीन हो जाती है।[8] व्यभिचारि भावों को संचारी भाव भी

कहा जाता है। जो उद्बुद्ध हुये स्थायी भावों की पुष्टि तथा उच्चय में उनके सहकारी होते हैं वे ही व्यभिचारि भाव अथवा संचारी भाव हैं। एक व्यभिचारि भाव किसी एक स्थायी भाव या रस के साथ नहीं रहता है, वरन् अनेक रसों में देखा जा सकता है। यही इसका व्यभिचार है। उदाहरण के लिये, शंका वियोग श्रृंगार में होती है, करूण तथा भयानक रस में भी होती है। एक संचारी भाव का कोई एक स्थायी भाव या रस से सम्बन्ध नहीं होता है। वे रसों में नांना रूप से विचरण करते रहते हैं और रसों को पुष्ट कर उसे आस्वाद्य के योग्य बनाते हैं, इसीलिये उन्हें व्यभिचारि भाव कहा जाता है। नाट्य शास्त्र के अनुसार व्यभिचारों की संख्या तेंतीस (33) है। ये निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिन्ता, मोह, स्मृति और धृति इत्यादि 33 प्रकार के है।[9]

स्थायी भाव :

दशरूपककार धनिक धंनजय ने स्थायी भाव को स्पष्ट करने के लिये लवणाकर समुद्र की उपमा दी है। समुद्र के अन्तर्गत कोई भी खारा या मीठा पानी मिलकर तद्रूप हो जाता है। समुद्र समस्त वस्तुओं को आत्मसात् कर के आत्म रूप बना लेता है। स्थायी भाव हम उसे कह सकते हैं जो रति इत्यादि भाव अपने से प्रतिकूल अथवा अनुकूल किसी भी तरह के भाव से विच्छिन्न नहीं होता तथा दूसरे सभी प्रतिकूल या अनुकूल भावों को आत्मरूप बना लेता है[10]

स्थायीभाव रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण है। स्थायी भाव

मन के भीतर स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है और हृदय में एक अपूर्वानन्द का संचार कर देता है। स्थायी भाव की यह अभिव्यक्ति ही रसास्वाद जनक या रस्यमान होने से रस शब्द से बोध्य होती है।[11] दूसरें शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारि भावों के संयोग से व्यक्त होने वाले स्थायी भाव को रस कहते हैं।

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने नाटक में नव रसों की सत्ता स्वीकार की है और उनके नव स्थायी भाव बतलायें हैं जो निम्नवत् हैं– रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद। इस प्रकार नाटक में शृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नव रस बतलाये हैं। उक्त नवें स्थायी भाव मनुष्य के हृदय में स्थायी रूप से सदा विद्यमान रहते हैं, इसीलिये इन्हें स्थायी भाव कहा जाता है। सामान्य रूप से वे अव्यक्त अवस्था में रहते हैं, किन्तु जब जिस स्थायी भाव के अनुकूल विभावादि सामग्री प्राप्त हो जाती है तब वह व्यक्त हो जाता है और रस्यमान अथवा आस्वाद्यमान होकर रस रूपता को प्राप्त हो जाता है।

अनर्घराघवम् नाटक में रस :

जैसा कि विदित है कि रूपक रसों पर आश्रित होते हैं।[12] यद्यपि नाट्यशास्त्र के अनुसार, नाटकों में अंगी रस एक ही उपनिबद्ध होना चाहिये।

या तो नाटक में श्रृंगार रस की प्रधानता होनी चाहिये या वीर रस की प्रधानता होनी चाहिये। अंग रूप में अन्य सभी रसों का निबन्धन हो सकता है और निर्वहण सन्धि में अद्‌भुत रस का उपनिबन्धन किया जाना चाहिये।[13]

अनर्घराघवम् में रस के सम्बन्ध में विचार करने पर विदित होता है कि प्रारम्भ में सूत्रधार प्रस्तावना में कहता है कि किसी अन्य द्वीप से आये हुये कलह कन्दल नामक नट ने यह कहा है कि रौद्र, वीभत्स तथा भयानक रस से ओत–प्रोत कोई प्रबन्ध नित्य प्रति दिखलाकर यहाँ के लोगों को उद्‌वेजित कर दिया है।[14] इसलिये सूत्रधार वीर तथा अद्‌भुत रस से परिपूर्ण कथावस्तु से युक्त, संसार को आनन्द प्रदान करने वाले सन्दर्भ का अभिनय करना चाहता है।[15] इससे प्रतीत होता है कि इस नाटक में वीर रस और अद्‌भुत रस की प्रधानता है। नाटककार मुरारि स्वयं कहते हैं कि मेरे नाटक के नायक वीर उदात्त गुण मण्डित भगवान रामचन्द्र ही हैं।[16]

वीर रस में प्रताप, विनय, कार्य कुशलता, बल, मोह, अविषाद, नय, विस्मय तथा शौर्यादि विभावों से इसकी (वीर रस) पुष्टि होती है। यह वीर रस उत्साह नाम स्थायी भाव से भावित होता है तथा दयावीर, रणवीर और दानवीर आदि भेदों से तीन प्रकार का होता है। इसमें मति, गर्व, धृति तथा प्रहर्ष इत्यादि संचारी भाव विशेष रूप से पाये जाते हैं।[17] प्रताप, विनय आदि विभावों के द्वारा उत्पन्न करूणा, युद्ध, दानादि अनुभावों के द्वारा व्यक्त एवं गर्व, घृति, हर्ष, अमर्ष,

स्मृति, मति, वितर्क आदि व्यभिचारि भावों के द्वारा भावित उत्साह नामक स्थायी भाव जब सहृदय के मन का विस्फार कर उन्हें आनन्दित कर उनके द्वारा आस्वादित होता है तो वह वीर रस के रूप में परिपुष्ट होता है। वीर रस से अद्‌भुत रस की उत्पत्ति होती है।

अनर्घराघवम् नाटक के नायक श्रीराम हैं जो धीर और वीर हैं। इनमें मति, गर्व, घृति तथा प्रहर्ष आदि संचारी भाव विद्यमान हैं। प्रताप, विनय आदि विभावों के द्वारा उत्पन्न करूणा, युद्ध आदि अनुभावों के द्वारा तथा गर्व, घृति, हर्ष इत्यादि व्यभिचारि भावों के द्वारा भावित उत्साह रूप स्थायी भाव उनमें प्रचुरता के साथ विद्यमान है।

अनर्घराघवम् नाटक में वीर रस की निष्पत्ति हुई है। उदाहरण के लिये, विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञ–रक्षा के प्रसंग में राम के द्वारा राक्षसों के वध का संकल्प उनमें वीर रस की सृष्टि करता है। श्रीराम कहते हैं कि कल्पान्त काल में कुपित यमराज की तरह भयंकर तथा यज्ञ विघ्नकारी राक्षसों को टीस देने वाला मेरा यह धनुष इस पृथ्वी को राक्षस–विहीन करने का मंगल कार्य प्रारम्भ करे। यहाँ पर यज्ञ विघ्नकारी राक्षस और श्रीराम का धनुष आलम्बन विभाव है। यज्ञों में विघ्न उद्दीपन विभाव, घृति तथा श्रीराम की दृढ़मति अनुभाव और राक्षसों के वध के लिये श्रीराम का उत्साह स्थायी भाव है। अतः यहाँ वीर रस की निष्पत्ति हुई है।[18]

विदेहराज जनक कहते हैं कि मणि, मन्त्र तथा औषधि के प्रभाव की

तरह रघुवंशियों का प्रभाव भी वस्तुतः अचिन्तनीय है। वे महादेव के धनुष को देखकर फिर भी यह बात कहते हैं कि महादेव की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने त्रिभुवन विजयी देवों के तेज को एकत्रित करके जिस धनुष को बनाया है; जिसके बाण साक्षात् भगवान विष्णु हैं, मौर्वी शेषनाग तथा लक्ष्य त्रिपुर बन चुका है, ऐसा यह अद्भुत शिव–धनुष है। यहाँ पर शिव–धनुष और बाण आलम्बन विभाव तथा त्रिपुर उद्दीपन विभाव, देवों का तेज अनुभाव और विस्मय स्थायी भाव होने से अद्भुत रस की सृष्टि हुई है।[19]

जामदग्न्य परशुराम–संवाद में अनेक बार वीर रस की सृष्टि हुई है। जामदग्न्य परशुराम श्रीराम से कहते हैं कि हे शुद्ध क्षत्रिय कुमार ! क्या तुमने महादेव के प्रथम शिष्य परशुराम का कभी स्मरण नहीं किया है ? जिसके मदमत्त यमराज के दंष्ट्रों के समान शरों से मुक्त होने पर कार्तिकेय ने अपने को दो बार शर–जन्मा समझ लिया था; उस वीर परशुराम ने क्षत्रियों के भुजवनविषमा इस पृथ्वी को इक्कीस बार जीता है। यहाँ पर महादेव के प्रथम शिष्य परशुराम और क्षत्रियों के भुजवनविषमा पृथ्वी आलम्बन विभाव, क्षत्रियगण उद्दीपन विभाव, परशुराम की दृढ़मति अनुभाव और उत्साह स्थायी भाव है; इसलिये यहाँ वीर रस की निष्पत्ति हुई है।[20]

दूसरे स्थान पर जामदग्न्य श्रीराम से कहते हैं कि रे क्षत्रिय कुमार! उन अनुभवों द्वारा सत्यापित हमारी प्रशंसा की बात छोड़ दो। तुमने कौशिक से जिस

अस्त्र की शिक्षा प्राप्त की है, उसे प्रकट करो। मेरा यह प्रिय परशु तथा फड़कता हुआ यह बाहु किस वीर–गोष्ठी विनोद को प्रसन्न नहीं करता है ? यहाँ पर जामदग्न्य और श्रीराम आलम्बन विभाव, परशु और फड़कता हुआ बाहु उद्दीपन विभाव, वीर–गोष्ठी विनोद अनुभाव और उत्साह स्थायी भाव है; जिससे वीर रस की निष्पत्ति होती है।[21]

सीता–हरण के अवसर पर राम बहुत शोकाकुल होते हैं। वे कहते हैं कि–श्वास वेग से निकल रहा है, मुख सूख रहा है, स्वर भंग हो रहा है; अवयवों के श्रान्त तथा स्रस्त हो जाने से शरीर विवर्ण हो रहा है, जड़ता बढ़ रही है, आँखों से अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं, स्मरण शक्ति लुप्त हो रही है। हे भाई लक्ष्मण! मुझमें शोक करूण रस के रूप में परिणत हो रहा है। यहाँ पर राम और सीता आलम्बन विभाव, रावण के द्वारा सीता का अपहरण उद्दीपन विभाव, जड़ता और अश्रु प्रवाहादि अनुभाव और शोक स्थायी भाव की करूण रस के रूप में निष्पत्ति हो रही है।[22]

श्रीराम एक स्थान पर बालि की वीरता पर विस्मय करते हैं। वे कहते हैं कि विश्वविजयी रावण को अपने भुजस्तम्भों में बन्दी बनाकर बालि ने सन्ध्यावन्दन कालिक समाधि धारण की थी, कार्तवीर्य के चरित्र को प्रत्यक्ष देखने वाली रेखा को छोड़कर समुद्र की सभी नदियाँ तथा सम्पूर्ण संसार बालि द्वारा किये गये उस सन्ध्या समाधि के दर्शन से विस्मित हो उठा है। यहाँ पर बालि, रावण, कार्तवीर्य आदि आलम्बन विभाव, नदियाँ उद्दीपन विभाव, सन्ध्याकालीन समाधि अनुभाव और

विस्मय स्थायी भाव से जनित अद्भुत रस की सृष्टि हुई है।[23]

राम–रावण युद्ध में एक स्थल पर वीर रस की निष्पत्ति हुई है। रावण जो कार्य बीस हाथों से करता है राम उसका उत्तर दो हाथों से देते हैं। इस प्रकार यद्यपि दोनों के फल तुल्य हैं तथापि रावण की रणकुशलता से राम की रणकुशलता दसगुनी प्रमाणित हो रही है। यहाँ पर रावण और राम आलम्बन विभाव, रण–कुशलता उद्दीपन विभाव, राम की दृढ़ मति अनुभाव और उत्साह स्थायी भाव वीर रस में परिणत हो रहा है।[24]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनर्घराघवम् में वीर रस और अद्भुत रस की सृष्टि हुई है तथा अन्य रसों में करूण रस और वीभत्स रसों की भी यत्र–तत्र निष्पत्ति हुई है।

मुरारि का कवित्व एवं शास्त्रीय ज्ञान :

मुरारि का कविकर्म श्लाघनीय है। काव्य–कला के क्षेत्र में उन्होंने किसी दूसरे कवि का अनुकरण नहीं किया है। अपने पाण्डित्य के बल पर तथा अपनी मौलिक कल्पना शक्ति के सहारे अपनी कविता–कामिनी का श्रृंगार किया है। इनकी कविता में व्याकरण के नये–नये प्रयोगों का परिचय हमें मिलता है। सिद्धान्त कौमुदीकार भट्टोजि दीक्षित ने मुरारि के अनर्घराघवम् से अनेक उदाहरणों को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। उनका शास्त्रीय ज्ञान महान् है। उन्होंने अपने वैदुष्य का अपने नाटक में भरपूर परिचय दिया है। इनके नाटक में अच्छी–अच्छी उत्प्रेक्षाएं

प्राप्त होती हैं जिनसे उनकी मौलिकता का पता चलता है। उनके कवित्व को प्रमाणित करने के लिये एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। कमलिनी सहस्त्रपत्रा होती है। जब सूर्य अस्त होने लगता है तब उसके अस्त होते हुए करों को एक–एक कर गिनती हुई यह कमलिनी अपने हजार पत्रों को संकुचित कर लेती है; फिर जब सूर्य उगने लगता है तब उसके उदित होने वाले करों की गिनती सी करती हुई वही नलिनी अपने हजार पत्रों को विकसित कर लेती है।[25]

मुरारि की कविता में अभिव्यजंना शक्ति का चमत्कार भी दर्शनीय है। उदाहरण के लिये–वसन्त ऋतु के कारण मतवाली कोकिलाओं के कम्पित आम्र–मंजरियों की पराग धूलि के कारण दुर्गम गोदावरी के तट प्रदेश दिखायी दे रहे हैं जिन्हें आखेटकों से भयभीत मृगों का समूह किसीप्रकार पार करके धारावाही धूलि समूह से पद–चिन्हों के लुप्त हो जाने पर निःशंक है।[26] इस पद्य का भाव निश्चय ही अत्यन्त साधारण है परन्तु यह उनकी अभिव्यंजना–निष्पत्ति सिद्धि की श्रेष्ठ कृति है। मुरारि का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि सरस्वती देवी की उपासना तो बहुत लोग करते हैं परन्तु वाणी के तत्व को गुरूकुल में रहकर परिश्रम करने वाले मुरारि कवि ही भली भाँति जानते हैं। वानर वीरों ने समुद्र को अवश्य पार कर लिया था, किन्तु उसकी गहराई को पाताल तक निमग्न स्थूलकाय मन्दराचल ही जानता है।[27]

प्रसन्नराघवम् में रस-निष्पत्ति :

प्रसन्नराघवम् नाटक में प्रमुख रस शृंगार है। अन्य रस उसके सहायक

हैं। नाटककार जयदेव ने प्रथम अंक की प्रस्तावना में नट के माध्यम से कहा है कि प्रत्येक अंक में सभी श्रृंगारादि रसों से युक्त, नवीन और विकसित होने वाले पुष्पों की पंक्ति के तुल्य शोभित रंग–रचना से सम्पन्न, चन्द्र के सदृश कुटिलता से अतिशय मनोहर, अति सुन्दर रचना से मनोरम नाटक का अभिनय किया जायेगा।[28] कवि का यह उत्कट अभिलाष है कि वाल्मीकि के वदनेन्दु मण्डल से गिरते हुये काव्यामृत रूपी समुद्र की कुछ बिन्दुओं को पीकर भी कवि नूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी प्रलय काल पर्यन्त तक वृष्टि करती रहे। वह आगे भी कहते हैं अनुपम रसों के प्रवाह से मधुर जिनकी वाणियों का विलास कुरंगाक्षी ललनाओं के बिम्बाधरों की मधुरता को ज्ञापित करता है। इस प्रकार जयदेव की कविता रसों से भरी हुई है। कवि की भारती कोमल काव्य–कौशलकला में लीलावती है। उनकी वाणी का विलास रसाल की तरह रसालय है। जयदेव के आदर्श कवि मयूर, भास, कविकुलगुरू कविताकामिनी विलास कालिदास इत्यादि हैं। ये सभी कवि जन कविता कामिनी के श्रृंगार हैं फिर ऐसे कवियों को अपना आदर्श मानने वाले जयदेव की कविता क्यों रसवती नहीं होगी ?

प्रसन्नराघवम् नाटक में अद्‌भुत रस का उदाहरण दर्शनीय है। द्वीप–द्वीप से भी दूर देश भागों से ये सब राजा लोग आये हुए हैं, यह कन्या सुवर्ण के सदृश कान्तिवाली है। यश भी प्राप्ति का विषय है। किसी ने भी इस धनुष को नहीं उठाया है, कुछ उठाकर धनुष का टंकार तक भी नहीं किया है और न वे उसे झुका सके

हैं, स्थान से टस से मस तक नहीं कर सके हैं। आश्चर्य है कि इस समय भूतल क्या वीर शून्य हो गया है ?[29] यहाँ पर द्वीप–द्वीप के राजा लोग आलम्बन विभाव, कीर्ति का लाभ उद्दीपन विभाव, पौरूष हीनता अनुभाव, विस्मय स्थायी भाव अद्‌भुत रस में परिणत हो रहा है।

अर्थान्तर संक्रमित वाच्य–ध्वनि का एक मनोरम उदाहरण उल्लेखनीय है–

कदली कदली, करभः करभः,
करिराज करः, करिराज करः।
भुवन त्रितयेऽपि बिभर्त्ति तुला–
मिदमूरूयुगं न चमूरूदृशः ।।

प्रसन्नराघवम् 1.37

जिसका तात्पर्य यह है कि कदली–कदली है, करभ–करभ ही है, करिराज का कर करिराज कर ही है किन्तु मृगनयनी सीता के ये दोनों उरूभाग तीनों लोकों में अपनी समानता नहीं रखते हैं। प्रस्तुत श्लोक में द्वितीय कदली, करभ और करिराज कर शब्द पुनरूक्ति दोष के भय के कारण सामान्य कदली, करभ और करिराजकर रूप मुख्यार्थों में बाधित होते हुए जाड्यादि गुण विशिष्ट कदली आदि रूप अर्थों को बाधित करते हैं। यहाँ पर जाड्यातिशय व्यंग्य है। इस श्लोक में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य–ध्वनि का चमत्कार अवलोकनीय है। व्यंग्यार्थ

की प्रधानता के कारण यह उत्तम काव्य का उदाहरण है।

सीता–स्वयंवर में रावण के आगमन से विषाद पूर्वक मंजीरक कहता है कि वत्सो सीते! जिसके कुलगुरू स्वयं याज्ञवल्क्य, पिता विदेहराज जनक और जननी पृथ्वी है, ऐसा होते हुये भी तुम आज दुर्भाय के विघात से राक्षस राज रावण के हस्तगत होगी यह बड़ा आश्चर्य है। यहाँ पर याज्ञवल्क्य, सीता आदि आलम्बन विभाव, दुर्भाग्य उद्दीपन विभाव, आश्चर्य मिश्रित भीति अनुभाव और विस्मय स्थायी भाव अद्भुत रस में परिणत हो रहा है।

चण्डिकायतन में आती हुई सीता को देखकर नाटक के नायक राम कहते हैं कि श्याम निकषोपल पर खचित स्वर्ण की अद्वितीय रेखाओं के सदृश, कनक कदली के अभ्यन्तर विद्यमान कन्दली के सदृश पीतवर्ण, हरिद्रा के रस के सदृश शोभा–प्रवाह को धारण करने वाले अंगों से उपलक्षित, काम क्रीडा के भवन की वलभी में विद्यमान दीपशिखा की भाँति यह कौन सुन्दरी प्रादुर्भूत हो रही है ?[30]

यहाँ पर राम और सीता आलम्बन विभाव, श्वेत कमलों से सुशोभित सरोवर और पुष्पवाटिका उद्दीपन विभाव, नायक की चंचल दृष्टि अनुभाव और उनकी सीता विषयक रति शृंगार रस में परिणत हो रही है।

नायक राम सीता के सौन्दर्य को देखकर कहते हैं कि बाल्यावस्था के बीत जाने पर, चातुर्य के आलिंगन करने में रसिक होने पर सुन्दरी सीता के जिस शरीर को किसी अवस्था ने भी स्पर्श नहीं किया है, वैसा यह सीता का मनोहर वपु

कामदेव के आवास के लिये सुन्दर भवन सा प्रतीत हो रहा है। यहाँ पर राम और सीता आलम्बन विभाव, नायिका का शरीर उद्दीपन विभाव, चातुर्य अनुभाव, सीता विषयक रति शृंगार रस में परिणत हो रही है।[31]

एक अन्यत्र स्थान पर सीता को देखकर नाटक के नायक श्रीराम कहते हैं कि सीता ने बाल्यावस्था रूप शिशिर ऋतु को छोड़कर तारूण्य रूप वसन्त की नवीन शोभा प्राप्त कर ली है। इसके स्तन विकसित नूतन पुष्प गुच्छ हैं। सुन्दरी सीता की यह देहलता मेरे चित्त में हर्ष उत्पन्न कर रही है। यहाँ पर राम और सीता आलम्बन विभाव, सीता की देह यष्टि में विद्यमान तारूण्य और नवल पुष्पगुच्छ के सदृश स्तनद्वय उद्दीपन विभाव, हर्ष अनुभाव तथा नायक की सीता विषयक रति शृंगार रस में परिणत हो रही है।[32]

इधर नाटक की नायिका सीता भी राम को देखकर बड़े कौतुक के साथ कहती है कि विकसित कोमल नील कमलों के पत्र–समूह के सदृश नीलवर्ण वाले महेश्वर के सौम्य शेखर में प्रकाशित सोमवत् कोमल अनंग के रूप सौन्दर्य को खण्डित करने वाला लताओं की ओट में स्थित यह कौन पुरूष मेरे लोचनों में सुख वर्षा कर रहा है ? यहाँ पर सीता और राम आलम्बन विभाव, कौतुक अनुभाव और सीता की राम–विषयक रति रूप स्थायी भाव शृंगार रस में परिणत हो रहा है।[33]

पुष्पवाटिका में नाटक के नायक श्रीराम को देखकर नायिका सीता का यह कथन है कि हे लोचनों! प्रिय राम के मुख कमल के मकरन्द का पान कर लो।

हे चंचल नेत्रों! फिर तुम दोनों कहाँ होगे और यह प्रियवर कहाँ होंगे ? इस बात पर तनिक विचार कर लो। यहाँ पर सीता और राम आलम्बन विभाव, प्रिय राम के वदनारविन्द का मकरन्द उद्दीपन विभाव, चंचलता अनुभाव, सीता की राम विषयक रति श्रृंगार रस में परिणत हो रही है।

एक दूसरे स्थल पर नाटक के नायक श्रीराम सीता को देखकर कहते हैं कि अमृत से भरे हुये पयोधि के क्षीर की लहरों के समान चंचलाक्षी सीता अपने दुग्ध–धवल कटाक्ष पातों से मानो उन्हें स्नान करा रही है। हे विधाता! यह उत्तम मुहूर्त सदा ही बना रहे अथवा यह बात कैसे हो सकती है क्योंकि विधाता की रचनायें संयोग और वियोग से मिश्रित होती हैं।[34] यहाँ पर राम और सीता आलम्बन विभाव, चंचल लोचन उद्दीपन विभाव, कटाक्षपात अनुभाव, नायक श्रीराम की सीता विषयक रति श्रृंगार रस के रूप में परिणत हो रही है।

इस प्रकार कतिपय उपर्युक्त उदाहरणों के अवगाहन–विगाहन से विदित होता है कि यद्यपि प्रसन्नराघवम् नाटक में अन्य रस भी विद्यमान हैं किन्तु इसमें श्रृंगार रस की निष्पत्ति प्रधानता के साथ हुई है। नाटककार जयदेव रस–सिद्ध महाकवि हैं। उनके काव्य में जरा और मरण का भय प्रतीत नहीं होता है। इनके काव्य में कौतुक है और ये कोमल–काव्य–कौशलकला में प्रवीण हैं। इनकी वाणियों का विलास अनुपम रसों के निष्यन्द से मधुर है। इनका वाग्विलास घनीभूत मकरन्दों के प्रस्यन्द से पूर्ण आलवाल वाले रसाल के सदृश रसवान है। वस्तुतः

इनकी कविता रसवती है और सुरभारती का भव्य शृंगार है।

परवर्ती कवियों ने तथा हिन्दी के राम भक्त कवियों ने नाटक के भाव–प्रसूनों से अपनी कविता का शृंगार किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो अपने प्रबन्ध काव्य रामचरितमानस में जयदेव के नाटक 'प्रसन्नराघवम्' से अनेक भाव–प्रसून और कोमलकान्त–पदावली का शब्दशः अनुकरण किया है। यह जयदेव के अमर कवित्व का सर्वोत्तम प्रमाण है। रामकथा में जो पवित्रता और कोमलता विद्यमान है, वह हमें प्रसन्नराघवम् में देखने को मिलती है। वस्तुतः, वे अमर कवित्व के धनी हैं और संस्कृत कविता–कामिनी के विलास हैं।

पाद टिप्पणी
अध्याय – 6

1. नहि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते । भरत नाट्यशास्त्र, 5.15 ।
2. दशधैव रसाश्रयम्, दशरूपक– 1.7 पृ0–04 ।
3. विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः ।
   आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायीभावो रसः स्मृतः । दशरूपक, 4.1 पृ0, 182 ।
4. ज्ञानमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत् ।
   आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा ।। दशरूपक, 4.2 पृ0, 183 ।।
5. काव्यप्रकाश––4.27–28 पृ0 95 ।
6. अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः ।
   हेतु कार्यात्मनोः सिद्धिस्तयोः संव्यवहारतः ।।
   उद्बुद्धं कारणैः स्वैः बहिर्भावम् प्रकाशयन् ।
   लोके यः काव्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्योः ।। साहित्यदर्पण, 3.132 ।।
7. नाट्यशास्त्र, 7.5 ।
8. विशेषाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः ।
   स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ ।। दशरूपक, 4.7 पृ0, 189 ।।
9. निर्वेदग्लानिशंकाश्रमधृतिजडताहर्षदैन्यौग्र्यचिन्ता–
   स्त्रासेर्ष्यामर्षगर्वाः स्मृतिमरणपदाः सुप्तनिद्राविबोधाः ।
   व्रीडापस्मारमौनाः मतिरलसतावेगतर्कावहित्था,
   व्याध्युन्मादौ विषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिंशदेते त्रयश्च ।।
   दशरूपक, 4.8 पृ0, 189 एवं, नाट्यशास्त्र, 6.18, ।।
10. विरूद्धैरविरूद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते नयः ।
    आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः ।। दशरूपक, 4.34 पृ0, 217 ।।
11. व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ।
    काव्यप्रकाश, 4.28 पृ0, 95 ज्ञानमण्डल वाराणसी, 1960 ।
12. दशधैव रसाश्रयम् । दशरूपक 1.7 ।
13. एको रसो अंगी कर्त्तव्यो वीरः श्रृंगार एव वा ।
    अंगमन्ये रसाः सर्वे कुयान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।। दशरूपक 3.33 ।।
14. कुतश्चिद् द्वीपादागतेन कलहकन्दल नाम्ना कुशीलवेन रौद्रबीभत्सभयानकाद्
    –भुतरसभूयिष्ठं कमपि प्रबन्धमभिनयता नित्यं किलायमुद्वेजितो लोकः ।
    अनर्घराघवम्, प्रथम अंक, पृ0–4.5 ।
15. तस्मैवीराद्भुतारम्भगम्भीरोदात्तवस्तवे ।
    जगदानन्दकन्दाय सन्दर्भाय त्वरामहे ।। अनर्घराघवम् , 1.6 ।।

16. वीरोदात्तगुणोत्तरो रघुपतिः काव्यार्थबीजममुनिः । अनर्घराघवम् , 1.8 ।

17. वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्व–
 मोहाविषादनयविस्मय विक्रमाद्यैः ।
 उत्साह भूः स च दयारणदानयोगाः–
 त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृति प्रहर्षाः ।। दशरूपक, 4.72 ।।

18. कल्पान्तकर्कशकृतान्त भयंकरं मे
 निष्प्रघ्नतः क्रतुविघातकृताममीषाम् ।
 नीराक्षसां वसुमतीमपि कर्तुमद्य,
 पुण्याहमंगलमिदं धनुरादधातु ।। अनर्घराघवम्, 2.33 ।।

19. गिरीशेनाराद्धस्त्रिजगदवंजैत्रं दिविषदा–
 मुपादाय ज्योतिः सरसिरूहजन्मा यदसृजत् ।
 हृषीकेशोयस्मिन्नषुरजनि मौर्वी फणिपतिः,
 पुरस्तिस्रो लक्ष्यं धनुरिति किमप्यद्भुतमिदम् ।। वही, 3.32 ।।

20. महासेनो यस्य प्रमदयमदंष्ट्रासहचरैः,
 शरैर्मुक्तो जीवन्द्विरिव शरजन्मा समभवत् ।
 इमां च क्षत्राणां भुजवनमहादुर्गविषमा–
 मयं वीरो वारानजयदुपविंशान्वसुमतीम् ।। अनर्घराघवम्, 4.32 ।।

21. अनुभवपुनरूक्तां मुंच न स्तोत्रचर्या–
 मुपनमय तदेतत्कौशिकोपज्ञमस्त्रम् ।
 क्षिपति न खलु कालं वीरगोष्ठीविनोद–
 प्रिय परशुरयं मे बाहुरूद्यच्छमानः ।। वही, 4.34 ।।

22. इयमविरलश्वासा शुष्यन्मुखी भिदुरस्वरा,
 तनुरवयवैः श्रान्तस्रस्तैरूपैति विवर्णताम् ।
 स्फुरति जडता बाष्पायेते दृशौ गलति स्मृति–
 र्मयि रस तया शोको भावश्चिरेण विपच्यते ।। अनर्घराघवम्, 5.22 ।।

23. वन्दीकृत्य जगद्विजित्वरभुजस्तम्भौघदुःसंचरं,
 रक्षोराजमपि त्वया विदधता संध्यासमाधिव्रतम् ।
 प्रत्यक्षीकृतकार्तवीर्यचरितामुन्मुच्य रेवां समं,
 सर्वाभिर्महिषीभिरम्बुनिधयो विश्वेऽपि विस्मापिताः ।। वही, 5.44 ।।

24. यद्रावणो बहुभिरेष भुजैः करोति,
 तद्राघवः प्रतिकरोति भुजद्वयेन ।
 कर्म द्वयोर्यदपि तुल्यफलं तथापि,
 रक्षोभटादृशगुणं नरवीरशिल्पम् ।। अनर्घराघवम्, 6.63 ।।

25. एकद्विप्रभृतिक्रमेण गणनामेषामिवास्तं यतां,

 कुर्वाणा समकोचयद्दशशतान्यम्भोजसंवर्तिकाः ।

 भूयोऽपि क्रमशः प्रसारयति ताः संप्रत्यमूनुद्यतः

 संख्यातुं सकुतूहलेव नलिनी भानोः सहस्त्रं करान् ।। अनर्घराघवम्, 2.5 ।।

26. दृश्यन्ते मधुमत्तकोकिलवधूनिर्धूतचूतांकुर–

 प्राग्भारप्रसरत्परागसिकतादुर्गास्तटीभूमयः ।

 याः कृच्छ्रादतिलंघ्य लुब्धकभयात्तैरेव रेणूत्करे–

 र्धारावाहिभिरस्ति लुप्तपदवीनिःशंकमेणीकुलम् ।। अनर्घराघवम्, 5.6 ।।

27. देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतम्,

 जानीते नितरामसौ गुरूकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः ।

 अब्धिर्लंघित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता–

 मापातालनिमग्नपीवर तनुर्जानातिमन्थाचलः ।।

 संस्कृत नाटक– ए0बी0कीथ, पृष्ठ–243 पाण्डुलिपि से उद्धृत ।

28. प्रत्यंकमंकुरितसर्वरसावतार–

 न्नव्योल्लसत्–कुसुमराजिविराजिबन्धम् ।

 घर्मेतरांशुमिव वक्रतयातिरम्यं,

 नाट्यप्रबन्धमतिमंजुलसंविधानम् ।। प्रसन्नराघवम्, 1.7 ।।

29. आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः,

 कन्येयं कलधौतकोमलरूचिः, कीर्तिश्च लाभास्पदम् ।

 नाकृष्टं, न च टात्कृतं, न नमितं स्थानांच न त्याजितं,

 केनापीदमहो धनुः किमधुना निर्वीरमुर्वीतलम् ।। प्रसन्नराघवम्, 1.32 ।।

30. केयं श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखा–

 लग्नैरंगैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः ।

 हारिद्राम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरंवहद्भिः

 कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति ।। प्रसंन्नराघवम् 2.7 ।।

31. अपक्रान्ते बाल्ये, तरूणिमनि चागन्तुमनासि,

 प्रयाते मुग्धत्वे, तचुरिमणि चाश्लेषरसिके ।

 न केनापि स्पृष्टं यदिह वयसा मर्म परमं

 तदेतत्पंचेषोर्जयति वपुरिन्दीवरसदृशः ।। प्रसन्नराघवम्, 2.11 ।।

32. निर्मुक्तशैशवदशा–शिशिरा नवीन–

सम्प्राप्त–यौवन–वसन्त–मनोरम–श्री : ।

उन्मीलितस्तननवस्तबका निकाम–

मेणीदृशस्तनुलता तनुते मुदं न : ।। प्रसन्नराघवम्, 2.19 ।।

33. विकसितपेशलोत्पलपलाशपुंजश्यामलो,

महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोम–कोमलः ।

लतागृहे कोऽयमनंगरूप–खण्डनो

विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः ।। प्रसन्नराघवम्, 2.21 ।।

34. अमृतमयपयोधिक्षीरकल्लोललोलैः

स्नपयति तरलाक्षी यत्र मां नेत्रपातैः ।

अपि भवतु सदाऽयं सन्मुहूर्तः ....

(विमृश्य सविषादम्)

................कुतो वा ?

मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयो हा ! विधातुः ।। प्रसन्नराघवम् 2.28 ।।

✡✡✡✡✡
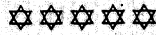
सप्तम अध्याय

उभय नाटकों में कलापक्ष एवं भावपक्ष

सप्तम अध्याय

उभय नाटकों में कला पक्ष और भाव पक्ष :

दोनों ही नाटकों अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् में कला पक्ष एवं भाव पक्ष का सौन्दर्य अपनी सम्पूर्ण चारूता के साथ प्रस्फुटित हुआ है। नाटककार मुरारि ने अपने एक मात्र नाटक अनर्घराघवम् में न केवल अपने पाण्डित्य और वैदुष्य का अपूर्व प्रदर्शन किया है अपितु उनका भाव पक्ष भी प्रशंसनीय है। अपने वैदुष्य के प्रदर्शन के तारतम्य में उन्होंने अपने नाटक के कलापक्ष को बहुत सुसज्जित और सँवारा है। उन्होंने कला पक्ष के अन्तर्गत यथोचित शब्दों का प्रयोग, सुन्दर अलंकार–योजना और समस्त पदावली के प्रयोग के द्वारा अपने नैपुण्य का परिचय दिया है। उनका यह नाटक नाटककार भास प्रणीत स्वप्नवासवदत्तम् की भाँति और कवि कुलगुरू कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् की भाँति प्रसाद गुण युक्त और रस पेशल नहीं है।

कविवर मुरारि ने अपनी अधिकांश शक्ति अपने पाण्डित्य और वैदुष्य को प्रकट करने में ही खर्च कर दी है। फिर भी महापण्डित होने के नाते उन्होंने अपने नाटक को उत्कृष्ट कला पक्ष और भाव पक्ष से सँवारने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने इस नाटक में व्याकरण, धर्मशास्त्र, वेद, राजनीति और वैशेषिक शास्त्र के विद्वान् होने का परिचय दिया है जो नाटककार के रूप में कोई आवश्यक नहीं था क्योंकि इन सबके स्थान–स्थान पर उल्लेख करने से नाटकीय तत्व छिप जाता है जिससे नाटकीयता में हानि होती है।मुरारि की शैली कठिन, दुरूह और क्लिष्ट समास पदावली से युक्त है जो उनकी नाट्यकला का दोष है।

काव्यलक्षण निरूपित करते हुये आचार्य मम्मट ने कहा है कि– दोषों से रहित, गुणों से युक्त और कहीं पर अलंकार से युक्त न होते हुये भी शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।[1] यहाँ पर काव्य लक्षण में आये हुये क्वापि का अर्थ यह है कि सर्वत्र शब्द और अर्थ अलंकार से युक्त हों किन्तु कहीं पर स्फुट अलंकार के विरह में भी काव्यत्व की हानि नहीं होती है[2] किन्तु जयदेव ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'चन्द्रालोक' में यह स्पष्ट कहा है कि– अलंकार काव्य का अनिवार्य धर्म है। वे कहते हैं कि जो व्यक्ति अलंकार से रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानते हैं वे अग्नि को अनुष्ण क्यों नहीं मान लेते ?[3] किन्तु आचार्य मम्मट का काव्य स्वरूप चिन्तन काव्य का सांगोपांग विश्लेषण है। उन्होंने आनन्दवर्धनाचार्य की 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' को हृदयंगम कर ही अपने काव्य लक्षण की सृष्टि की है। उन्होंने अपने काव्य लक्षण के द्वारा न तो अलंकारों अथवा गुणों की दृष्टि से ही काव्य का स्वरूप निरूपित किया है, न तो उक्तिवक्रता की दृष्टि से विशिष्ट शब्दार्थ साहित्य में काव्य का प्रयोग किया है और और न केवल व्यंग्यार्थ की दृष्टि से ही काव्य का उन्मीलन किया है। उनके काव्य लक्षण में अलंकार, गुण, उक्ति–वैचित्र्य और ध्वनि आदि सबका समन्वय है और उसका उचित स्थान और महत्व संकेतित है।

काव्य का स्वरूप रस सृष्टि और रसानुभूति में ही उन्मीलित हुआ करता है। इसके प्रकाशन के लिये मम्मट ने जिस तत् शब्द का प्रयोग किया है यह वही तत् शब्द है जिसकी भावना में ध्वनि तत्व के प्रवर्तक आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है

कि—जिस काव्य में अर्थ अथवा शब्द अपने वाच्यार्थ को गौण बनाकर एक विशेष प्रकार के काव्य भाव को प्रकट करता है विद्वान् उसी को ध्वनि कहते हैं।[4] वे आगे कहते हैं कि—महाकवियों से निष्यन्दित होने वाली, सहृदयों को आनन्दित करने वाली, ध्वनि तत्व को प्रवाहित करने वाली कविता अलोकसामान्य की अभिव्यक्ति करती है।[5]

इस कथन से आनन्दवर्धनाचार्य का यही तात्पर्य है कि कवि के लिये काव्य अन्ततोगत्वा उस अर्थ वस्तु की सृष्टि है जो सरस्वती का आनन्द निष्यन्द है, कवि की प्रतिभा का प्रवाह है और सहृदय के लिये काव्य उस अर्थ वस्तु का वह आस्वादन है जो सरस्वती का आनन्द निष्यन्द पान है, तथा सहृदयता की प्रतिभा का प्रसाद है। दूसरी ओर रसगंगाधरकार पण्डित राज जगन्नाथ रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द को काव्य मानते हैं। काव्यत्व का बुद्धिविलास दर्शनीय है। प्रसिद्ध वैयाकरण नागेश भट्ट का कथन है कि काव्यत्व न केवल शब्दगत होता है और न केवल अर्थगत होता है बल्कि वह शब्दार्थोभयनिष्ठ होता है।

उक्त दृष्टियों से जब हम विचार करते हैं तो यह निश्चित हो जाता है कि कविवर मुरारि विरचित अनर्घराघवम् नाटक में शब्द की चारूता और शब्द—सौष्ठव के साथ—साथ व्याकरणात्मक पदावली का प्रयोग दिखायी देता है। इसमें अर्थ सौष्ठव भी विद्यमान है जो इस नाटक की शोभा को दो गुना कर देता है। उनकी यह नाट्यकृति सचमुच शब्द—सौष्ठव और अर्थगाम्भीर्य से युक्त है किन्तु कहीं—कहीं

पर कठिन पदावली और साधारण जन द्वारा अग्राह्य भाव—सुमनावली नाटक के प्रसाद गुण को भंग कर देती है।

अनर्घराघवम् में अलंकार—योजना :

अनर्घराघवम् नाटक एक अलंकृत शैली का उत्कृष्ट दृश्य—काव्य है। शब्दालंकार और अर्थालंकार अपनी सुन्दरता के साथ इसमें प्रयुक्त हुये हैं। मुरारि भी यह बात मानते हैं कि— जैसे अलंकारों से वनिता की शोभा होती है उसी प्रकार अलंकारों के सुष्ठु प्रयोग से कविता की शोभा होती है । उनके प्रथम मंगलाचरण श्लोक में ही शब्दालंकार और अर्थालंकार के सुन्दर प्रयोग देखने को मिलते हैं। वे कहते हैं कि— विघ्नशान्ति के लिये, कौमोदकी नामक गदा से विभूषित भगवान विष्णु के उन नयनों की उपासना करते हैं जिनमें कोक की प्रीति और चकोर के वृतान्त भोजन में उपयुक्त सूर्य चन्द्रात्मक ज्योति विद्यमान है, जिन सूर्य चन्द्रात्मक नयनों के सम्पर्क से आधा विकसित तथा आधामुकुलित भगवान का नाभि कमल शंख की समता को प्राप्त करवा दिया जाता है। यथा—

निष्प्रत्यूहमुपास्महे भगवतः कौमोदकीलक्ष्मणः,
कोकप्रीतिचकोरपारणपटुज्योतिष्मती लोचने।
याभ्यामर्धविबोधमुग्धमधुरश्रीरर्धनिद्रायितो,
नाभीपल्वलपुण्डरीकमुकुलः कम्बोः सपत्नीकृतः।।[6]

यहाँ पर अनुप्रास अलंकार के अतिरिक्त उपमा अलंकार विद्यमान है। कमल—मुकुल में कम्बु का सादृश्य होने से उपमा अलंकार है। यद्यपि प्रस्तुत पद्य

में समस्त पदावली का प्रयोग इसकी क्लिष्टता और दुरूहता का सूचक है फिर भी उक्त अलंकारों के प्रयोग से यह मंगलाचरण सुन्दर बन गया है। इन नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार ने प्रसाद गुण का प्रयोग करते हुये सुन्दर अर्थ को ध्वनित किया है। वह कहता है कि– सदस्यों की प्रीति नाट्योपजीवी नटों की प्रियतमा हुआ करती है, उसे छीन कर ले जाने वाले उस दुष्ट को जीतकर मैं, उस प्रीति रूप प्रियतमा को वापस लाना चाहता हूँ।[7]

यहाँ पर इस नाटक में उक्त कथन के द्वारा आगे घटित होने वाले सीता हरण, रावण–पराजय तथा सीता प्रत्याहरणादि रूप अर्थ ध्वनित हुआ है।

सूत्रधार के इस कथन से कि–न्याय संगत मार्ग से चलने वालों को पशु–पक्षी भी सहायता प्रदान करते हैं किन्तु कुपथ मार्ग से जाने वाले लोगों को उनके सहोदर भ्रातागण भी छोड़ देते हैं। यहाँ पर अर्थान्तरन्यास के व्याज से सन्मार्ग में चलने वाले श्रीराम के वानर इत्यादि भी सहायक हो जाते हैं किन्तु कुपथमार्ग पर चलने वाले रावण को उसका सहोदर भ्राता विभीषण भी छोड़ देता है और वह राम का आश्रय ग्रहण कर लेता है। यहाँ नाट्यवस्तु भी ध्वनित होती है।[8]

एक श्लिष्ट परम्परित रूपक अलंकार का भी उदाहरण देखा जा सकता है। सूत्रधार के द्वारा कवि का कथन है कि–जिस प्रबन्ध में हृदयरूप शुक्तियाँ शास्त्र रूप अमृत पीकर यथा क्रम से अक्षर रूप मुक्ता फल को उत्पन्न करती हैं,

उन्हें लेकर सुकविगण हार तैयार करते हैं, जिसमें नायक का रमणीय गुण ज्योतित होता है, जिससे अहंकार झलका करता है, ऐसे यह हार सहृदयों के गले में शोभा पाते हैं------। यह बात चरितार्थ होती हो ऐसे उस वीर तथा अद्‌भुत रस से परिपूर्ण कथा से युक्त, संसार को आनन्द प्रदान करने वाले सन्दर्भ का अभिनय करने के लिये शीघ्रता की जाये।[9] यहाँ पर कवि ने श्लिष्ट परम्परित रूपक अलंकार का मनोरम उदाहरण प्रस्तुत किया है। इनसे प्रेरित होकर हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने ग्रन्थ रामचरितमानस में इस भाव को निम्नवत् प्रकट किया है[10]–

हृदय सिन्धु मति सीप समाना।
स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।।
जो बरषई बरवारि बिचारू।
होंहि कबित मुकुतामनि चारू।।
जुगुति बेधि पुनि पोहि अहिं, राम चरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग।।

विश्वामित्र के दशरथ के घर अपने यज्ञ की रक्षा के लिये आने पर दशरथ अपने प्रिय पुत्रों राम और लक्ष्मण को मुनियों के परामर्श से उनकी यज्ञ रक्षा के लिये उनके साथ भेजने के लिये सहमत हो जाते हैं। वे कहते हैं कि–यज्ञ की रक्षा के लिये दशरथ से याचना करके विमुख होकर यदि विश्वामित्र अपने आश्रम

को लौट जाते हैं और तपस्या के थोड़े अंश को खर्च करके यज्ञ करना प्रारम्भ कर देते हैं, तब तो रघुकुल की कीर्ति–कथा ही समाप्त हो जायेगी। यहाँ पर शब्दालंकार और अर्थालंकार की चारूता से प्राप्त अलंकार तथा प्रसाद गुण की शोभा दर्शनीय है।[11]

उत्प्रेक्षा अलंकार का चमत्कार भी इस नाटक में अवलोकनीय है। वामदेव दशरथ से कहते हैं कि–समुद्र जो चन्द्रमा के उदय में उदय और व्यसन में व्यसन प्राप्त करता है इसका तो कारण स्पष्ट है कि वह चन्द्रमा का जनक है और जनक का यही स्वभाव होता है परन्तु चन्द्रमा का अनुसरण कुमुद करता है इसमें कौन सा सम्बन्ध है? इससे स्पष्ट है कि विशुद्ध विशुद्ध के साथ बिनी किसी कारण के ही प्रेम करते हैं[12]यथा–

यदिन्दोरन्वेति, व्यसनमुदयं वा निधिरपा–
मुपाधिस्तत्रायं जयति जनिकर्तुः प्रकृतिता।
अयं कः सम्बन्धो यदनुहरते तस्य कुमुदं,
विशुद्धाः शुद्धानां ध्रुवमनभिसन्धिप्रणयिनः।।

यहाँ पर कुमुद के द्वारा चन्द्रमा के उदय और व्यसन के अवतरण में कोई उस प्रकार की उपाधि नहीं है। यह सम्भावना की गई है इसलिये यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। कवि का मन्तव्य है कि प्रेम बीज का स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सकता है। लौकिक रति का कारण भले ही कुछ हो किन्तु अलौकिक रति

अनिर्वचनीय है। कवि का कथन है कि सागर पिता है और अमृत, कौस्तुभ, पारिजात, सहोदर भ्रातागण इनके सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। चन्द्रमा का अपने पिता सागर और सहोदरों के प्रति वैसा प्रेम नहीं हैं जैसा उसका प्रेम कुमुद के साथ है। चन्द्रमा के लिये कुमुद कुछ अद्भुत तत्व है इसी कारण चन्द्रमा को कुमुदबन्धु कहा जाता है, अमृत बन्धु या कौस्तुभ बन्धु नहीं कहा जाता है। कवि की यह उत्प्रेक्षा यहाँ पर अतिरमणीय है और प्रसाद गुण के कारण इसकी सुन्दरता और भी अधिक बढ़ गयी हैं।[13]

अनर्घराघवम् के द्वितीय अंक में सूर्योदय का वर्णन करते हुये यजमान शिष्य एक सुन्दर उत्प्रेक्षा का वर्णन करता है। वह कहता है कि– समीप स्थित इन्द्र गज ऐरावत के शिरः सिन्दूर से सान्द्र रक्त वर्ण जो तेजः कण प्राची दिशा के आकाश में फैलते जा रहे हैं वह ऐसा लगता है कि विश्वकर्मा की खराद पर चढ़ाकर खरादे गये–अतएव तेजः पुंज से वेष्टित भगवान् सूर्य मानो उदय प्राप्त कर रहे हैं।[14]

द्वितीय अंक का एक पात्र शुनःशेप प्रतिवस्तूपमालंकार का सुन्दर चित्रण करता है। वह अपने मित्र से कहता है कि–अपने द्वारा किये प्रयोग की अपेक्षा विद्यार्थियों द्वारा किया गया प्रयोग आचार्यों की महिमा को आगे बढ़ाता है। देखिये– स्थान पर शिष्यों द्वारा प्रयुक्त विद्या गुण की गुणवत्तरता को द्योतित करती है। मेघों द्वारा शुक्तियों में डाले गये जलों से ही सागर, रत्नाकर कहलाता

है। यहाँ पर एक ही साधारण धर्म का, उपमान वाक्य और उपमेय वाक्य दोनों वाक्यों में दो बार भिन्न–भिन्न शब्दों द्वारा बड़ी चारुता के साथ कहा गया है।[15]

एक दूसरे स्थल पर शुनःशेप अपह्नुति अलंकार का वर्णन करता है । तत्काल प्रज्ज्वलित सूर्यकान्तमणियों से नीराजित सूर्य किरणें विद्रुमदण्ड की तरह रक्ताभ दिखायी देती हैं तथा प्राची दिशा को अलंकृत करती हैं, प्रौढ़ अन्धकार से आवृत अपने शरीर की छाया के रूप में यह जगत् अन्धकार रूप अपना निर्मोह त्याग कर रहा है। यहाँ पर प्रकृत का प्रतिषेध करके अप्रकृत की स्थापना की गयी है इसलिए अपह्नुति अलंकार है।[16]

इसके आगे लक्ष्मण एक सुन्दर स्वभावोक्ति अलंकार का वर्णन करते हैं। जहाँ पर किसी वस्तु के स्वभाव का वर्णन किया जाये उसे स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं। वे कहते हैं कि–अग्नि गृह में बलि के लिये रखे गये तण्डुलों को हरिण खा जाते हैं, इस पर मुनि स्त्रियाँ खीझकर उनको डराने के लिये दण्ड उठाती हैं, परन्तु हरिण इतने हिले मिले हैं कि वे उस दण्ड को सूँघने की इच्छा करने लगते हैं। उसे देखकर मुनिगण उन हरिणों की ढिठाई पर हँस लेते हैं।[17]

श्रीराम एक स्थल पर हेतूत्प्रेक्षा का सुन्दर उदाहरण देते हुये कहते हैं कि पादप्रणत् इन्द्र के शिरोमन्दार–पुष्प रस से जिनका चरण धुलाया जा चुका है, ऐसे भगवान् विश्वामित्र ने त्रिशंकु के चरित् सम्बन्ध में नवीन विश्व की सृष्टि का प्रारम्भ तथा परित्याग रूप आश्चर्य कार्य कर दिखाया है। यहाँ पर आर्द्रीकृतः इव

में हेतूत्प्रेक्षा है।[18]

अन्धकार का वर्णन करते हुये रूपक और उत्प्रेक्षा का सुन्दर वर्णन किया गया है। तदनुसार अति घने अन्धकार रूप घनों द्वारा भक्षित काष्ठों (दिशाओं) का चूर्ण उडुगण रूप छिद्रों से उनकी किरणों के व्याज से गिर रहा है। एक दूसरे स्थल पर उत्प्रेक्षा अलंकार की सुन्दरता देखी जा सकती है। मृणाल की तरह स्वच्छ एवं कमल दलों को संकुचित करने वाले यह चन्द्रमा के किरण प्रकटित हो रहे हैं, किरणों से पर्वत धवल हो रहे हैं, इससे सागर शुद्ध हो रहा है, यह संसार मानो सागर से निकल रहा है और इसीलिये यह फेनायमान हो रहा है।[19]

चन्द्रोदय वर्णन के प्रसंग में सन्देह अलंकार का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है। क्या यह अन्धकार सागर ही चन्दकिरण रूप निर्मली चूर्ण के सम्पर्क से ऊपर में स्वच्छ तथा छाया के छल से नीचे मलिन हो रहा है अथवा चन्द्रकिरण रूप तीक्ष्ण अस्त्र से यह आकाश रूप फल क्या छील दिया गया है जिससे स्वच्छ आकाश निकल आया है और छाया के रूप में उसका छिलका बिखर गया है।[20]

दूसरे स्थान पर भी सुन्दर उत्प्रेक्षा दिखायी देती है। तदनुसार पत्र समुदाय पूर्ण इन वृक्षों के नीचे तिल–तन्दुल की तरह मीलित तम तथा चन्द्रकिरण दिखायी देते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मदचपल चकोरों ने अपने चक्षुओं द्वारा बीच–बीच में चन्द्रकिरणों को निगल लिया है जिससे उसका स्थान रिक्त पड़ गया है। यहाँ पर अनुप्रास अलंकार की छटा अवलोकनीय है।[21] यहाँ पर

क वर्ण और च इत्यादि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति हुई है। यथा–

दलविततिभृतां तले तरूणामिह तिलतण्डुलितं मृगांकरोचिः।

मदचपलचकोरचंचुकोटीकवलनतुच्छमिवान्तरान्तराऽभूत्।।

इसके अनन्तर अपह्नुति अलंकार का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। जहाँ पर प्रकृत वस्तु का निषेध करके अन्य वस्तु की स्थापना की जाती है उसे अपह्नुति अलंकार कहते हैं। तदनुसार यह चन्द्रमा तरूणतमालपल्लव की तरह श्यामवर्ण का कलंक धारण करता है– यह कहना गलत है, यह तो अन्धकार है। राहु ने जो निर्दयतापूर्वक दाँत गड़ा दिये थे, उसी से उत्पन्न छिद्रों में यह अन्धकार व्याप्त हो रहा है[22] यथा–

तरूणतमालकोमलमलीमसमेतदयं,

कलयति चन्द्रमाः किल कलंकमिति ब्रुवते।

तदनृतमेव निर्दयविधुन्तुददन्त पद–

व्रणविवरोपदर्शितमिदं हि विभाति नभः।।

कविवर मुरारि ने श्लोक सं0 2.80 एवं 81 में भी सुन्दर उत्प्रेक्षा अलंकारों का उदाहरण प्रस्तुत किया है। विस्तार भय से उनके उद्धरण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। जहाँ पर उपमान से उपमेय की अधिकता बतायी जाती है उसे व्यतिरेक अलंकार कहते हैं। क्षीरसागर से उत्पन्न यह चन्द्रमा सागर को प्रसन्न करता है और अत्रिनेत्र से उत्पन्न होने के कारण लोगों के नयनों को आनन्दित

करता है। चन्द्रमा का यह प्रमोदकत्व व्यवहार जन्य–जनक मूलक है। समस्त देवगण के समान प्रेमपात्र तथा इन्द्र के चरू स्थाली रूप इस चन्द्रमा के लिये उचित ही है। यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार अपनी सम्पूर्ण चारूता के साथ प्रस्फुटित हुआ है।[23]

इसी प्रकार श्लोक संख्या 3.7 में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा श्लोक संख्या 3.9 में उपमा अलंकार, श्लोक संख्या 3.21 में उपमा, रूपक और अतिशयोक्ति अलंकार, श्लोक संख्या 4.21 में असंगति अलंकार इत्यादि दर्शनीय हैं। इसी प्रकार अर्थान्तरन्यास अलंकार का एक उदाहरण अवलोकनीय है। अर्थान्तरन्यास अलंकार वहाँ होता है जहाँ पर विशेष अर्थ के द्वारा सामान्य अर्थ का अथवा सामान्य अर्थ के द्वारा विशेष अर्थ का समर्थन किया जाये। इसके उदाहरण के लिये अनर्घराघवम् का निम्नांकित श्लोक दर्शनीय है–

सज्जन लोग अपने कर्त्तव्य को अपने मन में रखकर ही काम में लगते हैं, सूर्य ने कमलों को शोभा प्रदान करने की प्रतिज्ञा किसके सामने की थी ?[24]

सन्तो मनसि कृत्यैव प्रवृत्ताः कृत्यवस्तुनि ।

कस्य प्रतिश्रृणोतिस्म कमलेभ्यः श्रियं रविः ।।

यहाँ पर विशेष अर्थ के द्वारा सामान्य अर्थ का समर्थन किया गया है इसलिये इसमें अर्थान्तरन्यास अलंकार है। उत्प्रेक्षा अलंकार में सम्भावना पायी जाती है जिसका कविवर मुरारि ने बड़ी सुन्दरता के साथ वर्णन किया है। ब्रह्मा के

चार मुख में चौदह विद्याओं का निवास था जिससे विद्याओं को सम्भवतः चार मुखों में निवास करने के लिये पर्याप्त स्थान नहीं था इसलिये ब्रह्मा ने अपने पौत्र रावण के दशमुख बना दिये जिससे सभी विद्याएँ अलग–अलग मुखों में ठीक से रह सकें। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार की कल्पना बड़ी सार्थक हैं।[25]

जहाँ पर उपमेय और उपमान की समानता पायी जाती है उसे उपमा अलंकार कहते हैं। कवि ने उपमा अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग किया है। वानर गण आकाश में उड़कर अपनी देहद्युति से आकाश को आलोकित कर रहे हैं। उनके नीचे राक्षस अपनी देहों के विस्तार से अन्धकार फैला रहे हैं, इस प्रकार उन प्रभासित वानरों के नीचे अप्रकाशमय यह राक्षसगण वानररूप अग्नि की धूमराशि के समान प्रतीत होते हैं।[26] यहाँ पर राक्षसों की धूमराशि से समानता की गयी है।

कवि ने एक स्थान पर मालारूपक अलंकार का सुन्दर वर्णन किया है। तदनुसार महादेव के भालदेशरूप सहन को चमकाने में दीप का कार्य करने वाला, कैरवों का मित्र, अन्धकार समुदाय का संहारक, अपनी किरण रूप मुक्तामणियों से सुन्दरियों को सुसज्जित करने वाला तथा इन्द्र की अमृत पाकशलाका का प्रधान पाचक चन्द्रमा निकल आया है।[27]

सश्रीकण्ठ किरीटकुट्टिम परिष्कार प्रदीपांकुरो
देवः कैरवबन्धुरन्धतमसप्राग्भारकुक्षिम्भरि :।
संस्कर्ता निजकान्तिमौक्तिकमणिश्रेणीभिरेणीदृशां,
गीर्वाणाधिपतेः सुधारसवतीपौरोगवः प्रोद्गात्।।

यहाँ पर दीपक को अनेक रूपकों के साथ प्रस्तुत किया गया है इसलिये यह मालारूपक अलंकार है।

इसी प्रकार मालोपमालंकार की भी सुन्दरता दर्शनीय है। यहाँ पर उपमा माला के रूप में प्रस्तुत हुई है। सीता राम के प्रति कहती है कि– समुद्र मन्थन के प्रारम्भ काल में भगवान् विष्णु के भुजदण्डों से संचालित मन्दराचल रूप मन्थानदण्ड से मथित क्षीर समुद्र से गर्भ की छवि के समान स्वच्छ, शुक्लपक्ष के अतिरिक्त पक्ष के मध्य में वर्तमान चन्द्रमण्डल खण्ड की तरह चमकदार रघुवंश श्रेष्ठ आपकी कीर्ति को कौन नहीं गाता है ?[28]

कवि एक सुन्दर उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा सीता का वर्णन करता है। राम सीता से कहते हैं कि हे सीते! ब्रह्मा ने चन्द्रमा के साथ तुम्हारे मुख की तुलना करने के लिये दोनों को अलग–अलग पलड़े पर चढ़ा दिया और यदि चन्द्रमा में कमी आयेगी तब उसे पूर्ण करने के लिये उसके समान वस्तु के कुछ खण्ड के रूप में यह तारे सम्भवतः रख छोंड़े हैं।[29]

अनेनरम्भोरू भवन्मुखेन तुषारभानोस्तुलया धृतस्य।

ऊनस्य नूनं परिपूरणायताराः स्फुरन्ति प्रतिमानखण्डाः।।

कवि एक दूसरी जगह मालोपमा का सुन्दर प्रयोग करते हैं। राम सीता से चन्द्रोदय का वर्णन करते हुये कहते हैं कि–तीनों लोकों की आँखों के लिये अमृत स्थाली के समान, समस्त विश्व के विरही जनों को सताने वाली कामाग्नि की

चिन्गारी के समान, दिशाओं को खोलने वाली ताली के सदृश कन्दर्प के वीर योद्धाओं में सर्वप्रथम गणनीय एवं मृगाक्षी के मुख के साथ स्पर्धा करने वाला यह नवीन चन्द्रमा दिखायी देता है।[30]

मुरारि की एक अति रमणीय उत्प्रेक्षा भी अवलोकनीय है। कमलिनी सहस्त्रपत्रा होती है, जब सूर्यास्त होने लगता है तो उसके अस्त होते हुये करों को एक एक गिनती हुई यह कमलिनी अपने हजार पत्रों को संकुचित कर लेती है। फिर जब सूर्य उदय होने लगता है तब उनके उदित होने वाले करों की गिनती सी करती हुई वही नलिनी अपने हजार पत्रों को विकसित कर लेती है।[31] यथा–

एक द्विप्रभृतिक्रमेण गणनामेषामिवास्तं यतां

कुर्वाणा समकोचयद्दशशतान्यम्भोज संवर्त्तिका :।

भूयोऽपि क्रमशः प्रसारयति ताः सम्प्रत्यमूनुद्यत :

संख्यांतु सकुतूहलेव नलिनी भानोः सहस्त्रं करान्।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार मुरारि का कलापक्ष और भावपक्ष अत्यन्त रमणीय है। उन्होंने अलंकारों का समुचित और साधु प्रयोग किया है। उनका भावपक्ष भी गम्भीर है। उनके काव्य में अर्थ की प्रचुरता विद्यमान है जिससे भावपक्ष उदात्त हो गया है।

नाटककार मुरारि की भाषा–शैली :

मुरारि एक प्रसिद्ध नाटककार हैं। उन्होंने राम–कथा प्रधान अनर्घराघवम्

नाटक का गुम्फन किया है। उनकी भाषा शैली पाण्डित्य पूर्ण है और समास–बहुला है। उनकी यह शैली नाटकोचित नहीं प्रतीत होती है। लम्बे–लम्बे समास कादम्बरी की याद दिला देते हैं। स्वप्नवासवदत्तम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् और उत्तररामचरितम् नाटकों के आदर्श हैं। जिस प्रकार इनमें सरल, सरल और कोमलकान्त पदावली का प्रयोग हुआ है और जिस प्रकार इन नाटकों में रस निष्पत्ति हुई है वैसा अनर्घराघवम् में दिखायी नहीं देता है। यद्यपि कहीं–कहीं पर प्रसाद गुण और नाटकोचित भावों के दर्शन होते हैं किन्तु समासबहुला शैली से उनके ये गुण दब जाते हैं।

अनर्घराघवम् में कविवर मुरारि के द्वारा पाण्डित्य का प्रदर्शन और उनका यह कथन है कि उन्होंने गुरूकुल में रहकर बड़े क्लेश से विद्योपार्जन किया है। यद्यपि बहुत से लोग विद्योपार्जन करते हैं किन्तु उनके समान विदग्धता प्राप्त करने वाले वे ही हैं। उनके इस कथन से उनकी यह गर्वोक्ति एक सफल नाटककार बनने में उनकी सहायता नहीं करती है। सम्पूर्ण नाटक में स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित छन्द का प्रयोग नाटक को दुरूह बना देता है। नाटकीय संवादों में भी क्लिष्टता है जिससे पाठकों और श्रोतागणों को असुविधा होती है।

कविवर मुरारि की कविता के मर्म को समझना सबके बस की बात नहीं है। उनके काव्य के अर्थ को समझना श्रमसाध्य है। यद्यपि नये–नये भाव और नूतन कल्पनाएं नाटक का गौरव वर्धन करने वाली हैं और परवर्ती कवियों ने उनके इन

भावों और नूतन कल्पनाओं को ग्रहण भी किया हैं जिससे उनका कवित्व प्रमाणित होता है। मुरारि का नाटक अर्थ सौष्ठव और शब्द सौष्ठव से सचमुच समलंकृत है।

प्रसन्नराघवम् में अलंकार-योजना :

कविवर जयदेव विरचित प्रसन्नराघवम् नाटक सुरभारती का सारस्वत शृंगार है। यह नाटक अत्यन्त मधुर, सरस, सरल, और प्रांजल है। इसका लालित्य गीतगोविन्द की सरस कोमलकान्त पदावली का स्मरण करा देता है। जयदेव की वाणी रस से परिपूर्ण और मधुर है, मृगनयनी ललनाओं के अधरोष्ठों की मधुरता को भी तिरस्कृत करने वाली है। उनकी अलंकार योजना स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी है। उन्होंने अत्यन्त सरल और प्रसाद गुण युक्त भाषा में दृष्टान्त अलंकार का वर्णन किया है।

वे कहते हैं कि जैसे भ्रमर सुगन्ध से ही अभ्यन्तर स्थित केतकी पुष्प को जान जाते हैं उसी तरह निपुण जन आकार से ही दूसरे के अभिप्राय को समझ लेते हैं।[32] यथा–

आकारेणैव चतुरास्तर्कयन्ति परेङ्गितम्।
गर्भस्थं केतकीपुष्पमामोदेनेव षट्पदा :।। यहाँ पर दो समान धर्म वाली वस्तुओं का बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव अवलोकनीय है।

नट प्रसन्नराघवम् नाटक की प्रशंसा में एक सुन्दर उपमा अलंकार का प्रयोग करता है। इस नाटक का प्रत्येक अंक शृंगारादि रसों से युक्त हैं। नवीन

और विकसित होने वाले पुष्पों की पंक्ति के समान सुशोभित रंग–रचना से युक्त, चन्द्रमा के समान वक्रता से अतिशय मनोहर और अति सुन्दर रचना से मनोरम नाटक का अभिनय प्रस्तुत किया जायेगा।[33] यहाँ पर उपमेय और उपमान से समानता के कारण उपमा अलंकार है। यथा–

प्रत्यंकमंकुरितसर्वरसावतार–

न्नव्योल्लसत्–कुसुमराजिविराजिबन्धम्।

घर्मेतरांशुमिव वक्रतयाऽतिरम्यं

नाट्यप्रबन्धमतिमंजुलसंविधानम्।।

रूपक अलंकार का अति सुन्दर उदाहरण भी अवलोकनीय है। नट कहता है कि तीनों लोकों की परिपूर्णता में भी सूर्यकुल के भूषणभूत श्रीरामचन्द्र जी की कीर्ति नटी के नृत्य के अवसर पर शब्द करने वाले वाद्य के प्रथम शब्द के समान वाल्मीकि मुनि अतिशय उत्कर्ष को प्राप्त करते हैं जिसके मुख रूप चन्द्रमण्डल से गिरते हुये काव्यामृतरूप समुद्र की कुछ बिन्दुओं को पीकर भी कवि रूपी नवीन मेघों की पंक्ति प्रलय काल तक वृष्टि करती रहती है।[34] यहाँ पर उपमेय में उपमान का आरोप एक सुन्दर रूपक अलंकार की सृष्टि कर रहा है। यथा–

भास्वद्वंशवतंस–कीर्तिरमणी–रंगप्रसंग स्वनद्–

वादित्रप्रथमध्वनिर्विजयते वल्मीक जन्मा मुनिः।

पीत्वा यद्वदनेन्दुमण्डलगलत्काव्यामृताब्धेः किम–

प्याकल्पं कविनूतनाम्बुदमयीकादम्बिनी वर्षति।।

दीपक अलंकार का एक अति सुन्दर उदाहरण भी अवलोकनीय है। चन्द्र मे और रामचन्द्र में, नारियों के कटाक्ष में किसका चित्त हर्ष को प्राप्त नहीं होता है। यहाँ पर अप्रस्तुत चन्द्र और नारी दृगंचलों का प्रस्तुत श्रीरामचन्द्र के आमोदकत्व धर्म के सबन्ध से दीपक अलंकार है।[35] यथा–

चन्द्रे च रामचन्द्रे च नारीणां च दृगंचले।

नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ कस्य नाऽऽमोदते मनः।।

कविवर जयदेव की कविता में अलंकार स्वाभाविक रूप से आते चले जाते हैं और उनके काव्य की शोभा बढ़ाते है। कवि नट के द्वारा समासोक्ति अलंकार का चारूतर उदाहरण प्रस्तुत करता है। नट कहता है कि–चन्द्रमा को न जानने वाले चकोर शावक के चरित्र का मैने कैसे अनुसरण किया। उन्होंने मेरे हाथ में अपना नाटक सौंपकर कहा था कि इस सुभाषित रत्न की चोरों से रक्षा करना। मैने उन्हें नम्रता के साथ ऐसा कहा था कि चोरों के अपहरण से भयभीत होकर मैं आपके इस सुभाषित रूप मुक्ताकलाप को कान में रखकर, कण्ठ स्थान में छिपाकर, शिर में धारण कर और अवनत हृदय में रखकर भी बहुत समय तक रक्षा करूँगा।[36] यथा–

कर्णे निधाय च पिधाय च कण्ठपीठे

धृत्वा च मूर्धनि न ते हृदये च कृत्वा।

चौरापहारचकितेन चिरं मयैष त्वत्सू–

क्तिमौक्तिकगणः परिरक्षणीयः।।

श्लेष अलंकार का सुन्दर उदाहरण दर्शनीय है। श्लिष्ट पदों के द्वारा जहाँ दूसरे अर्थ की प्रतीति होती है वहाँ श्लेष अलंकार होता है।[37] सूत्रधार कहता है कि सुन्दर रूप वाली और उदार चरित्र से युक्त, दूसरे की रचना की अथवा सुन्दर रूप से युक्त और उदार चरित्र से सम्पन्न पर नारी का अपहरण कर समुद्र के परवर्ती तट में पहुँच जाने पर भी कौन सा पुरूष सुख का पात्र होगा।[38] यथा–

सुललितवदनामुदारवृत्तां कृतिमथवा युवतिं परस्य हृत्वा।

तटमपि परमर्णवस्य गत्वा वद कतरः सुखभाजनं जनः स्यात्।।

इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार राम की भार्या सीता का अपहरण करके रावण समुद्र के पार जाकर भी जिस प्रकार सुख को प्राप्त नहीं हुआ उसी प्रकार दूसरे की रचना को चुराने वाला कोई भी व्यक्ति आनन्द को नहीं प्राप्त करता है। इस पद्य के द्वारा रावण के द्वारा किये गये सीताहरण रूप रामायण का वृत्तान्त भी ध्वनित होता है इसलिये यह पताका स्थानक है।

कवि ने दृष्टान्त अलंकार का भी अति मनोरम उदाहरण प्रस्तुत किया है। जिन कवियों की भारती कोमलकाव्यकौशलकला में लीलावती है, उन लोगों के कर्कश तर्क वचन व्यापार में भी क्या हानि है ? जिन पुरूषों ने अपनी प्रिया के पयोधर मण्डलों में नखक्षति के द्वारा आनन्द प्राप्त किया है वे लोग क्या मत्त वारण के कुम्भ शिखर में बाण वर्षा नहीं करते हैं।[39]

येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती,

तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते ?

यैः कान्ता कुचमण्डले कररूहाः सानन्दमारोपिता,

स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीया शराः ?।।

यहाँ पर दो समान धर्म वाली वस्तुओं का बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव बड़ी चारूता से अभिव्यक्त हुआ है। दृष्टान्त अलंकार का दूसरा सुन्दर उदाहरण निम्नांकित पद्य में प्राप्त होता है।

अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः,

परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः।

निजघन–मकरन्द–स्यन्द–पूर्णालवालः,

कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः।।[40]

अपने वाग्विलासों से प्रमोद का अनुभव करने वाले इतने सज्जन हैं जो दूसरे की कविता से आनन्दित होते हैं। अपने घनीभूत मकरन्द के प्रवाह से परिपूर्ण आलवालवाला रसाल क्या कलश जल की अपेक्षा नहीं करता है ? यहाँ पर भी दो समान धर्म वाली वस्तुओं का बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव चमत्कारकारी है।

कविवर जयदेव की कविता में उपमालंकार की भी चारूता दर्शनीय है।

यथा– आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः,

कन्येयं कलधौत कोमलरूचिः, कीर्तिश्च लाभास्पदम्।

नाकृष्टं, न च टात्कृतं न नमितं स्थानांच न त्याजितं

केनापीदमहो धनुः, किमधुना निर्वीरमुर्वीतलम्।।[41]

यहाँ पर कलधौत के समान कोमल कान्ति वाली कन्या सीता का वर्णन किया गया है जो लुप्तोपमा का अति रमणीय उदाहरण है।

इसी प्रकार श्लोक संख्या 2.14, 16, 18, 19, 20, 26, 31, 33 आदि में उत्प्रेक्षा, संसृष्टि, उपमा, वृत्यनुप्रास, परम्परितरूपक, श्लेष, उपमा जनित संकर अलंकार आदि अर्थालंकार और शब्दालंकार का सौन्दर्य विद्यमान है। अलंकार काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले धर्म हैं।

जयदेव की भाषा-शैली :

जयदेव की भाषा अति सरस, प्रांजल और कोमलकान्त पदावली का मनोरम उदाहरण है। मुरारि की अपेक्षा इसमें शब्द सौष्ठव और अर्थ सौष्ठव का चमत्कार हृदयग्राही है। जयदेव की कविता सुरभारती का तो श्रृंगार है ही किन्तु इसने परवर्ती रामकथा प्रधान कृतियों के प्रणेताओं को बहुत प्रभावित किया है। गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरितमानस के भव्य प्रासाद की बुनियाद प्रसन्नराघव नाटक ही है। इस नाटक का भाव पक्ष और कलापक्ष अति रमणीय है।

परवर्ती अनेक काव्यशास्त्रियों ने प्रसन्नराघवम् के अनेक श्लोकों को अपनी-अपनी कृतियों में बड़े आदर के साथ उद्घृत किया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज ने अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि का उदाहरण प्रसन्नराघवम्

नाटक से ही लिया है। यथा–

कदली कदली, करभः करभः,

करिराजकरः, करिराजकरः।

भुवनत्रितयेऽपि बिभर्तितुला–

मिदमूरूयुगं न चमूरूदृशः।।[42]

इसी प्रकार शार्ङ्गधर पद्धति और रसार्णव सुधाकर में इस महाकवि के नाटक से अनेक पद्यों का उद्धरण लिया गया हैं। इससे इनके कोमलकाव्य के प्रणेता के रूप में कोई संशय प्रतीत नहीं होता है।

प्रसन्नराघवम् की भाषा यद्यपि प्रसादगुण युक्त और सरस है किन्तु कहीं–कहीं पर लम्बे समास युक्त संवाद भी देखने को मिलते हैं। कविवर जयदेव ने भी कहीं–कहीं पर स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित छन्दों का अनेक बार प्रयोग किया है जिससे नाटकीयता बाधित हुई है। फिर भी मुरारि की अपेक्षा इनका नाटक कोमलकान्त काव्य का रमणीय उदाहरण है। यह नाटक हिन्दी के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास का प्रेरणास्रोत रहा है। इससे इस नाटक की महत्ता ध्वनित होती है।

यद्यपि दोनों ही नाटक राम–कथा से सम्बद्ध हैं किन्तु फिर भी दोनों के वर्णन में वैविध्य और दृष्टि का भेद है। मुरारि की अपेक्षा जयदेव का राम–कथा वर्णन अधिक सुसंगत और अधिक सुसंयोजित है। इस नाटक में कलापक्ष और भाव पक्ष अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रस्फुटित हुये हैं। सचमुच, जयदेव पीयूषवर्षिणी कविता के कलाधर हैं।

✡✡✡✡✡

पाद टिप्पणी
अध्याय – 7

1. तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।। काव्यप्रकाश–प्रथमप्रकाश,1 पृ0–10 ।।
2. क्वापीत्यनेनैतदाह यत्सर्वत्र सालंकारौ, क्वचित्तु स्फुटालंकार विरहेऽपि न काव्यत्वहानिः।
   काव्य प्रकाश, 1.1 पृ0, 11 ।।
3. अंगीकरोति यः काव्यं शब्दाऽर्थाऽवनलंकृती ।
   असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं–कृती ।। चन्द्रालोक, 1.8 ।।
4. 'यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ ।
   व्यंक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।। ध्वन्यालोक,1.13 ।।
5. सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निष्यन्दमाना महतां कवीनाम् ।
   अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम् ।। ध्वन्यालोक, 1.6 ।।
6. अनर्घराघवम्–मंगलाचरण, 1.1 ।।
7. प्रीतिर्नाम सदस्यानां प्रिया रंगोपजीविनः ।
   जित्वा तदपहर्तारमेष प्रत्याहरामिताम् ।। अनर्घराघवम्, 1.3 पृ0,05 ।।
8. यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यंचोऽपि सहायताम् ।
   अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुंचति ।। अनर्घराघवम्, 1.4 पृ0, 06 ।
9. अनर्घराघवम्, 1.5–6 ।
10. रामचरितमानस–1.11 ।
11. अनर्घराघवम्, 1.45 ।
12. अनर्घराघवम्, 1.58 पृ0 55 ।
13. अयं कः सम्बन्धो यदनुहरते तस्य कुमुदं
    विशुद्धाः शुद्धानां ध्रुवमनभिसन्धिप्रणयिनः ।। अनर्घराघवम्,1.58–59 पृ0, 55 ।।
14. शंके संप्रति यावदभ्युदयते तत्तकुटंकोन्मृजा
    रज्यद्बिम्बरजश्छटावलम्बितो देवस्त्विषामीश्वरः ।। अनर्घराघवम्, 2.6 पृ0 61 ।।
15. स्थानेषु शिष्यनिवहैर्विनियुज्यमाना
        विद्या गुरूं हि गुणवत्तरमातनोति ।
    आदाय शुक्तिषु बलाहकविप्रकीर्णै
        रत्नाकरो भवति वारिभिरम्बुराशिः ।। अनर्घराघवम्, 2.9 पृ0 73 ।।
16. वही, 2.10 ।
17. अनर्घराघवम्, 2.20 ।
18. अनर्घराघवम्, 2.36 ।
19. वही, 2.70 ।

20. किं नु ध्वान्तपयोधिरेष कतकक्षोदैरिवेन्दोः करै–
    रत्यच्छोऽयमधश्च पंकमखिलं छायापदेशादभूत् ।। अनर्घराघवम्, 2.75 ।।
21. अनर्घराघवम्, 2.76 ।
22. वही, 2.79 ।
23. वही, 2.85 ।
24. अनर्घराघवम्, 5.35 पृ0 302 ।
25. अनर्घराघवम्, 6.4 ।
26. वही, 6.35 ।
27. वही, 7.61 पृ0–438 ।
28. अनर्घराघवम्, 7.76 ।
29. वही, 7.81 ।
30. अनर्घराघवम्, 7.83 ।
31. वही, 2.5 ।
32. प्रसन्नराघवम्, 1.4 पृ0, 8 ।
33. प्रसन्नराघवम्, 1.7 पृ0, 14 ।
34. वही, 1.9 पृ0, 18 ।
35. प्रसन्नराघवम्, 1.10 ।
36. वही, 1.16 ।
37. श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेषः इष्यते । साहित्य दर्पण, पृ0, 250 ।।
38. प्रसन्नराघवम्, 1.17 ।
39. वही, 1.18 ।
40. प्रसन्नराघवम्, 1.19 ।
41. वही, 1.32 ।
42. प्रसन्नराघवम्, 1.37 ।

अष्टम अध्याय
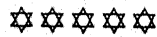
प्रेक्षागृह एवं रंगमंच

अष्टम अध्याय

प्रेक्षागृह एवं रंगमंच

प्रेक्षागृह एवं रंगमंच से सम्बन्धित विषय–वस्तु का विस्तृत और विशद वर्णन आचार्य भरत मुनि विरचित नाट्य–शास्त्र में उपलब्ध होता है। भरतमुनि के मतानुसार नाट्य एक वेद है और प्रेक्षागृह की स्थापना एक यज्ञ है, इसी दृष्टि से नाट्यशास्त्र में एक प्रकार के रंग यजन का विवरण प्राप्त होता है। अत्यन्त प्राचीन काल में नाटक का अभिनय आकाश से नीचे बाहर मैदान में हुआ करता था, परन्तु नाना प्रकार के विघ्नों के उठ खड़े होने के कारण कालान्तर में रंग–मंच का आविर्भाव और विकास हुआ था।

प्रेक्षागृह के प्रकार –

नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रेक्षागृह तीन प्रकार के होते हैं– 1– विकृष्ट 2– चतुरस्र 3– त्र्यस्र। इनमें विकृष्ट नामक प्रेक्षागृह विस्तृत होता था, जिसमें देवताओं से सम्बद्ध दृश्य दिखलाये जाते थे। इस प्रेक्षागृह की लम्बाई 108 हाथ होती थी। चतुरस्र प्रेक्षागृह चौकोर होता था और इसकी लम्बाई 64 हाथ होती थी। यह परिमाण से मध्यम आकार का होता था। विशेष रूप से यह प्रेक्षागृह राजाओं के लिये निर्मित किया जाता था। त्र्यस्र नामक प्रेक्षागृह परिमाण में सबसे छोटा होता था जिसकी लम्बाई 32 हाथ होती थी। यह प्रेक्षागृह सामान्य और प्राकृतजनों के लिये निर्मित किया जाता था। भरतमुनि के अनुसार प्रेक्षागृह का अधिक विस्तार नहीं होना चाहिये[1] क्योंकि प्रेक्षागृह के अधिक विस्तृत होने पर और अधिक लम्बे चौड़े होने पर नाट्यकलाकारों के द्वारा उच्चारित शब्द स्पष्ट रूप से

दर्शकों के कान तक पहुँच नहीं सकते हैं।

नाटक का प्रधान गुण उसकी सुश्रव्यता है। यह मध्यम परिमाण वाले प्रेक्षागृहों में भी संभव हो सकती है। इसलिये इन प्रेक्षागृहों में प्राचीन काल में मध्यम प्रकार के प्रेक्षागृहों को ही उत्तम माना जाता था जिससे वाद्य, गीत और संवाद सहज रूप से सुने जा सकते थे क्योंकि उस समय ध्वनि विस्तारक यन्त्रों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था इसलिये संवादों की सुश्रव्यता बनाये रखने के लिये मध्यम प्रकार के प्रेक्षागृह उत्तम और आदर्श माने जाते थे।[2]

नाट्य शास्त्र में प्रेक्षा–गृह के निर्माण की विधि का वर्णन प्राप्त होता है। भरतमुनि के अनुसार सर्वप्रथम कुशल व्यक्तियों के द्वारा भूमिशोधन करना चाहिये। समान और समतल, स्थिर, कठिन, काली तथा गौर वर्ण की भूमि पर नाट्य–मण्डप का निर्माण किया जाना चाहिये। शुभ मुहूर्त, उत्तम समय और शुभ नक्षत्र में भूमि की माप करना चाहिये। 64 हाथ के भूखण्ड पर आधे हिस्से में नेपथ्य गृह और रंग शीर्ष की रचना करनी चाहिये। उसके भीतर से तथा आस–पास में स्थित, अनिष्ट, पाखंडी, तपस्वी, गेरूए वस्त्रधारी सन्यासी और पागल व्यक्तियों को अलग कर देना चाहिये।

रात्रि में दशों दिशाओं का पुष्पादि पूजन सामग्री से अर्चन और वन्दन करना चाहिये तथा निर्माण और स्तम्भ रचना शुभ मूहूर्त में करना चाहिये। नाट्यशास्त्र के निर्देशानुसार रंगपीठ और रंगशीर्ष की विधि पूर्वक रचना करनी

चाहिये। कालीमिट्टी के बने नेपथ्य गृह में दो द्वार होने चाहिये। रंग शीर्ष को न तो मध्य में ऊँचा और न नीचा होना चाहिये। दर्पण के समान समतल रंगमंच शीर्ष को उत्तम माना जाता है।

भरतमुनि का कथन है कि रंगशीर्ष को रत्न जटित होना चाहिये। तदनुसार पूर्व की ओर हीरा, दक्षिण की ओर नीलम, पश्चिम में स्फटिका, उत्तर में प्रवाल रत्न और मध्य में सुवर्ण जटित होना चाहिये। इसके पश्चात् काष्ठ का काम होना चाहिये। जिसमें अनेक प्रकार की कारीगरी, साजसज्जा, पुत्तलियाँ, पक्षी और गवाक्ष इत्यादि से चित्रों की रचना की जानी चाहिये। इसी कार्य के साथ–साथ स्तम्भ, नागदन्त और वातायन आदि से प्रेक्षा–गृह को सुसज्जित किया जाना चाहिये। रंगशीर्ष में पर्वत, कन्दरा इत्यादि का भी निर्माण होना चाहिये तथा दीवार पर चूने का लेप होना चाहिये, उस पर अनेक प्रकार के चित्रादि और बेलबूटे बनाये जाने चाहिये। इस प्रकार विधिवत् नियमानुसार नाट्य–प्रेक्षा–गृहों का निर्माण किया जाना चाहिये।[3]

प्रेक्षा–गृह का आधा भाग दर्शकों के निमित्त सुरक्षित रखा जाता है और आधा भाग नटों के व्यवसाय के लिये निश्चित रहता था। इसमें भी आधा भाग रंगपीठ कहलाता था, जिसके ऊपर अभिनय कार्य निष्पन्न होता था। सबसे पिछले भाग को रंगपीठ कहा जाता था और यहीं पर नटों के लिये नेपथ्य–विधान होता था। प्रेक्षागृहों के विभिन्न स्थानों पर नाना प्रकार के देवताओं की पूजा होती थी।

इन आवश्यक विधानों का सम्पादन सूत्रधार का मुख्य कार्य होता था। यह आरम्भिक पूजन पूर्वरंग कहलाता था और यह एक विस्तृत व्यापार होता था। आजकल इसका अन्तिम अंश नान्दी के नाम से संस्कृत नाटकों में अब भी दिखायी देता है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार नान्दी उसे कहते हैं, जिसके द्वारा देव, ब्राह्मण और राजा इत्यादि की आशीर्वाद से युक्त स्तुति की जाती है अथवा आशीर्वाद और नमस्क्रिया से युक्त काव्यार्थ की सूचना देने वाले श्लोक के द्वारा नान्दी पाठ किया जाता है।[4]

इस प्रकार नान्दी वह मंगलाचरणात्मक आशीर्वचन युक्त श्लोक होता है जिससे काव्यार्थ की सूचना के साथ–साथ देव, द्विज–नृपादि की स्तुति की जाती है। संस्कृत नाटकों में नान्दीपाठ के अनन्तर पात्रों का प्रवेश होता था। पूर्वरंग के अवसान में श्रोताओं के हृदयावर्जन के लिये नाटकों में संगीत का यथावत् प्रयोग किया जाता था। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत का गायन विशिष्ट स्वर में विशिष्ट ताल तथा मात्रा के योग से होता था।

प्राचीन काल में दर्शकों के बैठने के लिये आसनों का उचित प्रबन्ध किया जाता था। आजकल के समान दर्शकों के बैठने के लिये उस समय की गैलरी या सीढ़ीनुमा आसन की व्यवस्था आश्चर्यजनक नहीं है। दर्शकों के बैठने के लिये उस समय सोपानाकृति आसन होते थे। भूमि से सीढ़ियाँ एक हाथ ऊँची रखी जाती थीं और इनका निर्माण लकड़ी तथा ईट की सहायता से किया जाता था।

निवेषनों की बनावट तथा व्यवस्था ऐसी होती थी कि कहीं पर भी बैठकर रंगपीठ के ऊपर हो रहे अभिनय का साक्षात्कार भलीभाँति किया जा सकता था।[5]

भारत का प्राचीन रंगमंच यथार्थवादी होते हुये भी आदर्शवादी था। वहाँ धनोत्पादक अथवा उद्वेगजनक दृश्यों का प्रदर्शन सर्वथा वर्जित था। रंगपीठ में भोजन, शयन, युद्ध और आक्रमण आदि का प्रदर्शन सर्वथा वर्जित माना जाता था। फिर भी आवश्यकतानुसार घोड़े और हाथी रंग–मंच पर दिखलाये जाते थे। प्राचीन काल में घास–फूस से बने पदार्थों को चमड़े से मढ़कर घोड़े या हाथी का रूप बनाकर रंगमंच पर दिखलाने की प्रथा थी। भारतीय रंगमंच के प्रभाव का बृहत्तर भारत की रंगशाला पर पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कम्बोज, जावा, श्याम की रंगशालायें ठीक भारतीय रंगशालाओं के समान होती थीं। आज भी जावा में छाया नाटकों का बहुत प्रचार है जो भारत के पुत्तलिका नृत्य के समान ही प्रयोग में लाये जाते हैं। इस प्रकार जावा का साहित्य नाटकों की विषय–वस्तु तथा प्रकार के समान अभिनय और प्रयोग के लिये भी भारतवर्ष का चिर ऋणी है।[6]

पूर्वरंग :

प्रेक्षा–गृह की रचना के बाद नाट्य–शास्त्र में रंग देवता के पूजन का विधान बतलाया गया है। इसके पश्चात् नाटक के अभिनय के प्रारम्भ से पहले पूर्वरंग की व्यवस्था के नियम बतलाये गये हैं। पूर्वरंग वास्तविक अभिनय के पहले आता है। इसलिये संभवतः इसका पूर्वरंग नाम रखा गया है।

इसमें नायकों का प्रवेश, गीतारम्भ, नान्दीपाठ, वन्दना आदि का विधान सर्वप्रथम होता है। सबसे पहले रंगपीठ के मध्य में स्थित ब्रह्मा का अभिवादन किया जाता है और तब सूत्रधार वन्दना करने वालों के साथ प्रवेश करता है।

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार सर्वप्रथम प्राची दिशा की वन्दना की जाती है जिसके स्वामी इन्द्र हैं, फिर दक्षिण–पश्चिम दिशा की तथा उत्तर दिशा की वन्दना होती है। तत्पश्चात् पुनः शंकर, ब्रह्मा तथा विष्णु की वन्दना की जाती है। तत्पश्चात् सूत्रधार सस्वर नान्दीपाठ करता है और फिर विभिन्न गीतों में स्तुति की जाती है। इसके पश्चात् विदूषक और सूत्रधार अथवा नटी और सूत्रधार का कथनोपकथन होता है और रंगसिद्धि के लिये काव्यवस्तु का निरूपण संक्षेप में किया जाता है। यहाँ काव्यवस्तु की प्रतिष्ठापना के साथ–साथ कवि के नाम का भी अखण्ड कीर्तन होता है।[7]

नाट्यशास्त्र की मान्यता है कि इस प्रकार पूर्वरंग का विधिवत् पालन करने से अमंगल और अनिष्ट नहीं होता है।[8] आचार्य मम्मट के अनुसार भी काव्य के अन्य प्रयोजनों के साथ–साथ एक प्रयोजन शिवेतरक्षति भी है।[9]

भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में रंगमंच की ऊपर कही हुई व्यवस्था के साथ–साथ अभिनय के विभिन्न अंगों, रूपों और विभावों का अत्यन्त विशद और विस्तृत विवरण प्राप्त होता है जिससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में रंगमंच और नाट्यकला का कितना उच्चिष्ठ विकास हो गया था। भरतमुनि द्वारा

वर्णित समृद्ध रंगमंच और उन्नत नाट्य–कला को आधार बनाकर संस्कृत में अत्यन्त उत्कृष्ट नाट्यशास्त्र की रचना सम्भव हो सकी है।

नाट्य–शास्त्र में वर्णित प्रेक्षागृह और रंगमंच के सन्दर्भ में जब हम कविवर मुरारि विरचित अनर्घराघवम् नाटक का अनुशीलन करते हैं तब विदित होता है कि कवि ने तत्कालीन प्रेक्षा–गृह और रंगमच का कोई संकेत नहीं दिया हैं। अनर्घराघवम् में सर्वप्रथम नाटक का शुभारम्भ नान्दी पाठ से होता है जिसके प्रथम श्लोक में विष्णु की वन्दना की गई है और नान्दी पाठ के द्वितीय श्लोक में भी विष्णु की वन्दना की गयी है। नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार का प्रवेश होता है।

नान्दी का अर्थ है कि जहाँ पर नाटक के शुभारम्भ से पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति हेतु देवता आदि की स्तुति की जाती है उसे नान्दी कहते हैं अथवा मंगलाचरण को नान्दी कहा जाता है। नान्दी पाठ के बाद जब सूत्रधार रंगमंच पर प्रवेश करता है तब वह किसी अन्य नट के द्वारा रौद्र, वीभत्स तथा भयानक रस से ओत–प्रोत प्रबन्धों के दिखाने के कारण सामाजिकों की उद्विग्नता का वर्णन करता है। वह कहता है कि सदस्यों की प्रीति रंगोपजीवी नटों की प्रियतमा हुआ करती है, उसे छीनकर ले जाने वाले उस दुष्ट को जीतकर वह प्रीतिरूप प्रियतमा को वापस लाना चाहता है।[10]

सूत्रधार अपने वक्तव्य की भूमिका में कहता है कि न्याय संगत मार्ग में चलने वालों की पशु–पक्षी भी सहायता करते हैं किन्तु कुपथगामी जन को उनके

सहोदर भी छोड़ देते हैं। वह वीर तथा अद्भुत रस से परिपूर्ण कथावस्तु से युक्त, संसार को आनन्द प्रदान करने वाले सन्दर्भ को अभिनय करने की कामना करता है। वह इन रसों के सन्दर्भ में आदि कवि वाल्मीकि विरचित सरस्वती की सारवस्तु रामायण का भी उल्लेख करता है और कहता है कि रामायण की कथावस्तु से सम्बन्धित प्रबन्ध के अभिनय की आज्ञा विद्वानों की यह परिषद् दे रही है।

सूत्रधार मौद्गल्य गोत्रोत्पन्न महाकवि वर्धमानभट्ट के पुत्र तन्तुमती माता के गर्भ से उत्पन्न कविवर मुरारि विरचित अनर्घराघवम् नाटक के मंचन की बात करता है। सूत्रधार कहता है कि इसके सहकर्मी नाट्यकला प्रवीण हैं, रस सृष्टि, पद–पाठ, गीत कला, सभी नाट्यांगों में से एक से एक बढ़कर सिद्धहस्त हैं । फिर कविवर मुरारि की कविता गम्भीर मधुर उद्गार शालिनी है और काव्य के नायक उदात्तगुणमण्डित भगवान् रामचन्द्र हैं। इसके अनन्तर वह 'बाल–वाल्मीकि' कविवर मुरारि की कविता की प्रशंसा करता है और उसे वह अमृत के सदृश बतलाता है। नर्तकगण दशरथ के अंक से राम को विलग करने वाले विश्वामित्र के आगमन की सूचना देने वाले गीत का गान करते हैं। इस प्रकार इस लम्बी–चौड़ी प्रस्तावना के बाद नाटक का प्रारम्भ हो जाता है।

संस्कृत के नाटक प्रायः नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं जो प्रस्तावना के द्वारा चित्र–विचित्र वाक्यों से नाटकीय कथावस्तु की संक्षिप्त सूचना दे देता है। सूत्रधार वह प्रधान अभिनेता होता है जो रंगमंच पर घटित होने

वाली घटना को नियन्त्रित करता है। यह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है। यह प्रस्तावना अथवा इस नाटक की स्थापना में मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का प्रारम्भ करता है और नाटकीय पात्रों को आवश्यक निर्देश देता है। नाट्य की उत्पत्ति के साथ उसके अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं तथा उसे धारण करने वाला एवं रंगमंच के देवता का पूजन करने वाला, नाटक की कथावस्तु तथा उसके प्रमुख पात्रों का परिचय देने वाला नाटक का व्यवस्थापक कहलाता है।

अनर्घराघवम् नाटक में सूत्रधार एक अन्य नट के साथ अपने मधुर वार्तालाप और संवाद से कविवर मुरारि का परिचय देते हुये वीर, अद्भुत रस से परिपूर्ण और गम्भीर, उदात्त कथावस्तु वाले अनर्घराघवम् नाटक के मंचन की बात दर्शकों को बतलाता है।[11] सूत्रधार नाटक का प्रमुख पात्र होता है। वह नाटक की बुनियादी बातों का संकेत कर देता है। अनर्घराघवम् नाटक में सूत्रधार ने विस्तार के साथ कवि परिचय और कथावस्तु की उदात्तता तथा उसके रसों की रोचकता का सुन्दर संकेत दिया है।

इस दृष्टि से जब हम प्रसन्नराघवम् नाटक का अनुशीलन करते हैं तो हमें विदित होता है कि नाटककार जयदेव ने नान्दीपाठ के तीन श्लोकों में श्रीहरि विष्णु की वन्दना की है और इसमें रामकथा के कुछ पात्रों का निर्देश किया है। नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार वहाँ एकत्रित सभासदों को देखकर अपनी अभिनय कला को प्रदर्शित करने की बात करता है। मंच पर सूत्रधार और नट के संवादों

से विदित होता है कि वे प्रत्येक अंक में शृंगारादि रसों से युक्त नवीन और विकसित होने वाले पुष्पों की पंक्ति के सदृश सुशोभित, रंग–रचना से सम्पन्न, चन्द्र की वक्रता के समान अतिशय मनोहर प्रसन्नराघवम् नाम के नाटक का अभिनय करना चाहते हैं। निम्नांकित श्लोक के आठ पंक्तियों के क्रम से प्रसन्नराघवम् यह नाम स्पष्ट रूप से सूचित हो जाता है।[12]

प्रत्यंकमंकुरित सर्वरसावतार–
न्नव्योल्लसत्–कुसुमराजिविराजिबन्धम्।
घर्मेतरांशुमिव वक्रतयाऽतिरम्यं
नाट्य प्रबन्धमतिमंजुल संविधानम्।।

नट कविकुलरूप कुमुदों के विकास में चन्द्रमा के समान, सरस्वती के अनुग्रह से कवियों के विचित्र और माधुर्य पूर्ण इस प्रकार के नाटक देखने को मिलते हैं। इस नाटक में रामकथा का सुन्दरता के साथ गुम्फन किया गया है। यह कथा सर्वप्रथम वाल्मीकि मुनि के मुख से काव्य रूप में प्रवाहित हुई है। उनके काव्यामृतरूप समुद्र की कुछ बिन्दुओं को पीकर कविरूप नवीन मेघों की पंक्ति प्रलयकाल तक वृष्टि करती रहेगी। सूत्रधार यह भी कहता है कि अपने नाटकों का पात्र एक मात्र श्रीराम को बनाने वाले कवियों का क्या दोष है ? वह दोष तो उनके गुण–गणों का है जिससे जगत् में श्रीराम के गुणों को निरन्तर और आनन्दपूर्वक अपने सहवास का आधार बनाया।

इसके बाद वह कवि का परिचय देता है। वह कहता है कि–जिसके अनुपम रसों के प्रवाह से मधुर वाणियों का विलास, सुन्दरियों के बिम्बफल के सदृश ओष्ठ की मधुरता को व्यापित करता है, महादेव पुत्र कवीन्द्र जयदेव की यह अनुपम रचना प्रसन्नराघवम् नाटक है जिसके कोमलकाव्यकौशल की कला से सुरभारती विलासवती हो गयी है। ये यद्यपि तर्क शास्त्री भी हैं और कर्कश तर्क वक्र वचन व्यापार के महापण्डित हैं किन्तु फिर भी कोमल–काव्य की रचना में उन्हें परम दक्षता प्राप्त है।[13]

सूत्रधार आगे कहता है कि अपनी वाणी के विलासों से आनन्दित होने वाले कुछ ऐसे सज्जन भी हैं जो दूसरे की मधुर रचना से आनन्दित होते हैं। जयदेव की कविता में वक्रवचनव्यापार की रमणीयता अति मंजुल है। इनकी कविता में कौतुक है। सूत्रधार इन्हें भास, कविकुलगुरू कालिदास, हर्ष और बाणभट्ट के सदृश चित्रित करता है जिनकी कविताकामिनी रसिक जनों के मन में कौतुक पैदा करती रहती है। इस प्रकार कवि का परिचय देते हुये अपनी प्रस्तावना में रामकथा प्रधान प्रसन्नराघवम् नाटक के मंचन का प्रस्ताव सभासदों के सम्मुख रखता हुआ सूत्रधार मंच से चला जाता है और नाटक प्रारम्भ होता है।

इस नाटक में भी प्रेक्षा–गृह और रंगपीठ आदि पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है जिससे यह विदित नहीं हो पाता है कि नाटककार जयदेव के समय किस प्रकार के प्रेक्षागृह और रंगपीठों का निर्माण होता था। यह हो सकता है कि

आधुनिक काल की भाँति प्राचीन काल में भी प्रेक्षागृह निर्मित रहे हों और उनमें संस्कृत नाटकों का मंचन होता रहा हो। भरतमुनि ने अपने नाट्य–शास्त्र में इस सन्दर्भ में जो दिशा निर्देश दिये हैं, उनका इस काल में कितना पालन होता रहा है यह बात स्पष्ट रूप से प्रतीत नहीं होती है।

प्रसन्नराघवम् नाटक की प्रस्तावना अति सरस और मुख की तरह आकर्षण का केन्द्र है। प्रस्तावना पढ़ने मात्र से ही पाठक को नाटक पढ़ने की रूचि जाग्रत हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही नाटक यद्यपि रामकथा प्रधान हैं किन्तु दोनों ही नाटकों की प्रस्तावना के प्रस्तुतीकरण में अन्तर है। प्रसन्नराघवम् नाटक की प्रस्तावना जहाँ अधिक चमत्कारकारिणी और कौतूहलवर्धिनी है वहीं दूसरी ओर अनर्घराघवम् नाटक की प्रस्तावना उतनी आकर्षक और मन में कौतुक पैदा करने वाली नहीं है। प्रारम्भ में ही पाण्डित्य प्रदर्शन देखा जा सकता है।

अभिनय :

नाटक में अभिनय का अतिशय महत्व है। नाटक में अवस्था की अनुकृति का प्राधान्य होता है।[14] पात्र जिस मूल व्यक्तित्व की अवस्था का अनुकरण करता है उसका तदनुरूप सटीक अभिनय भी होना चाहिये। सटीक अभिनय में सामाजिकों को रसानुभूति में सहायता मिलती है और परस्पर तादात्म्य स्थापित हो जाता है। सटीक और अनुरूप अभिनय से साधारणीकरण व्यापार के द्वारा सामाजिक को शीघ्र

रसानुभूति होने लगती है इसलिये अभिनय का नाटक में अतिशय महत्व है। अभिनव गुप्त के अनुसार, रस का संचार केवल रचनाकार एवं दर्शक में होता है किन्तु धनंजय, अभिनेता में भी रस–संचार की स्थिति को स्वीकार करते हैं।[15] यह सत्य भी है कि अभिनेता अभिनय–प्रक्रिया के क्षणों में स्वयं भी आनन्द की अनुभूति करता है यदि उसके कार्य में रोचकता है।

अभिनय अनुकरण के अतिरिक्त स्वाधीन सृजनशील कला है। अभिनेता अपने अनुकार्य चरित्र को पहले अपने भाव और विस्तार के स्तर पर सृजित करता है, फिर अंग, वाणी तथा वेश भूषा आदि के माध्यम से उसे अभिव्यक्त करता है। वह अपने अनुकार्य के व्यक्तित्व के अभिनव आयाम उद्‌घाटित और नव व्याख्या प्रस्तुत करता है। अभिनेता ही रंगमंच का वह सशक्त साधन है जो अभिनय कौशल द्वारा दर्शक को मंच से बाँधे रखकर रचनाकार का संदेश उस तक सम्प्रेषित करता है। नाटक यदि जीवन की अनुकृति है तो उसमें जीवन का भ्रम अभिनेता ही सबसे अधिक उत्पन्न करता है। हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अभिनेता एक ओर मूल कथा के व्यक्तियों का आरोपण निभाता है और दूसरी ओर अभिनय द्वारा विविध प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति देता हुआ, दर्शकों में उन भावों को जगाता हुआ, सारे नाट्‌य–अनुष्ठान को रसमय करता है।

आचार्य भरत ने अपने नाट्‌यशास्त्र में अभिनय शब्द के पद–पदार्थ को उद्‌घाटित किया है। तदनुसार अभिपूर्वक नी धातु से अच् प्रत्यय होने पर 'अभिनय'

शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है प्रयोग के माध्यम से नाटक के अर्थ का प्रत्यक्ष निश्चय कराना।[16] अभिनय शब्द का निर्वचन है–

अभिनयतिहृदयगतभावान् प्रकाशयति इति अभिनयः ।

अर्थात् अभिनय, मन के भावों को प्रकट करने वाली आंगिक चेष्टाओं द्वारा किसी विषय अथवा व्यक्ति का अनुकरण करके प्रदर्शित करने की एक कला है।

उपर्युक्त दोनों कथनों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अभिनय का सम्बन्ध हमारे भाव और विचार जगत् से है तथा बाह्य चेष्टाओं का सम्बन्ध आन्तरिक जगत् से है। भाव और विचार की आन्तरिक प्रक्रिया की बाह्यभिव्यक्ति को ही अभिनय कहा जा सकता है। इस बाह्यभिव्यक्ति का उद्देश्य भी दर्शक के मानस में उन्हीं भावों को जागृत करना है जिनसे उस बाह्यभिव्यक्ति का जन्म अभिनेता की चेष्टाओं में हुआ है। संस्कृत नाट्यशास्त्रियों के अनुसार, अभिनय मन के भावों की अनुभूति कराने वाला तत्व है। अनुकरण में मौलिक उद्भावना का अधिक अवकाश नहीं दिखायी देता है किन्तु अभिनय में उदात्त कला स्तर की प्राप्ति का विचार सन्निहित है। भारतीय अभिनय कला परिकल्पना के द्वारा अभिनय कला आदि सृजन शीलता का स्तर प्राप्त कर चुकी है।[17]

नृत्य एवं नृत्त :

दशरूपककार धनिक धनंजय ने 'नृत्य' और 'नृत्त' को अभिनय के अन्तर्गत ही माना है। नृत्य में भावों का अनुकरण मुख्य रूप से होता है जबकि नृत्त

में केवल अंग—विक्षेप होता है जो ताल और लय पर आश्रित होता है।[18] यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि नृत्य और नाट्य भिन्न—भिन्न हैं। नाट्य रसों पर आश्रित होता है और नृत्य भावों पर आश्रित होता है इसलिये दोनों में विषय भेद है।

नृत्य शब्द की व्युत्पत्ति नृत् धातु से हुई है जिसका अर्थ है गात्र विक्षेप। नृत्य में आंगिक अभिनय की बहुलता होती है, जबकि नाट्य में चार प्रकार के अभिनय पाये जाते हैं। नाटक केवल भावों पर आश्रित न होकर रस परक होते हैं। रस समस्त काव्य के उस वाक्यार्थ से निष्पन्न होता है, जो काव्य में प्रयुक्त पदों के अर्थ रूप विभाव, अनुभाव और व्याभिचारि भावों के संसर्ग से युक्त होता है, इसलिये नाटकों में वाक्यार्थ रूप अभिनय पाया जाता है जो नाटकों को रसाश्रय होने की ओर संकेत करता है।

नाट्य एवं नृत्य :

नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति 'नट अवस्पन्दने' धातु से हुई है, जहाँ पर नट धातु का अर्थ अवस्पन्दन अर्थात् कुछ—कुछ चंचलता करना है, अतः नाट्य में सात्विक अभिनय की बहुलता होती है, इसीलिये नाट्य विशारद 'नट' कहलाते हैं। इसी कारण नाटक वाक्यार्थ—रूप अभिनय वाला होता है और नृत्य पदार्थ रूप अभिनय वाला भिन्न होता है।[19]

अभिनय के प्रकार :

नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय को निम्नांकित चार भागों में विभाजित

किया गया है–

1– आंगिक 2– वाचिक 3– आहार्य और 4– सात्विक ।

इन चारो प्रकार के अभिनयों के द्वारा प्रस्तुत कथावस्तु ही दर्शकों के सामने यथार्थ रूप दिखा सकती है तथा उनका मनोरंजन कर सकती है।

आंगिक अभिनय :

शरीर, शारीरिक चेष्टाओं तथा मुख के द्वारा नाट्यस्थितियों का प्रदर्शन करना आंगिक अभिनय कहलाता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार शरीर के अन्तर्गत सिर, कटि, हाथ, वक्ष, पार्श्व और चरण, कन्धे, भुजायें, पीठ, उदर, उरू जंघा, आँखें, भृकुटि, नाक, अधरोष्ठ, कपोल इन सबके अभिनय आंगिक अभिनय के अन्तर्गत आते हैं। आचार्य भरत ने अंगों, प्रत्यंगों और उपांगों, दृष्टि और भ्रूविलास आदि के अभिनयों का सविस्तार वर्णन अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में किया है।[20]

वाचिक अभिनय :

अभिनेता अपनी अभिनय प्रक्रिया में जो कुछ भी बोलता है, वह सब वाचिक अभिनय के अन्तर्गत आता है। आचार्य भरत के अनुसार वाचिक अभिनय नाट्य का शरीर है और यह कथन नितान्त सत्य भी है कि यदि किसी नाट्य कृति से उसके कथोपकथन को हटा दिया जाये तो उसकी नाट्य–संज्ञा ही समाप्त हो जायेगी। हम यह कह सकते हैं कि बहुत कुछ सीमा तक कथनोपकथन या वाचिक अभिनय में ही नाटक की रसरूप आत्मा निवास करती है। वैसे अभिनय के अन्य

विभाग भी सम्भाषण के अर्थ को ही अभिव्यक्त करते हैं।[21]

पाठ्य दो प्रकार का होता है– संस्कृत तथा प्राकृत। उच्च श्रेणी के पात्रों की भाषा संस्कृत होती है तथा नीच श्रेणी के पात्रों की भाषा प्राकृत होती है। नाट्य का पाठ्य कवित्वमय होता है। अतः उसके लिये दोषों का परिहार, गुण तथा अलंकारों का संग्रह करना नितान्त आवश्यक होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार अभिनय का सर्वस्व होता है– औचित्य का विधान। वस्तु जिस प्रकार की होती है, उसे उसी प्रकार से रंगमंच पर दिखाना औचित्य की परिधि के भीतर आता है।

आचार्य भरत ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में अभिनय को समझाने में जो विचार अभिव्यक्त किये हैं वे बडे ही साहित्यिक सरस तथा उपादेय हैं। अभिनेता की उम्र के विचार से उचित वेश धारण करना चाहिये तथा वेश के अनुसार उसकी गति और क्रिया होनी चाहिये। पाठ्यगति प्रचार के अनुरूप होनी चाहिये तथा पाठ्य के अनुरूप अभिनय करना चाहिये। इस नियम के यथावत् पालन करने से ही नाट्य कला में सिद्धि हो सकती है।[22]

वाचिक अभिनय के भेद :

वाचिक अभिनय के तीन भेद हैं– सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियत श्राव्य। सर्वश्राव्य वे कथनोपकथन हैं, जो सबके सुनने के लिये होते हैं। इसे प्रकाश कथन भी कहते हैं तथा अश्राव्य वह कथन है जो सबके सुनने के लिये नहीं होता है। वह स्वगत या आत्मगत कथन कहलाता है।[23] नियत श्राव्य नाटक का वह कथनोपकथन

होता है जो कुछ पात्रों के सुनने के लिये होता है और कुछ के लिये नहीं। इस कथनोपकथन के तीन रूप नाट्यशास्त्र में बतलाये गये हैं। अपवारित, जनान्तिक और आकाश भाषित। अपवारित में जिस पात्र से बात न कहनी हो उसकी ओर से मुँह फेरकर बात की जाती है।[24] जनान्तिक में जिससे बात न कहनी हो उसके सामने त्रिपताका हाथ करके अन्य पात्रों से बात कही जाती है।[25] आकाशभाषित में पात्र आकाश की ओर मुँह उठाकर किसी दूर में स्थित व्यक्ति से, जिनका शरीर दिखायी नहीं देता, परोक्ष में बात करता है । इसे आकाशभाषित कहा जाता है।[26]

वाचिक अभिनय में भाषा का महत्व :

भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में स्थूलरूप से दो दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं। एक दृष्टि तो अलंकारवादियों की है जो कविता में अलंकार को अनिवार्य धर्म मानते हैं। चन्द्रालोककार का कथन है कि जो अलंकार से रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानते हैं, वे अग्नि को ऊष्णता से रहित क्यों नहीं मानते हैं ?[27] अलंकारवादियों के अनुसार उच्च धरातल की अलंकृत एवं सुसज्जित भाषा ही उच्चानुभूति का माध्यम बन सकती है। जिस प्रकार कोई रमणी अपने सम्पूर्ण आभूषणों से सुसज्जित होकर रसिकों को आकर्षित करती है उसी प्रकार वाणी अपने समस्त अलंकरणों से सुसज्जित होकर व्यंजनाशक्ति को प्राप्त कर 'ध्वनि' को प्रस्फुटित करती है।

दूसरे विद्वानों का मत है कि नाटक को यथार्थ धरातल में जुड़ा हुआ होना चाहिये। इसलिये उसकी भाषा भी सरल, स्वाभाविक उक्तियों, सहज

कथन–पद्धतियों, जटिल अलंकारों से रहित और प्रसाद गुण सम्पन्न होना चाहिये।

वस्तुतः नाटकों की भाषा के सम्बन्ध में सम्यक् दृष्टि यही प्रतीत होती है कि उसे जहाँ तक सम्भव हो, स्वाभाविक और सहज होना चाहिये और भावस्थिति के बिन्दु पर स्वाभाविक अलंकारों से युक्त रसात्मक, कौतूहल वर्धक, सरल और प्रसाद गुण युक्त होना चाहिये। नाटक की भाषा में 'गागर में सागर' भरा होना चाहिये। नाटक के लिये वही भाषा आदर्श मानी जाती है जो साधारण, सरल दिखायी देते हुये भी अत्यन्त प्रभावशाली हो। अभिनय की दृष्टि से भी भाषा की यही स्थिति आदर्श प्रतीत होती है क्योंकि भाषा के प्राकृत और सामान्य होने से अभिनेता को उसके स्मरण, उच्चारण में सुविधा रहेगी और प्रभावी होने से वह उसके माध्यम से प्रेक्षक को रसरज्जु से बाँधे रह सकेगा।

सम्भाषण :

अभिनेता को अपना सम्भाषण रटना नहीं चाहिये वरन् उसे हृदयंगम करना चाहिये। सम्भाषण को रट कर बोलने में यह भय बना रहता है कि वह उस ध्वनि समूह का उच्चारण कर सका है या नहीं जो उसे उस सम्बन्ध में उच्चरित करना था। वस्तुतः वाचिक अभिनय तो उच्चारण मात्र है, केवल अर्थ की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है। एक विशिष्ट भावस्थिति का वाणीग़त रूप ही वाचिक अभिनय है क्योंकि मूलतः भावों का ही अभिनय होता है। सम्भाषण को हृदयंगम करने के पश्चात् अभिनेता को भावस्थिति का ध्यान रखने में सुगमता रहती है, फिर प्रत्येक

शब्द के उच्चारण से सम्बन्धित स्वर, बलाघात तथा अन्तराल का निर्णय स्वयं हो जाता है। इन्हीं बातों के ध्यान से वाचिक अभिनय में प्रभविष्णता उत्पन्न हो जाती है। सम्भाषण के उच्चारण में तीन नियमों का अनुपालन उसके प्रभाव में वृद्धि कर देता है। वे प्रमुख तीन नियम निम्नांकित हैं– बलाघात, स्वरमात्रा तथा अवधि।

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय को प्रभावी बनाने वाले अनेक उपादानों की चर्चा की है। उन्होंने वाचिक अभिनय के अन्तर्गत व्याकरण के अनेक नियमों, ध्वनियों के वर्गीकरण तथा काव्यलक्षणों की चर्चा की है। आचार्य भरत ने भूषण, अक्षर–संघात, शोभा, उदाहरण और हेतु इत्यादि 36 उपादन बताये हैं।[28]

नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय के अन्तर्गत इस बात की भी चर्चा है कि किसी रस–प्रकरण में किस छन्द और किस अलंकार का प्रयोग होना चाहिये यथा– वीर रस और भयानक रस के सम्बन्ध में आर्या छन्द, रूपक तथा दीपक अलंकार का प्रयोग होना चाहिये। नाटकीय प्रयोग में आने वाली भाषा के सन्दर्भ में उनका कथन है कि शिष्टजनों को संस्कृत भाषा का प्रयोग करना चाहिये तथा निम्न स्तर के जनों को प्राकृत भाषा का प्रयोग करना चाहिये। नाट्य–शास्त्र में बोलियों के प्रयोग की भी चर्चा की गई है। प्राकृत–भाषाओं में–मागधी, अवन्ती या प्राच्य सौर सेनी, अर्धमागधी तथा अन्य विभाषायें।[29]

अन्त में, आचार्य भरत ने नाटकीय सम्बोधनों की भी विस्तार से चर्चा की

है। देवताओं, आचार्यों तथा व्रतियों के लिये 'भगवन्', राजा के लिये 'महाराज', गुरू के लिये 'आचार्य' और वृद्ध के लिये 'तात्' कहकर सम्बोधित करते हैं। ब्राह्मण राजा को किसी नाम से पुकार सकता है। वह मन्त्रियों को अमात्य और सचिव कह सकता है। अन्य लोग इनको केवल 'आर्य' शब्द से सम्बोधित करते हैं। बराबर वालों का नाम लेकर सम्बोधित किया जा सकता है। इन्हें वयस्य भी कहा जा सकता है। आदरणीय व्यक्तियों को 'भाव' तथा अपने से कुछ छोटे को 'मार्षक' या 'मार्ष' कहकर पुकारते हैं। रथवाहक अपने स्वामी को आयुष्मान् कहता है और सन्यासी को 'साधो' कहकर सम्बोधित किया जाता है।

युवराज को स्वामिन या भर्तृदारक कहा जाता है। अपने से छोटे पद वालों को सौम्य, आदि कहकर पुकारते हैं। शिष्य या पुत्र को वत्स, पुत्रक, पिता को तात, बौद्ध तथा जेन, श्रमण को भदन्त कहते हैं। राजा विदूषक को वयस्य कहकर पुकारता है। वह रानी तथा दूसरी सहेलियों को 'भवति' कहेगा। स्त्रियाँ विवाहित होने पर अपने पति को 'आर्य पुत्र' कहती हैं अन्यथा उन्हें 'आर्य' से सम्बोधित करती हैं। वृद्धा नारी को अम्ब, राजा की पत्नी को स्वामिनी तथा देवी, अविवाहित राजकुमारी को भर्तृदारिका, बहिन को भगिनी, बेटी को वत्से, पत्नी को आर्ये, नारियाँ अपनी सहेलियों को हला इत्यादि शब्दों से सम्बोधित करती हैं।[30]

आहार्य अभिनय :

वस्त्र सम्बन्धी या वेशभूषा सम्बन्धी नियमों को आहार्य अभिनय कहा

जाता है। अभिनेता द्वारा अपने अनुकार्य की वेशभूषा धारण करना नाटक में यथार्थ सृष्टि के लिये अत्यधिक आवश्यक है। संस्कृत रंगमंच के सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि उस पर जो दृश्य–सज्जा का विधान था, वह यथार्थ का, सामग्री द्वारा अनुकरण न होकर अधिकांशतः वाणी या अंगचेष्टाओं द्वारा कल्पित कराया जाता था। उदाहरण के लिये, यदि किसी अभिनेता को अपनी भूमिका में अश्व पर चढ़ने का अभिनय करना होता था तो मंच पर अश्व नहीं उपस्थित किया जाता था अपितु अभिनेता अपनी वाणी और आंगिक चेष्टाओं द्वारा 'प्रेक्षकों' तक इस सम्पूर्ण स्थिति का सम्प्रेषण कर देता था। यहाँ पर उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि संस्कृत रंगमंच में यथार्थ का सबसे अधिक अनुकरण या तत्व वस्त्र–विन्यास और अंग–रचना में ही विद्यमान था। संस्कृत रंग–विधान में प्रायः लम्बे कथनोपकथन और विवरण युक्त दृश्यावली के वर्णन होते थे। उससे अधिक दृश्य सज्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। सम्पूर्ण दृश्य कल्पित करा दिया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि आहार्य अभिनय में वेशभूषा का अत्यधिक महत्व था।

आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में आहार्य अभिनय की विस्तृत चर्चा की है। पुरूषों के पाँच प्रकार के अलंकरण तथा नारियों के अनेक प्रकार के अलंकरण एवं विविध प्रकार की अंग रचना और अलंकरणों के अनेक भेदोपभेद नाट्यशास्त्र में वर्णित हैं।[31]

सात्विक अभिनय :

यह अन्तिम प्रकार का अभिनय है जिसमें पुरूषों तथा स्त्रियों की नाना प्रकार

की चेष्टाओं, हाव और हेला आदि का प्रदर्शन दिखाया जाता था। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि अन्तःकरण के विशेष धर्म सत्व से जन्म लेने वाले अंग–विकारों को रस प्रकरण में सात्विक अनुभाव कहते हैं। इन्हीं को सात्विक अभिनय कहा जाता है।, सात्विक अनुभावों की संख्या आठ है जो निम्नवत् हैं– स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, विवर्णत्व, अश्रु तथा प्रलय। सात्विक अनुभावों के अभिनय से अन्तःकरण और शरीर का बिम्ब–प्रतिबिम्ब–भाव सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार अभिनय को रसाश्रय माना जाता है। मुनिवर भरत का कथन है कि इन रसों को नाटक में नाना प्रकार के अभिनय से सम्बद्ध करके अभिव्यक्त किया जाता है।[32]

अभिनय की दृष्टि से अनर्घराघवम् -

अभिनय के विविध पक्षों का मन्थन–विमन्थन करने के पश्चात् जब हम नाटककार मुरारि प्रणीत अनर्घराघवम् नाटक पर दृष्टिपात करते हैं तो विदित होता है कि अभिनय की दृष्टि से यह बहुत श्रेष्ठ नाटक नहीं हैं। इसमें सूत्रधार प्रारम्भ से ही बड़े–बड़े छन्दों का प्रयोग करता है जिसमें शार्दूल विक्रीडित, हरिणी, शिखरिणी, वसन्त तिलका आदि प्रमुख हैं जिनमें कवि का पाण्डित्य और कवित्व प्रस्फुटित होता है। संवाद–योजना भी प्रसाद गुण युक्त नहीं हैं। कविवर भास प्रणीत स्वप्नवासवदत्तम् और कविकुलगुरू कालिदास प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि नाटक जिस प्रकार प्रसाद गुण युक्त और अभिनय कला से परिपूर्ण हैं तथा ये मंचन के लिये आदर्श नाटक हैं, वह बात अनर्घराघवम् में दिखायी नहीं देती हैं।

यद्यपि कहीं–कहीं संवाद छोटे और प्रसादगुण युक्त हैं किन्तु अधिकतर शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा आदि छन्दों के प्रयोग से यह नाटक दीर्घकाय और दुरूह हो गया है।

विश्वामित्र हँसते हुये दशरथ से 1.27 वें श्लोक में नारायण के पन्नगशयन में सोने की बात कहते हैं जिसमें दुरूह, समस्त पदावली का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार विश्वामित्र, दशरथ, वामदेव आदि के संवाद में निरन्तर बड़े–बड़े समासबहुला शैली में विरचित श्लोकों का प्रयोग किया गया है जिससे अभिनेयता बाधित होती है। पाठक या दर्शक को यह प्रतीत नहीं होता है कि यह नाटक है अथवा कवि के वैदुष्य को प्रकट करने वाला कोई काव्यजातीय ग्रन्थ है। इसमें आंगिक अभिनय यथोचित नहीं बन सका है। वर्णन की प्रधानता है। कहीं–कहीं पर साधारण रूप से आंगिक अभिनय देखने को मिलता है।

वाचिक अभिनय :

वाचिक अभिनय में उच्च पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं और निम्नपात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। नाटक के द्वितीय अंक में वटु और शुनःशेप के संवाद मिलते हैं। इसमें शुनःशेप संस्कृत भाषा और पशुमेढ्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है। इनके संवाद लम्बे–लम्बे हैं जिनमें कौतुक और चमत्कार का अभाव प्रतीत होता है। राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम जाते हैं। मार्ग में ताड़का दिखायी देती है। वहाँ पर भी स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित

जैसे बड़े छन्दों का प्रयोग किया है जिससे वाचिक अभिनय की श्रेष्ठता बाधित होती है।

तृतीय अंक में कंचुकी और कलहंसिका का संवाद वाचिक अभिनय का श्रेष्ठ उदाहरण माना जा सकता है जिनके संवाद सरल और कौतुक लिये हुये हैं। सीता स्वयंवर के अवसर पर रावण के पुरोहित शौष्कल और जनक के संवाद में वाचिक अभिनय की सुन्दरता अवलोकनीय है किन्तु यहाँ भी बड़े–बड़े छन्दों का प्रयोग और क्लिष्ट संस्कृत भाषा वाचिक अभिनय को बाधित कर देती है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण नाटक वाचिक अभिनय की दृष्टि से नाटकीयता लिये हुये नहीं है अपितु विस्तृत और कवि के पाण्डित्य को प्रकट करने वाला है।

आहार्य अभिनय :

आहार्य अभिनय की दृष्टि से भी यह नाटक बहुत प्रशंसनीय नहीं है। कवि का अधिक ध्यान कथावस्तु को वर्णित करने में व्यतीत हो जाता है। पात्रों के द्वारा अनुकार्य–पात्रों के अनुकरण में धारण की जाने वाली वेश भूषा का कोई विशेष वर्णन इसमें प्राप्त नहीं होता है। नाटक के पात्र दशरथ, राम, लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव आदि यद्यपि अपने–अपने अनुकार्य पात्रों का वेश धारण करके ही रंगमंच पर उपस्थित होते हैं किन्तु वेशभूषा का स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। इस नाटक में रूप सज्जा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है इसलिये आहार्य अभिनय में भी इसकी श्रेष्ठता प्रमाणित नहीं होती है। कविवर मुरारि अपने कवित्व और पाण्डित्य

का दम्भ प्रकट करने में ही अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं।

सात्विक अभिनय :

सात्विक अभिनय के अन्तर्गत सात्विक भावों और हावों आदि का अभिनय आता है। भाव और रसों का अभिनय सात्विक अभिनय के अन्तर्गत माना जाता है। इस दृष्टि से यह नाटक कुछ सफल प्रतीत होता है। इसके अनुसार इसके पात्र अपने हाव–भाव की सुन्दर प्रस्तुति करते हैं और यहाँ वीर, अद्‌भुत रस तथा गम्भीर उदात्त चरित्र अपनी सम्पूर्ण चारूता के साथ प्रकट होते हैं। नाटक के प्रमुख पात्रों के अभिनय से समाज के सामने उदात्त चरित्र की प्रस्तुति के कारण यह एक सफल नाट्‌यग्रन्थ कहा जा सकता है। यद्यपि यह नाटक मंचन के योग्य प्रतीत नहीं होता है। लम्बे–लम्बे संवाद, समास–बहुला–संस्कृत पदावली और क्लिष्ट कल्पना इसकी मंचन योग्यता को बाधित कर देते हैं फिर भी राम के उदात्त चरित्र वर्णन के कारण यह नाटक अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर देता है।

अभिनय की दृष्टि से प्रसन्नराघवम् :

जब हम अभिनय की दृष्टि से कविवर जयदेव प्रणीत प्रसन्नराघवम् नाटक का परिशीलन करते हैं तो विदित होता है कि यह नाटक अनर्घराघवम् नाटक की तुलना में श्रेष्ठ है। नाटककार जयदेव ने यद्यपि अपनी इस कृति में अनेक नाटकीय गुणों का समावेश किया है लेकिन इन्होंने भी लम्बे समासयुक्त संवाद और पद्यों के प्रयोग से अभिनेयता को विखण्डित कर दिया है।

इस नाटक का सूत्रधार एक लम्बे समासबहुल गद्यखण्ड का प्रयोग करता है जिसे विद्वानों के लिये ही उपयुक्त समझा जा सकता है। यद्यपि सूत्रधार और नट का संवाद कौतुक पैदा करता है। सूत्रधार कवि के कवित्व का भी सुन्दर परिचय देता है जिसमें बहुत चमत्कार दिखायी देता है। इस नाटक के कवि का परिचय बड़ी सुन्दर शैली में और कोमलकान्त पदावली में दिया गया है जिससे संस्कृत कविता का लालित्य प्रकट होता है। इसमें सूत्रधार संस्कृत कविता–कामिनी के हास के रूप में भास, विलास के रूप में कालिदास और हर्ष के रूप में हर्ष तथा पंचबाण के रूप में बाण की तुलना करते हुये जयदेव की कविता–कामिनी को कौतुक से भरा हुआ बताता है।

इस नाटक की प्रस्तावना अभिनयोचित है। इसके बाद दाल्म्यायन का लम्बा कथन नाटकीयता को भंग कर देता है। मंजीरक और नूपुरक के संवाद यद्यपि अभिनय की दृष्टि से वर्णन प्रधान हैं किन्तु सीता–स्वयंवर में द्वीप–द्वीपान्तर से आये हुये राजाओं का परिचय हृदय ग्राही है। यहाँ पर इन दोनों पात्रों के संवाद अभिनय की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं और प्रसाद गुण युक्त होने के कारण रोचक हैं। यथा–

कदली कदली, करभः करभः,

करिराजकरः करिराजकरः।

भुवनत्रितयेऽपि बिभर्त्ति तुला–

मिदमूरूयुगं न चमूरूदृशः ।।[33]

इसमें आकाशभाषित, नेपथ्य, अपवारित, स्वगत, सक्रोध, सविषाद और आत्मगत आदि के द्वारा कवि ने उत्तम अभिनय कला का प्रदर्शन किया है।

द्वितीय अंक में विष्कम्भक के अन्तर्गत भिक्षु और तापस के संवाद अभिनय की दृष्टि से श्रेष्ठतर हैं। द्वितीय अंक में, दुर्गापूजन के लिये आयी हुई सीता के सौन्दर्य का राम के द्वारा वर्णन और परस्पर अवलोकन–विलोकन नाटकीयता लिये हुये है। यहाँ पर सीता का सखियों के साथ संवाद तथा सीता का शृंगारिक लज्जा का अभिनय नाटकोचित है। धीरोदात्त नायक राम के द्वारा सीता के सौन्दर्य की सराहना हृदयावर्जक है। यह प्रसंग अनर्घराघवम् में प्राप्त नहीं होता है। इस प्रसंग से ही प्रभावित होकर गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में पुष्पवाटिका प्रसंग की रचना की है।

तृतीय अंक में, वानमक और कुब्जक के संवाद लम्बे–लम्बे हैं। राम तथा विश्वामित्र के संवादों में शार्दूल विक्रीडित आदि बड़े छन्दों का प्रयोग नाटकोचित नहीं है। चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम अंक में भी कवि ने लम्बे–लम्बे छन्दों का प्रयोग किया है जिससे यह नाटक अपनी अभिनेयता को बनाये नहीं रखता है।

अभिनय :

नाट्यशास्त्र में जो आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक आदि अभिनय के चार प्रकार बताये गये हैं, उनको यद्यपि कवि ने अपने इस नाटक में यथोचित रूप से अनुपालन करने का प्रयत्न किया है किन्तु उनके कवित्व ने उन्हें अभिनय

की अपेक्षा अधिक प्रभावित किया है।

वाचिक अभिनय :

वाचिक अभिनय की दृष्टि से यह नाटक श्रेष्ठ है। इसमें भाषा का प्रयोग, भावार्थ का सुष्ठु प्रदर्शन देखा जा सकता है। यहाँ पर भी उच्च वर्ग के पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं और निम्न पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। इसका भाव और कला पक्ष कालिदास और भवभूति का अनुवर्ती है। शब्द सौष्ठव, अर्थ की सुकुमारता, व्यंजना दृष्टि, ध्वनि और भाव का मंजुल सामंजस्य इसके साहित्यिक सौन्दर्य का वर्धन करने वाले हैं। इस नाटक के प्रथम, द्वितीय, तृतीय अंक साहित्यिक सौन्दर्य के लिये पठनीय और रस–निष्यन्दी हैं।

वाचिक अभिनय के अन्तर्गत कथनोपकथन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस नाटक के कथनोपकथन अत्यन्त रसात्मक हैं। कथनोपकथन के नाट्यशास्त्र में तीन भेद बताये गये हैं– सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियत श्राव्य। नाटककार ने अपने नाटक में इन्हें यथोचित रूप से सन्निविष्ट किया है। विस्तार भय से यहाँ कथनों के उद्वरण वाँछनीय प्रतीत नहीं होते हैं।

आहार्य अभिनय :

इस नाटक में आहार्य अभिनय का भी अपना महत्व है। इस नाटक के प्रमुख पात्र अनुकार्य की वेशभूषा, अलंकरण और आभूषण आदि यथोचित रूप से धारण करते हैं।

सात्विक अभिनय :

सात्विक अभिनय की दृष्टि से भी यह नाटक सुन्दर है। सात्विक अभिनय के अन्तर्गत सात्विक हावभाव का अभिनय प्रदर्शित किया जाता है। नाट्यशास्त्री हावभाव और रसों का अभिनय तथा प्रस्तुतीकरण सात्विक अभिनय के अन्तर्गत मानते हैं। सात्विक अभिनय एक प्रकार से सूक्ष्म आन्तरिक भावों का प्रकाशन है जो प्रसन्नराघवम् नाटक में अत्यन्त चारूता और सफलता के साथ अभिव्यक्त हुआ है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यद्यपि दोनों ही नाटक स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की भाँति मंचन योग्य नहीं हैं किन्तु अभिनेयता की दृष्टि से प्रसन्नराघवम् नाटक अनर्घराघवम् नाटक से श्रेष्ठतर है। दोनों ही नाटकों में कवियों ने अपने कवित्व का चमत्कार प्रदर्शित करने में अधिक ध्यान दिया है। दोनों ही नाटक रामकथा की भव्यप्रस्तुतीकरण के लिये प्रशंसनीय कृतियाँ है।

✡✡✡✡✡

पाद टिप्पणी
अध्याय - 8

1. नाट्यशास्त्र, अध्याय 2.19 ।
2. मण्डपे विप्रकृष्टे तु पाठ्यमुच्चारितस्वरम् ।
   अनभिव्यक्त वर्णत्वात् विस्वरत्वं भृशं व्रजेत् ।। नाट्यशास्त्र, 2.19 ।।
3. दृष्टव्य—भरतमुनि नाट्यशास्त्र अध्याय–2 ।
4. आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
   देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।। साहित्यदर्पण, पृ0, 50 ।।
5. स्तम्भानां बाह्यतश्चापि सोपानाकृति–पीठकम् ।
   इष्टकादारूभिः कार्यं प्रेक्षकाणां निवेशनम् ।। नाट्यशास्त्र, 2.25 ।।
6. संस्कृत आलोचना—आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्करण 1957 पृ0, 94 ।।
7. काव्यशास्त्र– डॉ0 भागीरथ मिश्र, संस्करण 1980, पृ0–112 ।
8. भरत– नाट्यशास्त्र–अध्याय, 5 ।
9. काव्यं यशसेऽर्थकृतेव्यवहारविदेशिवेतरक्षतये ।
   सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।। काव्यप्रकाश 1.2 पृ0–10 ।।
10. प्रीतिर्नाम सदस्यानां प्रिया रंगोपजीविनः ।
    जित्वा तदपहर्तारमेष प्रत्याहरामि ताम् ।। अनर्घराघवम्, 1.3 ।।
11. तस्मैवीराद्भुतारम्भगम्भीरोदात्तवस्तवे ।
    जगदानन्दकन्दाय सन्दर्भाय त्वरामहे ।। अनर्घराघवम् , 1.6 पृ0, 7 ।।
12. प्रसन्नराघवम्, 1.7 पृ0, 14 ।
13. प्रसन्नराघवम्, 1.18 ।
14. अवस्थानुकृर्तिनाट्यम्, दशरूपक, 1.7 पृ0, 40 ।
15. नाट्यकला– डॉ0 रघुवंश, प्रथम संस्करण, पृ0, 38 ।
16. अभिपूर्वस्तु नी धातुराभिमुख्यार्थनिर्णये ।
    यस्मात्प्रयोगं नयति तस्मादभिनयः स्मृतः ।। नाट्यशास्त्र, 8.7 ।।
17. (अ) डॉ0 रघुवंश : नाट्यकला, प्रथम संस्करण, पृ0, 91 ।
    (ब) संस्कृत आलोचना : बल्देव उपाध्याय, पृ0 17 ।।
18. अन्यद्भ्यावाश्रयं नृत्यम्–नृत्तं ताललयाश्रयम् ।
    आद्य पदार्थाभिनयोमार्गो देशी तथा परम् ।। दशरूपक 1.9 पृ0, 6 ।।
19. दशरूपक–वृत्ति, 1.9 पृ0, 5–6 ।
20. नाट्यशास्त्र, अध्याय–05 ।
21. वाचि यत्नस्तु कर्त्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता ।
    अंगनेपथ्यतत्वानि वाक्यार्थं व्यंजयन्ति हि ।। नाट्यशास्त्र 15.2 ।।

22. संस्कृत आलोचना–1957 संस्करण पृ0, 95 ।
23. हृदयस्थं वचो यत्तत्तदात्मगतीष्यते ।
    हृदयस्थं सात्विकं भावस्तं चात्मगतमेव ।। भरत–नाट्यशास्त्र, 26.82–83 ।।
24. दशरूपक, 1.66 पृ0, 73 ।
25. दशरूपक, 1.65 पृ0, 73 ।
26. किं ब्रवीष्यैवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।
    श्रुत्वैवानुक्तमप्यैकस्तत्स्यादाकाश भाषितम् ।। दशरूपक, 1.67 पृ0, 73 ।।
27. चन्द्रालोक– पृ0, 15 ।
28. भरत : नाट्यशास्त्र, अध्याय–17 ।
29. वही, अध्याय–18 ।
30. भरत : नाट्यशास्त्र, अध्याय–19 ।
31. वही, अध्याय, 23 ।
32. नानाभिनयसम्बद्धान्भावयन्ति रसानिमान् । भरत : नाट्यशास्त्र, अध्याय, 6.35 ।
33. प्रसन्नराघवम्, 1.37 पृ0, 58 ।

नवम अध्याय

उपसंहार

नवम अध्याय

उपसंहार

अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् नाटकों के तुलनात्मक नाट्यशास्त्रीय अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्य की अन्य अनेक विधाओं के होते हुए भी नाटक का महत्व सर्वोपरि है, इसीलिए समीक्षक काव्यों में नाटक को अत्यन्त रमणीय मानते हैं और 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' यह आभाणक अति प्राचीन काल से साहित्य के अध्येताओं के मध्य सुप्रचलित है । कुछ विद्वान् तो नाटक को कवित्व की चरम सीमा मानते हैं और 'नाटकान्तं कवित्वम्' ऐसा कहते हैं । यद्यपि नाट्यशास्त्रियों के अनुसार वस्तु, नेता और रस के भेद से नाटक दस प्रकार के होते हैं किन्तु नाटकों का मुख्य आश्रय तो रस ही है ।[1]

यह सर्वविदित है कि भारतीय साहित्य के गुम्फन और विकास में राम कथा और श्रीकृष्णकथा का प्रमुख योगदान रहा है । रामकथा और श्रीकृष्णकथा का परम स्रोत रामायण और महाभारत रहा है । इन दोनों ही कथाओं ने भारतीय कवियों, रसिकों, सहृदयों और झोपड़ी से लेकर राजमहलों तक रहने वाले सर्व साधारण जनमन को विशेष रूप से उद्वेलित किया है, उन्हें सरस और धन्य बनाया है और सज्जनों की हृदयतन्त्री के तारों को झंकृत किया है । आज भी रामकथा की मधुरता के गीतों की मंजु मनोहर ध्वनि का गुंजन सहृदयों के हृदय में अबाध गति से हो रहा है । रामकथा के सातत्य के सम्बन्ध में यह वेदितव्य है कि

---

1. दशधैव रसाश्रयम् – दशरूपकम्, 1.7 पृष्ठ–04 ।

प्राचीन काल में कविकुलगुरूकालिदास अपने प्रसिद्ध गीतकाव्य मेघदूत में मेघ को कोटि–कोटि पुरूषों द्वारा वन्दनीय रघुपति राम के पवित्र चरणो से अंकित मेखला वाले उत्तुंग रामगिरि से भेंट कर अलकापुरी जाने के लिए परामर्श देना नहीं भूलते हैं ।[1]

इस अमर रामकथा को आधार बनाकर कवियों ने संस्कृत में अनेक काव्यजातीय ग्रन्थों का प्रणयन किया है । यद्यपि विद्वानों का कथन है कि रामकथा वेदों में भी संकेत रूप से प्राप्त होती है किन्तु रामकथा का स्पष्ट रूप वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है । चूँकि काव्य की सभी विधाओं में नाट्यविधा श्रेष्ठ मानी जाती है इसलिए रामकथा को अनेक कवियों ने अपने नाटकों की आधिकारिक कथावस्तु बनाया है ।

प्राचीन काल में नाटक सार्वजनिक मनोरंजन के हेतु रहे हैं और उनकी विषयवस्तु उदात्त भावों का निरूपण करने वाली रही है । नाटकों से जहाँ एक ओर चतुर्वर्ग फलप्राप्ति होती है वहीं दूसरी ओर सद्यः परमानन्द की प्राप्ति नाटकों की रचना का प्रयोजन रहा है । रामकथाप्रधान नाटक जनमनोरंजन के साथ–साथ नैतिकता का उपदेश देने वाले तथा बुधविश्राम के जनक रहे हैं । नाटक आनन्द निष्यन्दी माने जाते हैं ।

रामकथा–प्रधान नाटकों में धर्म और अधर्म के उत्थान–पतन की कथा

---

1. आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुंगमालिंगय शैलं,
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु । मेघदूतम् (पूर्वमेघ–12)

तो देखी और सुनी जाती है, प्रकृति के जो विविध रूप देखे और सुने जाते हैं, अनन्त नरनारियों की जो प्रवृत्तियाँ लोकजीवन में परिलक्षित होती हैं, सज्जनों और खलों के जो विविध रूप हैं, संक्षेप में उन सब का चित्रण रामकथा–प्रधान अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् नाटकों में प्राप्त होता है ।

दोनों ही नाटकों अनर्घराघवम् और प्रसन्नराघवम् की आधिकारिक कथावस्तु रामकथा ही है और सुग्रीव की कथा प्रासंगिक कथावस्तु है । कविवर मुरारि जयदेव के पूर्ववर्ती हैं । उन्होंने अपने नाटक का नाम अनर्घराघवम् रखा है राघवराम इस नाटक के नायक हैं इसलिए उन्होंने अनर्घ विशेषण के साथ राघव के नाम से अपने नाटक का नाम अनर्घराघवम् रखा है । मुरारि ने रामकथा को नाटकीय रूप देने का वैदुष्यपूर्ण प्रयास किया है और वे अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने में सफल दिखायी देते हैं किन्तु नाटक को मंचनयोग्य बनाने में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई है । उन्होंने नाट्यकला की अपेक्षा अपने वैदुष्य और पाण्डित्य को ही अधिक प्रदर्शित किया है । अनर्घराघवम् नाटक के अध्येता और आलोचक मुरारि के कविकर्म और काव्यकौशल को देखकर उन्हें नाटककार भवभूति के समान या उनसे भी श्रेष्ठ कवि मानते हैं किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भवभूति के नाटक में जिस प्रकार से करूण रस की धारा प्रवाहित हुई है उस तरह की रस–सृष्टि अनर्घराघवम् नाटक में दिखायी नहीं देती है ।

प्रसन्नराघवम् नाटक नाटककार जयदेव की प्रशस्त रचना है । कविवर जयदेव ने अपने इस नाटक के व्याज से अपने कविकर्म और काव्यकौशल को बड़ी

चारूता के साथ प्रस्फुटित किया है । अनर्घराघवम् की अपेक्षा प्रसन्नराघवम् अत्यधिक ललित, सुमधुर और हृदयग्राही है । इनकी कथावस्तु का संयोजन चमत्कारी और प्रभावोत्पादक है किन्तु अनर्घराघवम् नाटक की कथावस्तु का संयोजन कुछ अटपटा और विश्रृंखलित है इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस का आधार प्रसन्नराघवम् में वर्णित कथा–संयोजन और भाव संयोजन को विशेष रूप से बनाया है ।

अनर्घराघवम् नाटक में न तो सीता द्वारा पुष्पवाटिका में दुर्गा पूजन का प्रसंग उपस्थित किया गया है और न ही सुदूर द्वीप–द्वीपान्तरों से आये हुए राजाओं का परिचय कराया गया है जबकि प्रसन्नराघवम् में चण्डिकायतन में सखियों के सहित सीता के द्वारा दुर्गापूजन बड़ी रोचकता के साथ प्रस्तुत किया गया है । गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रसंग को शब्दशः अपने प्रसिद्ध महाकाव्य रामचरितमानस में साभार ग्रहण किया है किन्तु उभयनाटको में रामकथा रूपी मन्दाकिनी बड़े वेग से उभयपार्श्वों को प्रक्षालित और पवित्र करती हुई प्रवाहित हो रही है । रामभक्ति शाखा के इन दोनों कवियों मुरारि और जयदेव ने साहित्य साधना के क्षेत्र में मर्यादोपासना तथा माधुर्योपासना के द्वारा अपने हृदय के निर्मल भाव–प्रसूनों से रामकथा के आनन्दमय पक्षों का अनुपम श्रृंगार किया है ।

यद्यपि रामकथा प्रधान अनेक कृतियाँ पहले से ही विद्यमान थीं और पुनः इस पर लेखनी चलाना दोनों ही कवियों के लिये दुरूह कार्य और पिष्टपेषण की तरह प्रतीत होता है किन्तु इसके उत्तर में दोनों ही कवियों का उत्तर लगभग समान

है । उनके अनुसार यदि प्राचीन कवियों द्वारा वर्णित रामचन्द्र के चरित को अपनी काव्यकला का आधार न बनाया जाये, तो दूसरा रामचन्द्र के समान चरित नायक इस संसार में कहाँ प्राप्त किया जा सकता है ? इसलिए उनके गुण गौरव की गरिमा और गम्भीरता से परिपूर्ण वाणी वाले कविगण अपने को महाचरित के वर्णन से उपकृत और पवित्र करते हैं तो किसी को आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए क्योंकि यह रमणीय कथाप्रबन्ध वीर तथा अद्भुत रस से परिपूर्ण है और संसार को आनन्द प्रदान करने वाला संदर्भ इसमें विद्यमान है इसलिये यह अभिनय के योग्य है ।[1]

इस सम्बन्ध में नाटककार जयदेव का कथन है कि रामकथा उसी प्रकार आकर्षण का केन्द्र है जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश पाने वाला चन्द्रमा और नारियों का कटाक्षपात्र आकर्षण का केन्द्र होते हैं । जयदेव भी उसी प्रकार के तर्क देते हैं कि अपनी कविता का एकमात्र पात्र श्रीरामचन्द्र जी को बनाने वाले कवियों का कोई दोष नहीं है । वह दोष तो श्रीराम के गुणगणों का है जिन्होंने समस्त चराचर जगत् को तथा कवियों को अपनी ओर आकर्षित किया है । उभय कवियों की दृष्टि में उनका मन श्रीराम के चरण कमलों में भ्रमण करता हुआ भ्रमर की तरह आचरण करता है ।

यद्यपि दोनों ही नाटकों की कथावस्तु एक समान है लेकिन दोनों के कथासंयोजन में भिन्नता है । यदि अनर्घराघवम् में प्रथम अंक में दशरथ और

---

1. अनर्घराघवम् 1.6,9 ।

वामदेव के वार्तालाप के अवसर पर विश्वामित्र जी का आगमन होता है और रामकथा तदनुसार आगे बढ़ती हुई दिखायी देती है तो दूसरी ओर प्रसन्नराघवम् नाटक में प्रस्तावना के बाद मंजीरक और नूपरक नामक स्तुतिपाठकों से सीता–स्वयंवर के आयेजित होने और उसमें दूर देश से द्वीप–द्वीप से आये हुए राजा लोगों के सम्मिलित होने की सूचना प्राप्त होती है । इसमें रावण और बाणासुर भी आकर वाद–प्रतिवाद करते हैं जिससे सीता–स्वयंवर का प्रसंग बहुत रोचक और नाटकीय बन जाता है किन्तु अनर्घराघवम् नाटक में सीतास्वयंवर के अवसर पर रावण का पुरोहित शौष्कल प्रवेश करता है और रावण की वीरता का वर्णन करता है तथा सीरध्वज जनक से रावण को सीता देने की बात करता है शौष्कल की वार्ता में चमत्कार कम और शुष्कता अधिक है । इस प्रसंग में इस नाटक में वह नाटकीयता नहीं दिखायी देती है जो प्रसन्नराघवम् में दिखायी देती है । यदि मुरारि की कविता क्लिष्ट और वैयाकरण पदावली से आक्रान्त है तो जयदेव की कविता कौतूहल उत्पन्न करने वाली और कोमलकान्त पदावली से विदग्धों के हृदयों को आवर्जित करने वाली है । इस प्रसंग को भी तुलसीदास ने जयदेव के अनर्घराघवम् नाटक से साभार ग्रहण किया है जो उनके द्वारा कहे हुए 'क्वचिदन्यतोऽपि' पद से ध्वनित होता है ।

इसी प्रकार दोनों ही कवियों ने अपने–अपने नाटकों में भिन्न–भिन्न प्रकार से कथासंयोजन किया है । अनर्घराघवम् की अपेक्षा प्रसन्नराघवम् का कथा संयोजन अधिक प्रभावी और चारूतर है इसीलिए सम्भवतः गोस्वामी तुलसीदास ने

इस नाटक से भावसम्पत्ति और कथावस्तु, प्रसंगसंयोजन का अनुसरण किया है ।

उभय नाटकों की आधिकारिक कथावस्तु एक समान है और प्रासंगिक कथावस्तु सुग्रीव की कथा है जिसे पताका के अन्तर्गत रखा जा सकता है । कथावस्तु की दृष्टि से उभयनाटकों में साम्य और वर्णन वैषम्य दिखायी देता है । नाटककार मुरारि रामसीता के विवाहोत्सव के शीघ्र बाद मिथिला में ही राम और सीता के वनवास तथा भरत के राज्याभिषेक की बात उठा देते हैं जो सर्वथा अनौचित्य प्रवर्तक है क्योंकि विवाह के पश्चात् यदि सीता अयोध्या आ जाती तब वनवास की बात उठाना उचित हो सकता था किन्तु विदाई वेला के अवसर पर ही मुरारि द्वारा इस प्रसंग को उठाया जाना अनुचित प्रतीत होता है । दूसरी ओर प्रसन्नराघवम् नाटक के प्रणेता नाटककार जयदेव औचित्य का सर्वथा ध्यान रखते हैं । वे मिथिला में कैकेयी के द्वारा राम वनवास की बात नहीं उठाते हैं । यदि वे भी मिथिला में ही राम वनवास की बात उठा देते तो मिथिलावासी नरनारी विश्वविदित रघुवंश की रानियों का कैसा चरित्रांकन करते और विदाई के अवसर पर सीता, राम के वनवास की बात सुनकर कितनी व्यथित नहीं होती । वे सीताराम वनवास के दुःखद वृत्तान्त को साक्षात् प्रकट नहीं करते प्रत्युत नदी पात्रों के माध्यम से यह बात सबको विदित होती है ।

नाटककार जयदेव का उपस्थापन नाटकीयता और रोचकता लिये हुए है किन्तु अनर्घराघवम् में इन बातों का ध्यान नहीं रखा गया है । अनर्घराघवम् में यद्यपि विशाल वर्णन प्राप्त होते हैं किन्तु उसमें एक सफल नाटक के गुण दिखायी

नहीं देते हैं । उसके दीर्घ और सपाट वर्णनों से एक श्रव्यकाव्य के गुण प्राप्त होते हैं । कविवर मुरारि यद्यपि अपने पाण्डित्य का भरपूर प्रदर्शन करते हैं किन्तु नाटकीय गुणों के प्रति वे विशेष ध्यान नहीं देते हैं ।

यद्यपि मुरारि विदर्भदेश की वैदर्भी रीति की प्रशंसा करते हैं किन्तु वे स्वयं वैदर्भी रीति का अनुसरण नहीं करते हैं । अनर्घराघवम् पाण्डित्य और कवित्व की दृष्टि से भले ही पठनीय हो किन्तु अभिज्ञानशाकुन्तलम् और स्वप्नवासवदत्तम् की भाँति मंचनयोग्य प्रतीत नहीं होता है ।

दूसरी ओर अनर्घराघवम् की अपेक्षा प्रसन्नराघवम् नाटक अधिक सफल प्रतीत होता है क्योंकि इसमें नाटकीयता और चारूता अपने सम्पूर्ण यौवन के साथ विद्यमान है । यद्यपि इसमें भी कहीं–कहीं पर दीर्घ और लम्बे–लम्बे वर्णन प्राप्त होते हैं जिससे इसकी भी मंचनयोग्यता में प्रश्नचिह्न लग सकता है । इसमें अनेक स्थलों पर स्रग्धरा और शार्दूल विक्रीडित जैसे दीर्घकाय छन्दों का प्रयोग हुआ है जिससे इसकी भी मंचनयोग्यता निकषोपल पर खरी नहीं उतरती है । यद्यपि अनर्घराघवम् की तुलना में इसे प्रसादगुणयुक्त, सरस और सरल नाटक कहा जा सकता है किन्तु यह दोनों ही नाटक अपने यथारूप में अभिज्ञानशाकुन्तलम् और स्वप्नवासवदत्तम् नाटकों की भाँति मंचनयोग्यता को प्राप्त नहीं कर पाये हैं ।

उभयनाटक चरित्र–चित्रण की दृष्टि से सशक्त और ऊर्जस्वल हैं । नायक और नायिका का चरित्रांकन दोनों ही नाटकों में श्लाघ्य है । दोनों ही नाटकों का परम प्रयोजन चतुर्वर्गफलप्राप्ति है और दोनों का ही प्रतिपाद्य समान

है । धर्म की विजय और अधर्म का पराभव दोनों ही नाटकों का लक्ष्य है । दोनों ही नाटकों में संवाद—योजना में विभिन्नता है और दोनों की शैली भी भिन्न है । दोनों ही नाटकों में नारीपात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं तथा उच्चवर्ग के पुरूषपात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं ।

नाटक को रसों पर ही आश्रित माना जाता है । इस दृष्टि से अनर्घराघवम् में वीर तथा अद्भुत रस की सृष्टि हुई है किन्तु प्रसन्नराघवम् नाटक का प्रमुख रस श्रृंगार है । चण्डिकायतन में नायक—नायिका मिलन प्रसंग में श्रृंगार रस की सुन्दर निष्पत्ति हुई है ।

कलापक्ष और भावपक्ष की दृष्टि से दोनों ही नाटक सर्वांग सुन्दर हैं । अनर्घराघवम् में अलंकार-योजना का चमत्कार रमणीय है । शब्दालंकार और अर्थालंकार की रमणीयता आह्लादक है । उनके पाण्डित्य प्रदर्शन से उन्हें कठिन काव्य का प्रणेता कहा जा सकता है । उनके काव्यार्थ को समझना श्रमसाध्य है फिर भी यह नाटक नये—नये भावों और नूतन कल्पनाओं से रमणीय है । इसमें शब्दसौष्ठव और अर्थसौष्ठव की गम्भीरता अवलोकनीय है ।

दूसरी ओर प्रसन्नराघवम् नाटक की अलंकार योजना, कलापक्ष और भावपक्ष का संयोजन भी अपेक्षाकृत अति रमणीय है । वस्तुतः प्रसन्नराघवम् नाटक सुरभारती का सारस्वत श्रृंगार है । यह नाटक अत्यन्त मधुर, सरस, सरल और प्रांजल है । इसका लालित्य गीतगोविन्द की सरस कोमलकान्तपदावली का स्मरण कराता है । सचमुच जयदेव की वाणी रस से परिपूर्ण और मधुर है, वह मृगनयनी

ललनाओं के अधरोष्ठों की मधुरता को भी तिरस्कृत करने वाली है । उनकी अलंकार योजना स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी है । इस दृष्टि से प्रसन्नराघवम् नाटक अनर्घराघवम् नाटक से कतिपय गुणों के कारण श्रेष्ठतर प्रतीत होता है ।

जयदेव की भाषाशैली अति सरस, प्रांजल और कोमलकान्तपदावली का मनोरम उदाहरण है । मुरारि की कविता की अपेक्षा जयदेव की कविता में शब्द सौष्ठव और अर्थ सौष्ठव का चमत्कार श्रेष्ठतर और चारूतर है ।

यद्यपि दोनों ही नाटक रामकथा से सम्बद्ध हैं किन्तु फिर भी दोनों के वर्णन में विविधता और सृष्टि का भेद है । मुरारि की अपेक्षा नाटककार जयदेव का कथावर्णन अधिक सुसंगत और अधिक सुसंयोजित है । इस नाटक में कलापक्ष और भावपक्ष अनर्घराघवम् की अपेक्षा अपने सम्पूर्ण यौवन और सौन्दर्य के साथ प्रस्फुटित हुए हैं । सचमुच, जयदेव पीयूषवर्षिणी कविता के कलाधर हैं । जयदेव अपने को रामकथामंजरी का भ्रमर मानते हैं । वस्तुतः उनकी भारती" कोमलकाव्य कौशलकला में लीलावती है । उनके वाग्विलास घनीभूत मकरन्द की वर्षा करने वाले हैं । उनकी कविता में वक्रता का सौन्दर्य भी विद्यमान है । उनकी कविता कामिनी किसके मन में कौतुक का संचार नहीं करती है । कविवर मुरारि की तुलना में जयदेव की कविता प्रत्येक दृष्टि से अधिक रसवती और प्रभावोत्पादक है फिर भी दोनों ही नाटककार मुरारि और जयदेव पृथक्–पृथक् दृष्टियों से सुरभारती के अमर शृंगार हैं ।

*****

सहायक ग्रन्थ सूची

अनर्घराघवम् : मुरारि, चौखम्बा विद्याभवन, 1960 वाराणसी

प्रसन्नराघवम् : जयदेव, चौखम्बा विद्याभवन, 1963, वाराणसी

तापसवत्सराजम् : अनंगहर्षमातृराज

स्वप्नवासवदत्तम् : भास

भासनाटकचक्रम् : भास

अभिषेकनाटकम् : भास

बालचरितम् : भास

प्रतिमानाटकम् : भास

चारूदत्तम् : भास

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : कालिदास

मालविकाग्निमित्रम् : कालिदास

विक्रमोर्वशीयम् : कालिदास

रघुवंशम् : कालिदास

मेघदूतम् : कालिदास

उत्तररामचरितम् : भवभूति

महावीरचरितम् : भवभूति

मालतीमाधवम् : भवभूति

अनर्घराघवम् : मुरारि

मृच्छकटिकम् : शूद्रक

मुद्राराक्षसम् : विशाखदत्त

वेणीसंहारम् : भट्टनारायण

रत्नावली : श्रीहर्ष

प्रियदर्शिका : श्रीहर्ष

नागानन्दम् : श्रीहर्ष

हर्षचरितम् : बाणभट्ट

कथासरित्सागर : सोमदेव

वृहत्कथामंजरी : क्षेमेन्द्र

वासवदत्ता : सुबन्धु

श्रृंगार प्रकाश : भोजदेव

सिद्धान्त कौमुदी : भट्टोजि दीक्षित

नाट्यकला : डॉ0 रघुवंश

नाटकों का विकास : डॉ0 सुन्दरलाल शर्मा
नाट्यशास्त्र : भरतमुनि
ध्वन्यालोक : आनन्दवर्धनाचार्य
काव्यमीमांसा : राजशेखर
काव्यशास्त्र : डॉ0 भागीरथ मिश्र
अलंकार सर्वस्व : मंखक
काव्यप्रकाश : मम्मट
काव्यालंकार सूत्रवृत्ति : वामन
वक्रोक्ति जीवितम् : कुन्तक
सरस्वती कण्ठामरणम् : भोजदेव
दशरूपक : धनिक धनंजय
साहित्यदर्पण : कविराज विश्वनाथ
संस्कृत नाटक : ए0बी0 कीथ
संस्कृत साहित्य का इतिहास : ए0बी0 कीथ, अनुवादक मंगलदेव शास्त्री
संस्कृत साहित्य का इतिहास : बलदेव उपाध्याय
संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : वाचस्पति गैरोला
संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ0 शिव बालक द्विवेदी
संस्कृत साहित्य का इतिहास : जयकिशन लाल खण्डेलवाल
संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ0 कपिल देव द्विवेदी
संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : चन्द्रशेखर शास्त्री
संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ0 सत्य नारायण पाण्डेय
संस्कृत वाड्.मय का विवेचनात्मक इतिहास : डॉ0 सूर्यकान्त
संस्कृत आलोचना : बलदेव उपाध्याय
भारतीय साहित्य का इतिहास : विन्टर नित्स
धर्मशास्त्र का इतिहास : पी0वी0 काणे
सारस्वत संदर्शनम् : प्रो0 सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी
नाट्यदर्पण : रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र
नाट्यशास्त्र : भरतमुनि
नाट्यकला : डॉ0 रघुवंश
रामायण : महर्षि वाल्मीकि
महाभारत : वेदव्यास
रामकथा : कामिल बुल्के, प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, 1950 ।

रामचरितमानस : गोस्वामी तुलसीदास
भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा : डॉ० नगेन्द्र
कालिदास ग्रन्थावली : आचार्य सीताराम चतुर्वेदी
संस्कृत हिन्दी कोष : वामन शिवराम आप्टे, दिल्ली
जर्नल आफ गंगानाथ झा : रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद
सागरिका (शोध–पत्रिका) : सागर विश्वविद्यालय
दूर्वा (शोध–पत्रिका) : म०प्र० संस्कृत अकादमी
इण्डियन एन्टीक्वैरी : रिसर्च जर्नल
भवन्स जर्नल, चौपाटी : बम्बई :
जर्नल आफ भण्डारकर ओरियन्टल, रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना,
विभिन्न शोधपत्र–पत्रिकाएं इत्यादि ।

✡✡✡✡✡